# संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

डॉ बाबुराम सक्सेना

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्विजन श्वजनो मा भूत्सकल शकलः सकृच्छकृत् ॥

# भूमिका

इस पुस्तक का प्रथम सस्करण बारह-तेरह वर्ष पूर्व निकला था। उस समय हिन्दी के माध्यम से सस्कृत की पढाई कही-कही ही होती थी। अँग्रेजी का बोल-बाला था। तब भी हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे सभी विश्वविद्यालयो और बोर्ड ने इसे स्वीकृत किया और विद्वत्समाज ने इसका समुचित ही नही, आशातीत आदर किया। हिन्दी मे सस्कृत-व्याकरण की सर्वांगपूर्ण पुस्तक इसके पूव नही थी।

सस्कृत-व्याकरण के विषय मे कोई बात मौलिक कहना असभव है किन्तु विषय के प्रतिपादन मे कुछ नवीनता हो सकती है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे हिन्दी भाषा के प्रयोगो से सस्कृत के व्याकरण की तुलना करके विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है। पाणिनि की परिभाषाओ को तथा प्रत्ययो के नामो को उसी रूप मे रक्खा है— जिससे विद्यार्थी को आगे चलकर कठिनाई और भ्रम न हो। पाणिनि की पद्धति को समझाने का यथेष्ट प्रयत्न भी किया गया है। पाद-टिप्पणियो मे सूत्र उद्धृत कर दिये गये हैं। उदाहरणो का बाहुल्य विषय को स्पष्ट करने के लिए रक्खा गया है। परिशेषो मे आवश्यक जानकारी की चीजे है। इस प्रकार पुस्तक को यथा-साध्य उपयोगी बनाने का उद्योग किया गया है।

हिन्दी के माध्यम से अब ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जायगी। इस दृष्टि से वर्तमान सस्करण में यथेष्ट परिवर्धन कर दिया गया है। आशा है कि बी० ए० तक के विद्यार्थियो के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा। परिवर्धन के कार्य में श्री विद्यानिवास मिश्र ने प्रारम्भिक थोडे से अश मे और शेष समस्त अश मे डा० आद्याप्रसाद मिश्र ने पर्याप्त मदद दी है। प्रथम सस्करण मे मेरे पुराने शिष्य प० रामकृष्ण शुक्ल ने सहायता दी थी। प्रस्तुत सस्करण के प्रूफ आदि देखने का सारा भार उन्ही के ऊपर था। जिस लगन और परिश्रम से शुक्ल जी ने अपना काम निभाया है, उसे देखकर प्रसन्नता होती है। मै इन तीनो शिष्यो का आभार मानता हूँ।

पुस्तक का प्रथम सस्करण पूज्य पाद गुरुवर्य डा० गगानाथ झा महोदय को समर्पित था। अब वे इस भौतिक ससार मे नही है। लेखक पर उनकी विशेष कृपा रहती थी। विश्वास है कि सस्कृत के पठन-पाठन मे उत्तरोत्तर वृद्धि देखकर उनकी आत्मा प्रसन्न होती होगी और पुस्तक का वर्तमान सस्करण उन्हे सन्तोष देगा।

यह पुस्तक कई वर्षों से अप्राप्य थी। अध्यापको और विद्यार्थियो की माँग पर माँग आती थी। पर मै प्रेस और कागज की भौतिक कठिनाइयो का सामना
पुस्तक अब भी प्रकाश

## द्वादश संस्करण

'सस्कृत-व्याकरण-प्रवेशिका' का प्रस्तुत सस्करण सशोधित रूप मे पाठकों के सामने जा रहा है। यह सस्करण भी लोकप्रिय और उपादेय सिद्ध होगा।

प्रयाग<br>२०२१ वि०

—बाबूराम सक्सेना

# विषय-सूची

## प्राक्कथन

**व्यञ्जनान्त सञ्ज्ञाएँ**



**सर्वनाम-विचार** चतुर्थ सोपान

## कारक-विचार षष्ठ सोपान

## तद्धित-विचार — अष्टम सोपान

| विषय | सेक्शन | पृष्ठ |
|---|---|---|

## क्रिया-विचार (उत्तरार्ध) दशम सोपान



## कृदन्त-विचार एकादश सोपान



## कृत् प्रत्यय

## २—परिशेष



## ३—परिशेष

# प्राक्कथन

१—व्याकरण-शास्त्र का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत भाषा में हुआ है, उतना अन्य किसी भी भाषा मे नही। व्याकरण को साङ्ग वेद का मुख बताया गया है। वैदिक युग से ही शब्द की मीमासा की ओर भारतीय मनीषियो की बुद्धि दौडती रही है। उच्चारण पर विचार करने वाले वेदाङ्ग 'शिक्षा' के प्रतिपादन के लिए 'प्रातिशाख्यो' की रचना हुई। इसके उपरान्त यास्क मुनि ने शब्दनिरुक्ति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रथ 'निरुक्त' प्रस्तुत किया। यास्क ने ही सर्व-प्रथम शब्दो के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) को स्थापित किया है और यह सिद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया कि सारे शब्दो का आधार धातु-समूह ही है। इन्ही सिद्धान्तो पर पाणिनि की अष्टाध्यायी एव आधुनिक निरुक्ति-विज्ञान अधिकतर आश्रित हैं। यास्क का समय अनुमान से ८०० वर्ष ईसा से पूर्व है।

खेद है कि यास्क के परवर्ती और पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख-मात्र मिलता है, उनकी कृतियाँ (पाणिनि की अष्टाध्यायी के कारण) विस्मृति के गर्त्त मे विलीन हो चुकी है। आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र प्रभृति विभिन्न वैयाकरणो का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी मे तथा बाद की टीकाओ मे मिलता है। इनमे ऐन्द्र व्याकरण का एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय बहुत दिनो तक रहा। इसका अनुसरण (चीनी यात्री ह्वेनसाग तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार) कलापव्याकरण ने किया है। तैत्तिरीय-सहिता के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम व्याकरण है। डाक्टर बर्नेल ने इस मत की पुष्टि करने के लिए प्राचीनतम तामिल व्याकरण तोल्कापियम् की ऐन्द्र व्याकरण से समानता दिखलायी है और यह मत स्थापित किया है कि ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम है और इसका अनुकरण करके ही कातन्त्र तथा अन्य व्याकरणो की रचना हुई है। वररुचि और व्याडि इसी व्याकरण के सम्प्रदाय के थे। ऐन्द्र व्याकरण की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी परिभाषाएँ पाणिनि,

की परिभाषाओ की तरह जटिल और प्रौढ नही है। सम्भवत ऐन्द्र के बाद कम से कम दो और सम्प्रदाय पाणिनि के पूव प्रवर्त्तित हुए--ऐसा आधुनिक विचारको का अनुमान है।

२--पाणिनि अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे एक विस्तृत भाषा का अति सुसयत और सुदृढ व्याकरण लिखने के लिए ससार मे विख्यात हो गये है। उनके ग्रथ मे वैज्ञानिक विवेचना की परिपूणता तथा शैली की अनुपमता दोनो इस तरह मिली हुई है कि ससार की किसी अन्य भाषा मे इसके टक्कर की इस विषय पर अन्य कोई भी पुस्तक नही है। बहुत वाद-विवाद के उपरान्त डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने पाणिनि का समय ५०० ई० पू० और ४०० वष ई० पू० के बीच निश्चित किया है। मैक्समूलर ने इनकी तिथि ३५० वष ई० पू० निर्धारित की थी।

पाणिनि की जीवनी के विषय मे केवल इतना ज्ञात है कि वह आधुनिक अटक जिले के शालातुर नामक ग्राम के अधिवासी थे, (पतजलि के महाभाष्य से पता चलता है कि) उनकी माता का नाम दाक्षी था, (कथासरित्सागर चतुथ तरग की एक कथा के अनुसार) वह उपवष (वष) के शिष्य तथा कात्यायन, व्याडि और इन्द्रदत्त के समकालीन थे तथा (पचतन्त्र के एक श्लोक के अनुसार) उनकी मृत्यु व्याघ्र के हाथो हुई थी। पाणिनी अध्ययन मे अधिक प्रखर न थे। इससे कुछ निराश होकर उन्होने तपस्या की और भगवान् शकर को प्रसन्न करके उनके डमरू से निकले हुए ध्वनि-समूह को चौदह "माहेश्वर सूत्र" मानकर, जो सम्भवत पाणिनी के महेश्वर नामवाले अथवा महेश्वर-स्वरूप गुरु द्वारा पाणिनी को व्याकरण रचना के निमित्त मागदशन के लिए निर्मित प्रतीत होते है, उन्ही के बताए माग पर पाणिनि ने समस्त अष्टाध्यायी बनाई। रूपरेखा गुरु की ही बनाई समझ पडती है। उस पर उन्होने समस्त ग्रन्थ की रचना की ऐसी जनश्रुति है। पाणिनि की निधन तिथि सम्भवत त्रयोदशी थी। इस तिथि पर वैयाकरण विद्वान् आज भी व्याकरण नही पढते-पढाते।

३--इनका ग्रन्थ अष्टाध्यायी लगभग ४००० सूत्रा मे निर्मित है और आठ अ यायो मे विभाजित है। प्रत्येक अध्याय मे चार पद है। (पाच सूत्रो को छोडकर शेष) समस्त सूत्रो का मूल रूप सौभाग्यवश पडितो द्वारा सुरक्षित

चला आया है । प्रथम अध्याय मे व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी सज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ हैं । दूसरे अध्याय मे समासो का विस्तृत विवेचन तथा कारक की व्याख्या है । तीसरे अध्याय मे तथा आठवे मे कृदन्त प्रकरण है । चौथे और पाँचवे मे तद्धित प्रकरण है तथा इसके पश्चात् छठे और सातवे मे तिङ, सुप् प्रत्ययो से सम्बन्धित प्रक्रिया का विवेचन है । आठवे मे सन्धि-प्रकरण भी है । पाणिनि ने अत्यन्त शृखलाबद्ध और सश्लिष्ट विधि से व्याकरण की बिखरी हुई सामग्री को सफलता के साथ एकत्र किया है । पाणिनि का ध्यान इस प्रयास मे सक्षेपातिशय पर बहुत केन्द्रित रहा है । इसलिए अष्टाध्यायी का दुर्गम होना स्वाभाविक है ।

सक्षेप करने मे प्रधान हेतु सम्भवत कठाग्र कराना और लेखन सामग्री की प्रचुरता के अभाव ही रहे होगे । इस सक्षेप के लिए पाणिनि को मुख्य रूप से छ साधनो का आश्रय लेना पडा है—( १ ) प्रत्याहार, ( २ ) अनुबध, ( ३ ) गण, ( ४ ) सज्ञाएँ ( घ, षट्, श्लु, लुक्, टि, घु प्रभृति), ( ५ ) अनुवृत्ति, ( ६ ) जगह-जगह कई सूत्रो के लागू होने वाले स्थानो के लिए पूर्वत्राऽसिद्धम् ( ८।२।१ ) सदृश नियमो (परिभाषाओ) की स्थापना । यहाँ सक्षेप मे इन साधनो की कुछ व्याख्या की जाती है ।

४—प्रत्याहार नीचे चौदह माहेश्वर सूत्रो को आधार मानकर बनाये गये हैं—

**अइउण् ।१। ऋलृक् ।२। एओङ् ।३। ऐऔच् ।४। हयवरट् ।५। लण् ।६। ञमङणनम् ।७। झभञ् ।८। घढधष् ।९। जबगडदश् ।१०। खफछठथचटतव् ।११। कपय् ।१२। शषसर् ।१३। हल् ।१४।**

इनमें जो अक्षर हल् है (अर्थात् स्वर से वियुक्त है) वे इत् कहलाते हैं जैसे ण्, क् आदि । इन्हें इत् सज्ञा देने वाला सूत्र हलन्त्यम् (१।३।३) है । आदिरन्त्येन सहेता ( १।१।७१ ) इस सूत्र से इन चतुर्दश गणो में आने वाला इत् से भिन्न कोई भी अक्षर जब किसी इत्सज्ञक अक्षर के पूर्व मिलाकर लिखा जाता है, तब प्रत्याहार बनता है । उदाहरणार्थ अइउण् से अ को लेकर और ऋलृक् से इत्सज्ञक क् को लेकर अक् प्रत्याहार बनता है जो 'अ इ उ ऋ लृ' समुदाय का बोधक होता है । इसी तरह झश् प्रत्याहार द्वारा 'झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द'

समुदाय का बोध होता है। प्रत्याहार की इस विधि के द्वारा अत्यन्त सक्षेप हो गया है।

५—अनुबन्ध—जो अक्षर इत् होते हैं उनकी सूची निम्नलिखित है—१—उन्हीं उपदेशो के अन्त मे आनेवाला हल् २—(हलन्त्यम् १।३।३।), धातु प्रत्यय, आगम, आदेश आदि (उपदेश) के मूल मे स्थित 'अनुनासिक स्वर' (उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२।), ३—किसी धातु के आदि मे प्रयुक्त ञि, टु, डु (आदिर्ञिटुडव १।३।५), ४—किसी प्रत्यय के आदि मे आने वाले चवर्ग और टवर्ग ( चुटू १।३।७ ), ५—किसी प्रत्यय के आदि मे आने वाला ष् ( ष प्रत्ययस्य १।३।६ ), ६—तद्धित से भिन्न अन्य प्रत्ययो के आदि मे आने वाले ल्, श् और कवर्ग (लशक्वतद्धिते।१।३।८)। इन इत् सज्ञको का यद्यपि लोप हो जाता है, पर इनका उपयोग दूसरे प्रकार से होता है। ये अनुबन्ध प्राय वृद्धि, गुण, आगम, आदेश, उदात्तादि स्वर प्रभृति प्रक्रियाओ के निमित्त बनते है। उदाहरणार्थ, स्त्रीप्रत्यय के विधान के लिए एक सूत्र है (षिद्गौरादिभ्यश्च। ४।१।४१)। इसके अनुसार जिन प्रत्ययो मे ष् इत् होता है उन प्रत्ययो वाले शब्दो मे स्त्रीलिङ्ग के द्योतनार्थ डीष् प्रत्यय जुडता है, जैसे रजक ( रञ्ज्+ ष्वुन् ) शब्द में ष्वुन् प्रत्यय आया है। इसलिए उसमे डीष् जुडकर 'रजकी' यह रूप बनेगा। इन अनुबन्धो का उपयोग वैदिक भाषा पर विचार करते समय पाणिनि ने अधिक किया है।

६—गणपाठ—जब कई ऐसे शब्द हो जिनमे एक ही प्रत्यय लगाना हो या किसी एक प्रकार के विधान की रचना बतानी हो तो उन सब का एक गण बना कर गण के आदि में आने वाले शब्द को लेकर ही एक सूत्र रच दिया गया है और गण पाठ अन्त में दे दिया गया है। उदाहरणार्थ गर्गादिभ्यो यञ् (४।१।१०५) एक सूत्र है। इसके अनुसार गर्ग से शुरू होने वाले गण में यञ् प्रत्यय लगता है। गर्गादि गण मे १०२ शब्द आये है। ये सब शब्द सूत्र मे नही गिनाये गये और गर्गादि कह कर काम निकाल लिया गया। इस तरह जगह बहुत कम घिरती है और सुविधा के साथ नियम भी बन जाते हैं।

७—सज्ञाएँ और परिभाषाएँ—प्रयत्नलाघव के लिए इनकी रचना हुई है। इनमें से कुछ पाणिनि की स्वय बनायी और कुछ उनके पहले से चली आयी है। कुछ मुख्य-मुख्य यहाँ दी जाती है—

( १ ) वृद्धि—वृद्धिरादैच् ( १।१।१ )—आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं।

( २ ) गुण—अदेङ् गुण ( १।१।२ ) अ, ए, ओ गुण कहलाते हैं।

( ३ ) सम्प्रसारण—( इग्यण सम्प्रसारणम् १।१।४५ ) य्, व्, र्, ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ का हो जाना सम्प्रसारण कहलाता है।

( ४ ) टि—अचोऽन्त्यादि टि ( १।१।६४ ) किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर और यदि उसके बाद कोई व्यञ्जन हो तो वह भी 'टि' कहा जाता है, जैसे शक मे क का अकार तथा मनस् मे अस् 'टि' है।

( ५ ) उपधा—अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा ( १।१।६५ )—अन्तिम वर्ण ( स्वर या व्यजन ) के तुरन्त पहिले आने वाले वर्ण ( स्वर या व्यजन ) को 'उपधा' कहते हैं।

( ६ ) प्रातिपदिक—अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् ( १।२।२४ ) धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त के अतिरिक्त कोई भी शब्द जो अर्थयुक्त हो, वह प्रातिपदिक होता है। इनके अतिरिक्त कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त पदो को भी यह सज्ञा प्राप्त होती है—कृत्तद्धितसमासाश्च ( १।२।४६ )। उदाहरण के लिए राम शब्द लीजिए। अवतार राम के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के केवल नाम होने से यह अर्थवान् है, उसके विषय मे न यह धातु है और न प्रत्ययान्त ही। इसलिए यह प्रातिपदिक कहा जायगा। किन्तु जब अवतार राम के लिए होगा तो रम् धातु से घञ् प्रत्ययान्त होकर कृदन्त होने के नाते प्रातिपदिक कहलाएगा। इसी प्रकार रघु मे अण् प्रत्यय जोडने से तद्धितान्त राघव प्रातिपदिक बना।

( ७ ) पद—सुप्तिङन्त पदम् ( १।४।१४ ) सुप् और तिङ प्रत्ययो से युक्त होने पर कोई शब्द पद बनता है। प्रातिपदिक मे लगने वाले प्रत्ययो को सुप् तथा धातु मे लगने वाले प्रत्ययो को तिङ कहते है। राम मे सु प्रत्यय से राम बना। यह पद हुआ। इसी प्रकार भू धातु मे तिप्, तस् इत्यादि तिङ प्रत्यय जुडने से भवति, भवत इत्यादि क्रियापद बनते हैं। इसके अतिरिक्त सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययो मे, सर्वनामस्थान को छोड कर अन्य प्रत्ययो के आगे जुडने पर पूर्व शब्द की भी 'पद' सज्ञा होती है। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ( १।४।१७ )।

( ८ ) सर्वनामस्थान—सुडनपुसकस्य ( १।१।४३ ) पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक शब्दो के आगे लगने वाले सुट्—सु, औ, जस्, अम् तथा औट् (विभक्ति) प्रत्यय सर्वनामस्थान कहलाते हैं।

( ९ ) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ( १।४।१३ ) जिस शब्द के आगे कोई प्रत्यय जोडा जाय, उस प्रत्यय के पूर्व सम्पूर्ण शब्द-समुदाय को अङ्ग कहते हैं।

(१०) भ—यचि भम् ( १।४।१८ ) सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययो मे यकार अथवा स्वर से आरम्भ होने वाले प्रत्ययो के आगे जुडने पर पूर्व शब्द की ('पद' सज्ञा न होकर) 'भ' सज्ञा होती है।

(११) घु—दाधाघ्वदाप् ( १।१।२० ) दाप् (काटना) और दैप् (साफ करना) को छोडकर दा और धा स्वरूपवाली धातुओ की 'घु' सज्ञा होती है।

(१२) घ—तरप्तमपौ घ ( १।१।२३ ) तरप् और तमप् इन प्रत्ययो की 'घ' सज्ञा होती है।

(१३) विभाषा—नवेति विभाषा ( १।१।४४ ) जहाँ पर विकल्प से होने और न होने, दोनो की सम्भावना रहती है, वहाँ पर विभाषा सज्ञा होती है।

(१४) निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२६) क्त और क्तवतु इन दोनो प्रत्ययो की 'निष्ठा' सज्ञा है।

(१५) सयोग—हलोऽनन्तरा सयोग ( १।१।७ ) बीच मे किसी स्वर के न रहने पर, दो या अधिक मिले हुए हल् (व्यञ्जन ) 'सयुक्त' कहे जाते हैं जैसे भव्य शब्द मे व् और य् के बीच मे कोई स्वर नही आया है इसलिए वे सयुक्त वर्ण कहे जायँगे। इसी प्रकार कात्स्न्र्य, माहात्म्य आदि मे।

(१६) सहिता—पर सन्निकर्ष सहिता ( १।४।१०९ )—वर्णों की अत्यन्त समीपता सहिता कही जाती है।

(१७) प्रगृह्य—ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् ( १।१।११ ) ईकारान्त, ऊकारान्त, ऐकारान्त द्विवचन ( सुबन्त अथवा तिडन्त ) पद प्रगृह्य कहे जाते है।

(१८) सार्वधातुक प्रत्यय—तिङ् शित् सार्वधातुकम् (३।४।११३) धातुओ के आगे जुडने वाले प्रत्ययो मे तिङ् प्रत्यय एव वे प्रत्यय जिनमे श् इत्संज्ञक हो जाता है (जैसे शप्, शतृ आदि) सावधातुक प्रत्यय कहलाते है।

(१९) आर्धधातुक प्रत्यय—आर्धधातुक शेष (३।४।११४) धातुओ से जुडने वाले शेष अर्थात् सार्वधातुक के अतिरिक्त प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं।

(२०) सत्—तौ सत् (३।२।१२७) शतृ और शानच् दोनो का नाम सत् है।

(२१) अनुनासिक—मुखनासिकावचनोऽनुनासिक (१।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनो से होता है उन्हे अनुनासिक कहा जाता है, जैसे अँ, आँ, एँ, लँ, इत्यादि। यह अनुनासिक चिह्न के द्वारा प्रकट किया जाता है। वर्गों के पचमाक्षर ङ, ञ्, ण्, न् तथा म् भी अनुनासिक वर्ण है, क्योकि इनमे भी नासिका की सहायता ली जाती है।

(२२) सवर्ण—तुल्यास्यप्रयत्न सवणम् (१।१।९) जब दो या उससे अधिक वर्णों के उच्चारणस्थान (मुखविवर मे स्थित ताल्वादि) और आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हो तो उन्हे परस्पर 'सवर्ण' कहते है।

द—अनुवृत्ति—सूत्रो के विस्तार को अधिक से अधिक सकुचित करने के लिए अनुवृत्ति पाँचवी प्रणाली है। पाणिनि ने कुछ ऐसे सूत्र बनाये है जिनका अलग तो कोई अर्थ नही होता, लेकिन परवर्त्ती सूत्रमाला के प्रत्येक सूत्र से युक्त होने पर अर्थ निकलता है। ऐसे सूत्र 'अधिकारसूत्र' कहे जाते हैं। इनकी अनुवृत्ति का क्षेत्र तब तक बना रहता है जब तक कोई दूसरा अधिकार सूत्र नही आ जाता। जैसे—तस्य विकार (४।३।१३४), तस्यापत्यम् (४।१।९२), अनभिहिते (२।३।१) प्रभृति सूत्र हैं।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अष्टाध्यायी के समझाने के लिए टीकाकारो ने ज्ञापक सूत्रो को अलग से ढूंढ निकाला है तथा सूत्रो में योगविभाग करके कुछ स्पष्ट न कही गयी बातो को भी शामिल किया है। परन्तु इन सबका ज्ञान केवल सूक्ष्म अध्ययन करने वाले के लिए अपेक्षित है, इसलिए यहाँ इनकी विवेचना नही की जा रही है।

९—पाणिनि ने सस्कृत को जीवित (बोलचाल की) भाषा के रूप मे लिया है। उन्होने लोक, वेद की भाषा सस्कृत ही बतायी है। लोक की मस्कृत को 'भाषा' तथा वेद की सस्कृत को 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग करते है। भाषा शब्द का अर्थ ही है जिसे लोग भाषित करे या बोले। इसके प्रमाण मे हम केवल दो-चार युक्तियाँ यहा प्रसगवश दे देते है। पहले तो वैदिक भाषा को अपवाद के रूप में ग्रहण करना इसी तथ्य की ओर सकेत करता है कि पाणिनि के सामने वर्तमान भाषा छान्दस् भाषा से कुछ आगे चली आयी थी, पर अभी बहुत दूर नही हुई थी, अन्यथा वैदिक भाषा का वे अलग से व्याकरण अवश्य लिखते। दूसरे, स्तम्बशकृतोरिन् (३।२।२४), हरतेर्दृतिनाथयो पशौ (३।२।२५), व्रीहिशाल्योर्ढक् (५।२।२), नते नासिकाया सज्ञाया टीटाञ् टीटानाटज्भ्रटच (५।२।३१), कृञ्‌ा द्वितीय-तृतीय-शम्बबीजात्कृषौ (५।४।५८) प्रभृति सामान्य कृषक-जीवन से ही सम्बन्ध रखने वाले सूत्रो की रचना स्पष्ट यही सिद्ध करती है कि जिस भाषा का विश्लेषण पाणिनि कर रहे है, वह बोलचाल की भाषा है। तीसरे, गणपाठो मे आये हुए नाम इतन विचित्र और अनजान से लगते है कि किसी को यह स्वप्न मे भी विचार नही हो सकता कि ये शब्द स्टैण्डर्ड भाषा के होगे। उदाहरणार्थ गुहुलु, आलिगु, कहूषय, नवाकु, वटाकु, बसुह्मस्क, शिग्रु, कहोढ प्रभृति।

## कात्यायन

१०—पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रो पर आलोचनात्मक दृष्टि से वररुचि (कात्यायन) ने ४००० वार्त्तिको की रचना की है। ७०० से अधिक सूत्रो की उन्होने बिना उनमें कोई दोष दिखाये सुन्दर व्याख्या की है, करीब १० सूत्रो को व्यर्थ बताया है, तथा लगभग ५४० सूत्रो में परिवर्तन एव परिष्करण किया है। कात्यायन पाणिनि के प्रति उचित श्रद्धा भी यत्र-तत्र प्रदर्शित करते हैं। परन्तु उन्होंने अनेक स्थलो पर पाणिनि को समझने में ही भूल की है और कही-कही वे अनुचित आलोचना भी कर गये हैं। इस अनौचित्य की ओर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। कात्यायन के वार्तिक श्लोक और गद्य दोनो में हैं। वे दाक्षिणात्य थे जैसा 'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्या' महाभाष्य के इस वाक्य से प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कात्यायन वाजसनेयी प्राति-

शास्त्र के भी प्रणेता हैं। वररुचि का समय ४०० वर्ष ई० पू० और ३०० ई० पू० के बीच मे पडता है।

## पतञ्जलि

११—पाणिनि व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अन्त पतञ्जलि के महाभाष्य ही मे होता है तथा पाणिनि के स्थान को दृढ बनाने मे कात्यायन और पतञ्जलि ने अपूर्व परिश्रम किया है। इसीलिए परवर्ती वैयाकरणो ने इन तीनो को 'मुनित्रय' के नाम से पुकारा है। पतञ्जलि के समय (दूसरी शताब्दी ई० पू०) के बारे मे अत्यन्त दृढ प्रमाण उन्ही के ग्रन्थ में मिले है। 'पुष्यमित्र याजयाम,' 'अरुणद्यवन साकेतम्', 'अरुणद्यवनो मध्यमिकाम्' इन तीन उद्धरणो से इतना निश्चित होता है कि पुष्यमित्र (शुङ्गराजा) के समय मे सम्भवत उसी के दरबार मे पतञ्जलि विराजमान थे तथा उनके समय में मिनेण्डर (मिलिन्द) ने अयोध्या और मध्यमिका पर आक्रमण किया था। वह गोनर्द (सम्भवत वर्तमान गोडा जिला) के निवासी थे तथा उनकी माता का नाम गोणिका था। शका, समाधान आदि को अत्यन्त रोचक रूप में देते हुए और बहुतेरे घरेलू दृष्टान्तो के द्वारा विषय का सुगमता से प्रतिपादन करते हुए तथा साथ ही साथ अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक सब प्रकार की प्रवृत्तियो का अत्यन्त मनोरम परिचय देते हुए, पतञ्जलि ने महाभाष्य के रूप मे एक अपूर्व रचना की है। इसके जोड का सस्कृत मे और कोई भी ग्रन्थ नही है। पतञ्जलि की शैली के प्रवाह की बराबरी केवल श्रीशकराचार्य का शारीरिक भाष्य करता है।

१२—पतञ्जलि के बाद सातवी शताब्दी तक दार्शनिक विचारधारा का सर्वत्र अधिक जोर रहा। अत व्याकरण शास्त्र की मीमासा कुछ समय के लिए बन्द-सी हो गई। सातवी शताब्दी मे जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर एक सरल और सर्वाङ्गीण वृत्ति (टीका) 'काशिका' लिखी गयी। जयादित्य का समय सन् ६६० ई० है। इस काशिका पर भी उपटीकाएँ, 'न्यास' जिनेन्द्रबुद्धि द्वारा और 'पद-मजरी' हरदत्त द्वारा लिखी गयी। इसी समय के

आस पास व्याकरण का दार्शनिक विवेचन महाभाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' लिखकर किया, जिसमे आगम, वाक्य और प्रकीर्ण इन तीन काण्डो मे कारिकाओ मे अत्यन्त जटिल प्रश्न सुलझाये गये है और स्फोटवाद तथा 'शब्द से ही ससार के विवर्तित होने' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । चीनी यात्री इत्सिग के अनुसार भर्तृहरि की मृत्यु सन् ६५० ई० मे हुई थी । महाभाष्य पर काश्मीरी पडित कैयट ने सन् ११०० ई० के लगभग 'प्रतीप' नाम की बहुत सुन्दर टीका लिखी । काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य के भाई कहे जाते है ।

इस समय तक सस्कृत केवल अध्ययन-अध्यापन की भाषा रह गयी थी । अत व्याकरण मे मौलिक ग्रन्थो के लिखने का यो ही अवसर नही रह गया । इसके अतिरिक्त केवल बाल की खाल निकालने और नैयायिक समालोचना करने की ही प्रथा चल पडी थी । अत पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की भी दृष्टि बदली, उसके क्रम मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे । अब विषय-विभाग के आधार पर अष्टाध्यायी के सूत्रो की व्यवस्था की जाने लगी । विमल सरस्वती ने सन् १३५० ई० मे 'रूप-माला' और रामचन्द्र ने १५वी शताब्दी ई० मे 'प्रक्रिया-कौमुदी' इसी दृष्टिकोण से लिखी । परन्तु इस श्रेणी मे सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना सन् १६३० ई० के लगभग प्रख्यात विद्वान् भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धान्त-कौमुदी' के नाम से की । इसकी महत्ता केवल इसकी टीकाओ की अनन्त श्रृङ्खलाओ से अथवा पाणिनीय व्याकरण की सबसे अधिक प्रचलित पाठ्य पुस्तक होने ही से नही है । इसका महत्त्व इसलिए इतना अधिक है कि इस ग्रन्थ में मुनित्रय के सिद्धान्तो के सागोपाग समन्वय के साथ अन्य वैयाकरणो तथा अन्य पद्धतियो से भी सार ग्रहण किया गया है और नवोदित पद्धतियो की आलोचना इतनी सफलतापूर्वक की गयी है कि इस ग्रन्थ ने अध्ययन के क्षेत्र से पाणिनि की अष्टाध्यायी के क्रम को तो निकाल ही दिया है, साथ ही साथ बोपदेव के 'मुग्धबोध', शर्ववर्मा के 'कातन्त्र' तथा चन्द्रगोमी के "चान्द्र" प्रभृति व्याकरणो को भी बाहर कर दिया । भट्टोजि रामचन्द्र शेष की चलाई नयी परम्परा के धुरीण है । यह रगोजि दीक्षित के पुत्र तथा शेषकृष्ण के शिष्य थे । इन्होने सिद्धान्त कौमुदी पर स्वय 'प्रौढ मनोरमा' नाम की टीका लिखी तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी पर 'शब्द कौस्तुभ' नाम की विस्तृत व्याख्या की ।

भट्टोजि के भतीजे कोण्डभट्ट ने 'वाक्यविन्यास' और दार्शनिक विवेचन-सम्बन्धी 'वैयाकरण भूषण' नामक पुस्तक लिखी । भट्टोजि के गुरु-भाई पडितराज जगन्नाथ ने 'प्रौढ मनोरमा' पर 'मनोरमाकुच-मर्दिनी' नामक आलोचनात्मक टीका लिखी है ।

१३—इनके अनन्तर व्याकरण के क्षेत्र मे सबसे उज्ज्वल, चमकने वाले सितारे तथा अनेक शास्त्रो पर समान अधिकार रखने वाले, प्रखर मधावी नागेश-भट्ट का नाम आता है । धर्म-शास्त्र, साहित्य, योग आदि के अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र मे एक दजन के लगभग टीका-ग्रन्थो एव स्वतत्र ग्रन्थो का प्रणयन इस विश्रुत विद्वान की लेखनी से हुआ । इनमे शब्द-रत्न (प्राढ मनोरमा पर टीका), विषमी (शब्दकौस्तुभ की टीका), वैयाकरण-सिद्धान्त मजूषा, शब्देन्दु-शेखर और परि-भाषेन्दु-शेषर बहुत प्रसिद्ध हैं । नागेशभट्ट ने गगेश उपाध्याय द्वारा प्रवर्त्तित नव्यन्याय की प्रतिपादन शैली मे गभीर और सूक्ष्म विचार प्रकट किये है ।

सिद्धान्त कौमुदी का सक्षेप बालको की सुविधा के लिए लघु-सिद्धान्तकौमुदी तथा मध्य-सिद्धान्त कौमुदी के रूप मे वरदराजाचार्य ने किया । लघुकौमुदी का प्रचार बहुत हुआ है ।

१४—यहाँ हम सक्षेप मे अन्य पद्धतियो का भी उल्लेख मात्र कर दे रहे हैं । ४७० ई० के लगभग बौद्ध पडित चन्द्रगोमी ने बहुत कुछ पाणिनि के आधार पर ब्राह्मण प्रभाव से बचते हुए बौद्धो के लिए चान्द्रव्याकरण बनाया । इसमे ३१०० के लगभग सूत्र है । इसके पहले ही शर्ववर्मा ने ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर कातन्त्र-व्याकरण की रचना सम्भवत ईसा की पहली शताब्दी मे की थी । जैनेन्द्र-व्याकरण छठी तथा शाकटायन शब्दानुशासन ८वी, हेमचन्द्र का शब्दानुशासन १२वी, सारस्वत-व्याकरण, बोपदेव का मुग्धबोध, जौमर व्याकरण १३वी तथा सौपद्म व्याकरण १४वी शताब्दी मे लिखे गये । इनमे प्राय पाणिनि के सशोधन एव सरलीकरण का प्रयास हुआ है तथा बहुतो ने न्यूनतम सूत्रो की सख्या के लिए जी-जान से कोशिश की है । मुग्धबोध मे १२०० तथा सारस्वत में केवल ७०० सूत्र है । ये ही दो प्रचलित भी हुए हैं । बोपदेव वैष्णव थे । अत उनका व्याकरण वैष्णव रग में रँगा हुआ है । इसीलिए उनके व्याकरण का अभी तक बगाल मे ( चैतन्य महाप्रभु के कार्यक्षेत्र मे ) बहुत प्रचार

है। सारस्वत व्याकरण पर सत्रहवी सदी में रामाश्रम ने सारस्वत-चन्द्रिका नामक टीका लिखी और वह भी कुछ समय पूर्व तक काशी के क्षेत्र में बहुत प्रचलित रही है। अन्यो का प्रभुत्व बहुत पूर्व से ही हट चुका है।

## पाणिनि-व्याकरण के अध्ययन की विधि

१५—व्याकरण-शास्त्र को अच्छी तरह अल्पकाल मे समझने के लिए वैज्ञानिक विधि यह है कि सज्ञाओ, प्रत्याहारो तथा अन्य पूर्वोलिखित साधनो का सम्यक् ज्ञान कर लें। सज्ञा प्रभृति का साधारण और आवश्यक परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। इसके पश्चात् किस तरह प्रत्यय जुडते हैं और किस प्रकार एक सूत्र से दूसरे सूत्र मे अनुवृत्ति की जाती है, इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्यय लगने की विधि नीचे दी जाती है। ( १ ) प्रत्यय मे पहले यह देखना चाहिए कि कितना अश जुडने के उपयोग में आने वाला है, जैसे ण्यत् प्रत्यय में चुटू सूत्र से आदि में आने वाला ण् तथा हलन्त्यम् सूत्र से त् लुप्त हो जाते हैं। केवल य भर बच रहता है। ( २ ) पुन यह देखना चाहिए कि इस प्रत्यय को पहले जुडना है या पीछे या बीच मे। इस सम्बन्ध में एक ही नियम है प्रत्यय ( ३।१।१ ) परश्च ( ३।१।२ ) अर्थात् प्रत्यय सदा बाद में ही जुडते है— ( केवल तद्धित का एक प्रत्यय बहुच् ऐसा है जो ईषदसमाप्ति अर्थ मे शब्द के पहिले जुडता है, जैसे बहुतृण आदि )। ( ३ ) फिर यह देखना चाहिए कि जिसमे प्रत्यय को जुडना है, उसमे अनुबन्धो के कारण किस विकार का होना आवश्यक है, जैसे अचो ञ्णिति ( ७।२।११५ ) अर्थात् ञित् तथा णित् प्रत्यय बाद में रहने पर पूर्व मे आने वाले अजन्त अङ्ग के स्वर की वृद्धि हो जाती है। इस सूत्र के अनुसार 'हृ' के आगे 'ण्यत्' आने पर 'हृ' के ऋ में वृद्धि होकर 'आर्' हो जाता है। ( ४ ) और अन्त मे, अर्थ समझने के लिए 'किस हेतु से प्रत्यय लगा है' इसे समझना चाहिए। कृदन्त तथा तद्धित प्रकरणो मे इसका विशेष विवेचन किया जायगा। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए यदि कोई अध्ययन करे तो अल्पकाल में ही साधारण कोटि का व्युत्पन्न हो सकता है।

# प्रथम सोपान

## वर्ण-विचार

१—सस्कृत शब्द का अर्थ है 'सस्कार की हुई, परिमार्जित, शुद्ध, सम्प्रति इस शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल मे आर्य पण्डितो की बोली थी और इसी के द्वारा चिरकाल तक आर्य विद्वानो का परस्पर व्यवहार होता था। जन-साधारण की भाषा का नाम प्राकृत था। सस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषत आज भी है, क्योकि आर्य-सभ्यता के द्योतक अधिकाश ग्रन्थ इसी मे है और इसके ही ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

'व्याकरण' का अर्थ है 'किसी वस्तु के टुकडे-टुकडे करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना।' यह शब्द भाषा के सम्बन्ध मे ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा वाक्यो का समूह है। वाक्य कोई बडे होते हैं, कोई छोटे। बडे वाक्य बहुधा छोटे वाक्यो के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुत वाक्य भाषा का आधार है। वाक्य शब्दो का समूह होता है। प्रत्येक शब्द मे कई वर्ण होते हैं, जिनको अक्षर भी कहते हैं। अक्षर शब्द का अर्थ है 'अविनाशी'—जिसका कभी नाश न हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योकि प्रत्येक (वर्ण का) नाद अविनश्वर है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण-काल मे नाद कहलावेंगे और उस दशा में शब्द नादो का समूह होगा और इस नाद-समूह को शब्द भी इसीलिए कहते हैं क्योकि नाद, शब्द और ध्वनि का प्राय एक ही अर्थ है। अतएव महाभाष्यकार ने कहा है 'तस्माद् ध्वनि शब्द'। सृष्टि मे इन नादो का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित सख्या मे ही नादो का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा मे

बहुत मे ऐसे नाद है, जो सस्कृत भाषा मे नही । सस्कृत मे कई ऐसे हैं जो फारसी, अँग्रेजी आदि मे नही ।

२—सस्कृत भाषा मे जिन अक्षरो का उपयोग होता है, वे ये हैं—

| | | |
|---|---|---|
| अ इ उ ऋ लृ | —ह्रस्व | ( सादे ) } स्वर |
| आ ई ऊ ॠ | —दीर्घ | ( सादे ) |
| ए ऐ ओ औ | —दीर्घ | ( मिश्रविकृत ) |
| क ख ग घ ङ | —कवर्ग | ( कु )[1] |
| च छ ज झ ञ | —चवर्ग | ( चु ) |
| ट ठ ड ढ ण | —टवर्ग | ( टु ) |
| त थ द ध न | —तवर्ग | ( तु ) |
| प फ ब भ म | —पवर्ग | ( पु ) |
| य र ल व | —अन्तःस्थ | |
| श ष स ह | —ऊष्म वर्ण | |
| | —अनुस्वार | |
| | —अनुनासिक | |
| | —विसर्ग | |

१ पाणिनि ने इन्ही अक्षरो को इस क्रम मे बाँधा है—

अइउण् (१), ऋलृक् (२), एओङ् (३), ऐऔच् (४), हयवरट् (५), लण् (६), ञमङणनम् (७), झभञ् (८), घढधष् (९), जबगडदश् (१०), खफछठथचटतव् (११), कपय् (१२), शषसर् (१३), हल् (१४) ।

ये चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, क्योकि पाणिनि को महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे, ऐसा सम्प्रदाय है । इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं, क्योकि इनके द्वारा सरलता से और सूक्ष्म रीति से अक्षरो का बोध हो जाता है । ऊपर के जो अक्षर हल् हैं इत् कहलाते हैं, जैसे ण्, क् आदि । इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं । पूर्व के किसी सूत्र का कोई वर्ण लेकर उसको यदि आगे की किसी इत् के पूर्व जोड दें तो प्रत्याहार बनेगा वह उस पूर्व वर्ण का

---

१ कु, चु, टु, तु, पु उदित् कहलाते हैं तथा अपने-अपने 'वर्ग' के वाचक होते है, जैसे कु से कवर्ग, चु से चवर्ग, टु से टवर्ग आदि ।

तथा उसके और इत् के बीच के सभी वर्णों का (बीच मे पडने वाले इतो को छोडकर) बोधक होगा, ( आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१ )। यथा—अक् अ इ उ ऋ लृ का, शल् श ष स ह का।

(क) यद्यपि प्रत्याहार की इस विधि के अनुसार उनकी सख्या सहस्रो हो सकती है, तथापि प्रत्याहार ४३ ही हैं। इसका कारण यह है कि मुनित्रय पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया मे जितने प्रत्याहारो की आवश्यकता पडी और फलत जितने का उन्होने उपदेश किया, उतने ही प्रत्याहार प्रयोग मे आये। आवश्यकता पडने पर उनकी सख्या बढ भी सकती थी।

मिश्रविकृत दीर्घ किन्ही दो भिन्न स्वरो के मिश्रण-विशेष से बनता है, जैसे—अ+इ=ए, अ+उ=ओ।

स्वर का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, जिसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। ऐसे वर्ण जिनका बिना किसी दूसरे वर्ण ( अर्थात् स्वर ) से मिले हुए उच्चारण नही हो सकता, व्यजन कहलाते हैं। ऊपर क से लेकर ह तक सारे वर्ण व्यजन हैं। क मे अ मिला है, इसका शुद्ध रूप केवल क् होगा। स्वरो का दूसरा नाम अच् भी है, क्योकि पाणिनि के क्रमानुसार स्वरवाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तगत आ जाते हैं। ( प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च् )। इसी प्रकार व्यजन का दूसरा नाम हल् भी है, क्योकि व्यजनवाची प्रत्याहार सूत्र सब ( ५ से १४ तक ) इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इन हलो ( व्यजनो ) के स्वरविहीन शुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए इनके नीचे तिरछी रेखा ( ् ) लगा देते हैं जिसे हल्-चिह्न कहते हैं।

उदितो के पञ्चम वर्ण अर्थात् ङ, ञ्, ण्, न्, म् को भी अनुनासिक कहते हैं, क्योकि इनका उच्चारण मुख और नासिका दोनो से होता है।[1]

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ (सादे और मिश्रविकृत ) और प्लुत।[2]

---

१ मुखनासिकावचनोऽनुनासिक।१।१।८।

२ ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुत १।२।२७।

स्वर के उच्चारण में यदि एक मात्रा-समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे—अ, यदि दो मात्रा-समय लगे तो दीर्घ, जैसे—आ (मिश्रविकृत स्वर दीर्घ होते हैं।) और यदि तीन मात्रा-समय लगे तो प्लुत कहलाता है, जैसे अ३ । इस अंतिम प्रकार के स्वर का प्रयोग प्राय पुकारने मे होता है, यथा—राम ३।[1]

(ख) उच्चारण के अनुसार ही उन्ही स्वरो के तीन भेद है—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।[2]

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते हैं। एक अनुनासिक जिनमे नासिका से भी उच्चारण मे कुछ सहायता ली जाती है, यथा—अँ, आँ, एँ, ऐं आदि और दूसरे अननुनासिक अर्थात् सादे यथा—अ, आ, ए, ऐ आदि।

व्यजनो[3] के भी कई भेद हैं—क से लेकर म तक के व्यजन 'स्पर्श' कहलाते हैं। इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग हैं। य, र, ल, व 'अत स्थ' है अर्थात् स्वर और व्यञ्जन के बीच के है। श, ष, स, ह 'ऊष्म' हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से जरा अधिक जोर से श्वास लानी पडती है।

विसर्ग को वस्तुत एक छोटा ह समझना चाहिए। यह सदा किसी स्वर के अन्त में आता है। यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है। यह जिस स्वर के पश्चात् जुटा होगा उसी के उच्चारण-स्थान से उच्चरित होगा।

क और ख के पूर्व कभी-कभी एक अर्धविसर्ग-सा उच्चारण के प्रयोग मे आता है। उसे (ᳵ) इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं, और उसकी सज्ञा जिह्वामूलीय बताते हैं। इसी प्रकार से प और फ के पूर्व वाले विसर्गनाद को उपध्मानीय कहते है और उसी (ᳵ) चिह्न से व्यक्त करते हैं।

---

१ एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जन चार्धमात्रकम् ॥

२ उच्चैरुदात्त (१।२।२९), नीचैरनुदात्त (१।२।३०), समाहार स्वरित (१।२।३१) उच्चारण-स्थान के उच्च अश से उच्चरित स्वर, उदात्त, नीचे से अनुदात्त तथा दोनो से स्वरित कहलाता है।

३ कादयो मावसाना स्पर्शा । यरलवा अन्त स्था । शषसहा ऊष्माण ।

अनुस्वार यदि पचवर्गीय अक्षरो के पूव आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पचम अक्षर-सा होता है, यदि अन्यत्र आवे तो उसका एक विभिन्न ही (केवल नासिका से) उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तित्व भी अलग है ।

व्यजनो[1] का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण भी किया जाता ह । जिनक उच्चारण मे कम श्वास की आवश्यकता होती है, वे अल्पप्राण और जिनमे अधिक की, वे महाप्राण होते हैं । वर्गो के प्रथम, तृतीय और पचम वर्ण तथा अन्त स्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ तथा ऊष्म—महाप्राण हैं ।

३—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्दर से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर, उसे मुख के अवयवविशेषो से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय । इस विकार के उत्पन्न करने मे नासिका तथा मुख के भाग प्रयोग मे आते है । विकार के कारण ही नादो मे भेद पड जाता है । जिन-जिन अवयवो से विकार उत्पन्न किया जाता है, उनको नादो का स्थान कहते हैं ।

(क) हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार हैं[2]—

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अ, | आ, | विसर्ग, | क, | ख, | ग, | घ, | ङ, | | —कण्ठ |
| इ, | ई, | य, | च, | छ, | ज, | झ, | ञ, | श | —तालु |
| ऋ, | ॠ, | र, | ट, | ठ, | ड, | ढ, | ण, | ष | —मूर्धा |
| लृ, | ॡ | ल, | त, | थ, | द, | ध, | न, | स | —दन्त |
| उ, | ऊ, | उपध्मानीय, | प, | फ, | ब, | भ, | म | | —ओष्ठ |

---

१ वर्गाणा प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणा ।
वर्गाणा द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा ।

२ अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ ।
इचुयशाना तालु ।
ऋटुरषाणा मूर्धा ।
लृतुलसाना दन्ता ।
उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ ।
ञमङणनाना नासिका च

एदैतो कण्ठतालु ।
ओदौतो कण्ठोष्ठम् ।
वकारस्य दन्तोष्ठम् ।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।
नासिकानुस्वारस्य ।

ञ, म, ङ, ण, न—इनके उच्चारण मे नासिका की सहायता आवश्यक है, इस प्रकार ञ् के उच्चारण-स्थान तालु और नासिका दोनो है, ङ के कठ और नासिका—इत्यादि ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ए | और | ए | —कठ और तालु |
| ओ | और | औ | —कठ और ओठ |
| व | | | —दाँत और ओठ |
| जिह्वामूलीय | | | —जिह्वा की जड |
| अनुस्वार | | | —नासिका । |

इन वर्णों के उच्चारण मे दो प्रकार का प्रयत्न होता है, एक उनके स्फुट उच्चारित होने के पूव और दूसरा उच्चारण क्रिया के पश्चात् । अत पहिले को आभ्यन्तर और दूसरे को बाह्य प्रयत्न कहते है । आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते है—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और सवृत । इनमे स्पर्श वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है, अन्त स्थो का ईषत्स्पृष्ट, ऊष्मा का ईषद्विवृत, स्वरो का विवृत तथा केवल ह्रस्व अ का सिद्ध प्रयोग रूप मे सवृत, अन्यथा तो, अन्य स्वरो की भाँति उसका भी विवृत ही होता है ।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार के होते है—विवार, सवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।

इनमे वर्गो के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श्ष्स् ( खर् ) का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है । शेष ( हश् ) का सवाद, नाद और घोष । अल्पप्राण ओर महाप्राण का निर्देश पहले किया जा चुका है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न केवल स्वरो का होता है ।

एक[1] ही स्थान से निकलने वाले तथा एक ही आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्ण सवर्ण कहलाते है । भिन्न स्थानो से उच्चारण किये हुए वर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते है । ऋ और लृ मे उच्चारण स्थान का भेद रहने पर भी परस्पर सवर्णता रहती है ।

---

१ तुल्यास्यप्रयत्न सवर्णम् ।१।१।६। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रत्यन-श्चेत्येतद्द्वय यस्य येन तुल्य तन्मिथ सवर्णसज्ञ स्यात् ।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान सस्कृत वैयाकरणो के अनुसार दिये गये है। आजकल किसी-किसी वर्ण के उच्चारण में भेद पड गया है, यथा—ऋ का उच्चारण हम लोग शुद्ध नही करते। कोई रि करते है कोई रु। ष का उच्चारण मूर्धा ( तालु के सबसे ऊपर के भाग ) से होना चाहिए, किन्तु बहुधा लोग इसे श की तरह बोलते हैं और कोई-कोई ख की तरह। लृ का उच्चारण तो साहित्यिक सस्कृत के समय मे ही लुप्तप्राय हो गया था।

वर्णमाला में ह के उपरान्त बहुधा क्ष, त्र, ज्ञ देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नही हैं—दो वर्णों के मेल हैं—

क्ष=क्+ष, त्र=त्+र, ज्ञ=ज्+ञ।

इस कारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है।

# द्वितीय सोपान

## सन्धि-विचार

४—ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक वाक्य मे कई शब्द रहते हैं। सस्कृत के शब्द का किसी भी स्वर अथवा व्यजन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग मे अन्त हो सकता है।

दो शब्द जब पास-पास आते है तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण मे अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण मे अथवा दोनो में कुछ परिवतन हो जाता है। उदाहरणार्थ हिन्दी भाषा को ले। जब हम सँभाल-सँभाल कर बोलते है तब तो कहते हैं—चोर् ले गया, मार् डाला, पहुँच् जाऊँगा। किन्तु इन्ही वाक्यो को यदि बहुत जल्दी मे बोले तो उच्चारण इस प्रकार होगा—चोल् ले गया, माड् डाला, पहुँज् जाऊँगा। इसी प्रकार जितनी बोलचाल की भाषाएँ है उनमे परिवर्तन होता है। साधारण वक्ता इस परिवर्तन को नही जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक अपनी अथवा दूसरे की बोली को सुने तो हमे इस कथन के सत्य का निश्चय हो जाय। सस्कृत भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को "सन्धि" कहते हैं। सन्धि का साधारण अर्थ है "मेल"। दो वर्णों के निकट आने से मेल उत्पन्न होता है, उसे, इसीलिए सन्धि कहते हैं। सन्धि के लिए दोनो वर्ण एक दूसरे के पास-पास सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्त्ती शब्दो मे सन्धि नही हो सकती। वर्णों की इस समीप स्थिति को सहिता[1] कहते है। इसलिए सस्कृत भाषा मे सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दो में निकटता की घनिष्टता हो उनमे सन्धि अवश्य हो, जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना, न करना बोलने वाले की इच्छा पर निर्भर है। नियम यह है—

---

१ पर सन्निकर्ष सहिता १।४।१०९।

एकपद[1] के भिन्न-भिन्न अवयवो में धातु और उपसर्ग के बीच और समास मे सन्धि अवश्य होनी चाहिए (क्योकि वहाँ सहिता ऐच्छिक नही हो सकती), वाक्य के अलग-अलग शब्दो के बीच मे सन्धि करना, न करना (सहिता) बोलने वाले की इच्छा पर है। जैसे—

एकपद—पौ+अक =पावक ।

उपसर्ग और धातु—नि+अवसत्=न्यवसत्, उत्+अलोकयत्=उदलोकयत् ।

समास—कृष्ण+अस्त्रम्=कृष्णास्त्रम्, श्री=ईश =श्रीश ।

वाक्य—राम गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम् ।

५—सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्तन उपस्थित हो सकते हैं—

( १ ) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का (यथा—राम आयाति= राम आयाति ), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का ( यथा—दोष +अस्ति =दोषोऽस्ति ) ।

( २ ) दोनो के स्थान मे कोई नया वर्ण ( यथा—रमा+ईश =रमेश ) अथवा दो मे से किसी एक के स्थान मे नया वर्ण (यथा—नि+अवसत्=न्यवसत्, कस्मिन्+चित्=कस्मिंश्चित् ) ।

( ३ ) दो मे से एक का द्वित्व (यथा—एकस्मिन्+अवसरे=एकस्मिन्न-वसरे ) ।

शब्दो की निकटता इसलिए नीचे लिखे प्रकारो की होगी—

( १ ) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हो ।

---

१ सहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ।।

वाक्य में जो विवक्षा दी गयी है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक उचित नहीं समझते और विकल्प के रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं । पद्य में तो यदि सन्धि का अवसर हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष कहते हैं—न सहिता विवक्षामीत्यसन्धान पदेषु यत्तद्विसन्धीति निर्दिष्टम् । (काव्यादर्श) ।

( २ ) जहाँ दो मे से पर स्वर हो, पूर्व व्यजन ।

( ३ ) जहाँ दोनो व्यजन हो ।

( ४ ) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यजन । द्वितीय के आरम्भ मे विसर्ग नही आ सकता, क्योंकि विसर्ग से किसी शब्द का प्रारम्भ नही होता ।

इनमे से ( १ ) को स्वर-सन्धि, ( २ ) और ( ३ ) को व्यजन-सन्धि और ( ४ ) को विसर्ग-सन्धि कहते है ।

## स्वर-सन्धि

६—यदि[1] साधारण ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ स्वर् के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे, तो दोनो के स्थान मे 'सवर्ण-दीर्घ' स्वर होता है, यथा—

| | |
|---|---|
| दैत्य+अरि =दैत्यारि । | तव+आकार =तवाकार । |
| यदा+अभवत्=यदाभवत् । | विद्या+आतुर =विद्यातुर । |
| इति+इव=इतीव । | अपि+ईक्षते=अपीक्षते । |
| श्री+ईश =श्रीश । | राज्ञी+इह=राज्ञीह । |
| विष्णु+उदय =विष्णूदय । | साधु+ऊचु =साधूचु । |
| चमू+ऊर्ज =चमूर्ज । | वधू+उपरि=वधूपरि । |
| कॄ+ऋकार =कॄकार । | होतृ+ऋकार =होतॄकार । |

यदि ऋ या लृ के बाद ह्रस्व ऋ या लृ आवे तो दोनो के स्थान मे ह्रस्व ऋ या लृ भी स्वेच्छा से करते है,[2] जैसे—होतृ+ऋकार =होतृकार या होतॄकार ।

इस प्रकार सब मिलाकर तीन रूप हुए—

( १ ) होतृकार ( २ ) होतॄकार ( ३ ) होऋकार[3] ।

होत+लृकार =होतलृकार अथवा होतृ लृकार ।

---

१ अक सवर्णे दीर्घ ६।१।१०१।

२ 'ऋति सवर्णे ऋ वा' तथा 'लृति सवर्णे लृ वा' ( वार्त्तिक )

३ होतृऋकार यह रूप तो ऋत्यक ६।१।१२८ से प्रकृतिभाव होने से बना है ।

७—यदि[1] अ या आ के बाद (१) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनो के स्थान मे "ए" हो जाता है, (२) यदि ह्रस्व उ या दीघ ऊ आवे तो दोनो के स्थान मे "ओ" हो जाता है, (३) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनो के स्थान मे "अर्" हो जाता है, (४) यदि लृ आवे तो दोनो के स्थान मे "अल्" हो जाता है। इस सन्धि का नाम गुण है। जैसे—

उप+इन्द्र =उपेन्द्र । गण+ईश =गणेश ।
रमा+ईश =रमेश । गङ्गा+ईश्वर =गङ्गेश्वर ।
वृक्ष+उपरि=वृक्षोपरि । गगन+ऊर्ध्वम्=गगनोर्ध्वम् ।
गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम् । मायया+ऊजस्वि=माययोजस्वि ।
कृष्ण+ऋद्धि =कृष्णर्द्धि । ग्रीष्म+ऋतु =ग्रीष्मर्तु ।
महा+ऋषि =महर्षि । महा+ऋद्धि =महर्द्धि ।
तव+लृकार =तवल्कार ।

कुछ स्थल ऐसे है जहाँ पर यह नियम नही लगता, वे नीचे दिखाये जाते है—

(क)[2] अक्ष+ऊहिनी=अक्षौहिणी । (यहाँ पर "न" के स्थान मे "ण" कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा।) यहाँ गुण स्वर ओ न होकर वृद्धि स्वर औ हुआ है।

(ख)[3] जब "स्व" शब्द के बाद "ईर" और ईरिन आते है तो "स्व" के अकार और ईर् व ईरिन् के ईकार के स्थान मे "ऐ" हो जाता है, जैसे— स्व+ईर =स्वैर (स्वेच्छाचारी)। स्व+ईरिणी=स्वैरिणी । स्व+ईरम्=स्वैरम् । स्व+ईरी=स्वैरी (जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो)।

(ग)[4] जब प्र के बाद ऊह, ऊढि, एष, एष्य आते है तो दोनो के स्थान पर सन्ध्यक्षर गुण स्वर न होकर वृद्धि स्वर होता है। जैसे—

---

१ आदगुण ।६।१।८७।
२ अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम् (वार्तिक)।
३ स्वादीरेरिणो (वार्तिक)।
४ प्रादूहोढचेषैष्येषु (वार्तिक)।

प्र+ऊह =प्रौह । प्र+ऊढ =प्रौढ । प्र+ऊढि =प्रौढि ।

प्र+एष =प्रैष । प्र+एष्य =प्रैष्य ।

(इनमे प्रथम तीन उदाहरण 'आद्गुण' सूत्र तथा अन्तिम दोनो 'एङि पररूपम्' के अपवाद ह ।)

(घ)[1] यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु आवे जिसके आदि मे ह्रस्व "ऋ" हो तो "अ" और "ऋ" के स्थान मे "आर्" (वृद्धि) नित्य हो जाता है, जैसे—
उप+ऋच्छति=उपार्च्छति । प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति ।

किन्तु[2] यदि नामधातु हो तो "आर्" विकल्प से होगा, जैसे—

प्र+ऋषभीयति=प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति (बैल की तरह आचरण करता है) ।

(ङ)[3] जब ऋत शब्द के साथ किसी पूर्वगामी शब्द का तृतीयासमास हो, तब भी पूर्वगामी अ और ऋत के ऋ से मिलाकर आर् बनेगा, अर् नही । जैसे—
सुखेन ऋत =सुख+ऋत =सुखार्त ।

(च) [4]अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ तथा ऌ जब किसी पद के अन्त मे रहे और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आवे तो वे विकल्प से ह्रस्व हो जाते हैं । यदि पहले से ह्रस्व है, तो वह भी फिर से हुआ ह्रस्व माना जायगा और इस प्रकार हुई ह्रस्व विधि में फिर दूसरी सन्धि नही होती । इसे 'प्रकृतिभाव' कहते हैं । यह नियम गुणसन्धि का विकल्प प्रस्तुत करता है, जैसे—

ब्रह्मा+ऋषि =ब्रह्म ऋषि, ब्रह्मर्षि । सप्त+ऋषीणाम्=
सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम् ।

८—जब[5] "अ" अथवा "आ" के बाद (१) "ए" या "ऐ" आवे, तो दोनो के स्थान में "ऐ" हो जाता है और (१) जब "ओ" या "औ" आवे, तो दोनो के स्थान में "औ" हो जाता है । इस सन्धि का नाम "वृद्धि" है, यथा—

---

१ उपसर्गादृति धातौ ।६।१।९१।

२ वा सुप्यापिशल ६।१।९२।

३ ऋते च तृतीयासमासे (वार्त्तिक) ।

४ ऋत्यक ।६।१।१२८। (ऋति परे पदान्ता अक प्राग्वत्) ।

५ वृद्धिरेचि ।६।१।८८।

( १ ) कृष्ण+एकत्वम=कृष्णैकत्वम् ।

गङ्गा+एषा=गङ्गैषा ।

( २ ) जल+ओघ =जलौघ । गङ्गा+ओघ =गङ्गौघ ।

## नियमातिरेक

( क )[1] यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो दोनो के स्थान मे "ए" या "ओ" हो जाता है, यथा—

प्र+एजते=प्रेजते । उप+ओषति=उपोषति ।

किन्तु[2] यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प से वृद्धि होती है जैसे—

उप+एडकीयति=उपेडकीयति या उपैडकीयति ।

प्र+औधीयति=प्रोधीयति या प्रौधीयति ।

( ख )[3] एव के साथ भी जब अनिश्चय का बोध हो, तब पूर्वगामी अकारान्त शब्द का अ और एव का ए मिल कर ए ही रह जायँगे, जैसे—

क्व एव भोक्ष्यसे—क्वेव भोक्ष्यसे ( कही भी खा लोगे ) ।

जब अनिश्चय नही रहेगा तब ऐ ही होगा, यथा 'तवैव' ।

( ग )[4] शक+अन्धु, कुल+अटा, मनस्+ईषा इत्यादि उदाहरणो मे भी परवर्ती शब्द के आदि स्वर का ही अस्तित्व रहता है । पूर्ववर्ती शब्द की टि' परवर्ती के आदि स्वर के रूप मे मिल जाती है । इनमे प्रथम दो उदाहरण अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से होने वाली दीर्घ सन्धि के अपवाद है ।

शक+अन्धु =शकन्धु, कुल+अटा=कुलटा, मनस्+ईषा=मनीषा ।

९—यदि[5] ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा लृ के बाद असवर्ण स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान मे क्रमश य्, व्, र् और ल् हो जाते है, जैसे—

---

१ एङि पररूपम् । ६।१।९४।

२ नामधातु के आगे रहने पर इस प्रकार की विकल्पता का कारण 'एङि-पररूपम्' मे वा सुप्यापिशले से 'वासुपि' की अनुवृत्ति है ।

३ एवे चानियोगे ( वार्त्तिक )।

४ शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्यम् ( वार्त्तिक ) तच्च टे—सि० कौ० ।

५ इको यणचि ।६।१।७७।

| | |
|---|---|
| दधि+अत्र=दध्यत्र । | इति+आह=इत्याह । |
| मधु+अरि=मध्वरि । | गुरु+आदेश=गुर्वादेश । |
| साधु+इति=साध्विति । | शिशु+ऐक्यम्=शिश्वैक्यम् । |
| धातृ+अंश=धात्रंश । | पितृ+आकृति=पित्राकृति । |
| सवितृ+उदय=सवित्रुदय । | मातृ+औदार्य्यम्=मात्रौदार्य्यम । |
| लृ+आकृति=लाकृति । | |

१०—ए[1], ऐ, ओ, औ (एच्) के आगे कोई भी स्वर आवे तो उन (एच्) के स्थान मे क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाते हैं, यथा—

हरे+ए=हरये । नै+अक=नायक ।

विष्णो+ए=विष्णवे । पौ+अक=पावक ।

(क) पदान्त[2] य् या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई 'अश्' प्रत्याहार का वर्ण आवे तो य् और व् का विकल्प से लोप होता है और लोप होने के पश्चात् उनमे फिर कोई सन्धि नही होती, यथा—

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| हरे | + | एहि | = | हर | एहि | या | हरयेहि |
| विष्णो | + | इह | = | विष्ण | इह | या | विष्णविह |
| तस्यै | + | इमानि | = | तस्या | इमानि | या | तस्यायिमानि |
| श्रियै | + | उत्सुक | = | श्रिया | उत्सुक | या | श्रियायुत्सुक |
| गुरौ | + | उत्क | = | गुरा | उत्क | या | गुरावुत्क |
| रात्रौ | + | आगत | = | रात्रा | आगत | या | रात्रावागत |
| ऋतौ | + | अन्नम् | = | ऋता | अन्नम् | या | ऋतावन्नम् |

मध्यस्थ[3] व्यजन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायँ तो प्राय उनकी आपस मे सन्धि नही होती ।

(ख)[4] जब ओ या औ के बाद यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय, जिसके

---

१ एचोऽयवायाव ।६।१।७८।

२ लोप शाकल्यस्य ।८।३।१९।

३ 'पूर्वत्रासिद्धमिति' लोपशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न स्वरसन्धि ।

४ वान्तो यि प्रत्यये ।६।१।७९।

आरम्भ मे 'य्' हो ) आवे तो "ओ" और "औ" के स्थान मे क्रम से अव् और आव् हो जाते है, यथा—

(गोविकारो) गो+यत्=गव्यम् । (नावा तार्य) नौ+यत्=नाव्यम् ।

**११**—पदान्त[1] एकार या ओकार के बाद यदि "अ" आवे तो दोनो के स्थान मे क्रमश —एकार तथा ओकार ( पूवक ) हो जाते है, और ऽ चिह्न अ की पूव उपस्थिति की सूचना मात्र देन को दिया जाता है, जैसे—

हरे + अव = हरेऽव (हे हरि रक्षा कीजिए ) ।
विष्णो + अव =विष्णोऽव ( हे विष्णु रक्षा कीजिए ) ।

( क )[2] परन्तु गो शब्द के आगे अ आये तो विकल्प से प्रकृतिभाव भी हो जाता है और जैसे—गो+अग्रम्=गो अग्रम्, अन्यथा पूर्वनियम से पूर्वरूप होने पर गोऽग्रम् होता है ।

( ख )[3] यदि गो के बाद कोई स्वर हो तो गो के ओ के लिए 'अव' का आदेश भी विकल्प से हो जाता है, जैसे—

गो+अग्रम्=गवाग्रम् या गो अग्रम् या गोऽग्रम् ।

( ग )[4] यदि इन्द्र शब्द आगे रहे, तो गो के ओ को 'अव' आदेश नित्य होता है । जैसे—गो+इन्द्र =गवेन्द्र ।

**१२**—यदि[5] प्लुत स्वर के बाद अथवा प्रगृह्यसज्ञक वर्णों के बाद कोई स्वर आवे तो सन्धि नही होती । प्रगृह्यसज्ञा वाले वर्ण इस प्रकार है—

( क )[6] जब सज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रियावाचक शब्द के द्विवचन रूप के अन्त मे "ई" "ऊ" या "ए" रहता है, तो उस "ई" "ऊ" और "ए" को 'प्रगृह्य' कहते है, जैसे—हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ ।

---

१ एड पदान्तादति ।६।१।१०६।

२ सर्वत्र विभाषा गो ।६।१।१२२।

३ अवङ स्फोटायनस्य ।६।१।१२३।

४ इन्द्रे च ।६।१।१२४।

५ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ।६।१।१२५।

६ ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् ।१।१।११।

(ख)[1] जब अदस् शब्द के मकार के बाद ई या ऊ आते है तो वे प्रगृह्य होते हैं, जैसे—अमी ईशा, अमू आसाते (इसमें उस ई या ऊ का द्विवचनान्त होना आवश्यक नही)।

(ग)[2] आङ के अतिरिक्त अन्य एकस्वरात्मक निपातो (अव्ययो) की भी प्रगृह्य सज्ञा होती हैं, जैसे—इ इन्द्र, उ उमेश, आ एव नु मन्यसे।

(घ)[3] जब निपात (अव्यय) ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे—अहो ईशा।

(ङ)[4] सज्ञा शब्दो के सम्बोधन के अन्त क ओकार के बाद "इति" शब्द आवे तो सम्बुद्धि निमित्तक उस ओकार की विकल्प से प्रगृह्य सज्ञा होती है, जैसे—विष्णो+इति=विष्णो इति, विष्ण इति विष्णविति।

प्लुतो के साथ भी सन्धि नही होती, जैसे—एहि कृष्ण३ अत्र गौश्चरति। यहाँ दूर से पुकारने वाले वाक्य की 'टि' प्लुत हो गयी।[5]

## हल् सन्धि

१३—(क[6]) जब सकार या तवर्ग शकार या चवर्ग के योग में आता है तो सकार और तवर्ग के स्थान मे क्रम से शकार और चवर्ग हो जाता है, जैसे—

हरिस्+शेते=हरिश्शेते—हरि सोता है।

रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति—राम इकट्ठा करता है।

सत्+चित्=सच्चित्—सत्य और ज्ञान।

शार्ङ्गिन्+जय=शार्ङ्गिञ्जय—हे विष्णु जय हो।

सत्+शिष्य=सच्शिष्य (अच्छा शिष्य) (इसका सच्छिष्य रूप आगे शश्छोटि नियम मे बताया जायगा)।

---

१ अदसो मात्। १।१।१२।

२ निपात एकाजनाङ्। १।१।१४।

३ ओत्। १।१।१५।

४ सबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। १।१।१६।

५ दूराद्धूते च। ८।२।८४।

६ स्तो श्चुना श्चु। ८।४।४०।

**अपवाद**[1]—जब तवर्ग "श्" के बाद आते है, तो उनके स्थान मे चवर्ग नही होते, जैसे—विश्+न =विश्न । प्रश्+न =प्रश्न ।

( ख )[2] जब स् अथवा तवर्ग ष् या टवर्ग के योग मे आता है तो स् के स्थान मे ष् और तवर्ग के स्थान म टवग हो जाते है, जैसे—रामस्+षष्ठ =रामष्षष्ठ । राम छठवाँ है । रामस्=टीकते=रामष्टीकते—राम जाता है ।

तत्+टीका=तट्टीका—उसकी व्याख्या ।
चक्रिन्+ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे—हे कृष्ण, तू जाता है ।
पेष्+ता=पेष्टा—पीसने वाला ।

( ग ) पदान्त[3] टवर्ग से परे 'नाम' प्रत्यय ( तथा नवति और नगरी शब्दो) के नकार को छोडकर कोई तवर्ग-वर्ण या सकार हो तो उसके स्थान मे टवग या षकार आदेश नही होता, जैसे—

षट्+सन्त =षट्सन्त । षट्+ते=षट् ते ।
परन्तु षड्+नाम्=षण्णाम् । षड्+नवति =षण्णवति ।
षड्+नगर्य =षण्णगर्य मे टवर्ग आदेश हो जाता है ।

( घ ) यदि[4] तवग के किसी अक्षर के बाद ष् आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नही होता, जैसे—सन्+षष्ठ =सन्षष्ठ ।

१४—जब[5] झल (अर्थात् अन्तस्थ और अनुनासिक व्यजन को छोडकर और किसी भी व्यजन) के उपरान्त झश् (अर्थात् किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण) आवे, तो पूर्ववर्ती व्यजन जश् (अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय वण) मे परिणत हो जाता है ।(यह सन्धि प्राय अपदान्त वर्णों मे ही चरितार्थ होती है । पदान्त वर्णों मे तो आगे वाली विधि प्रवृत्त होगी ) जैसे—

१ शात् ।८।४।४४।
२ ष्टुना ष्टु ।८।४।४१।
३ नपदान्ताट्टोरनाम् ।८।४।४२। (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्—वा०)
४ तो षि ।८।४।४३।
५ झला जश् झशि ।८।४।५३।

वृध्+ध =वृद्ध । सन्नध्+ध =सन्नद्ध ।

( क ) पदान्त[1] के 'झल्' के स्थान मे 'जश्' आदेश हो जाता है, जैसे—
वाक्+ईश =वागीश । जलमुक्+गजति=जलमुग्गर्जति ।

१५—यदि[2] यर् प्रत्याहार (अर्थात् ह को छोडकर किसी पदान्त व्यजन) के बाद कोई अनुनासिक वण आवे, तो यर् के स्थान मे उसी वगवाला अनुनासिक वण विकल्प से होता है, और यदि किसी प्रत्यय का अनुनासिक वर्ण आगे हो, तो नित्य होता है। जैसे—

एतद्+मुरारि —एतन्मुरारि । षट्+मासा =षण्मासा ।
षट्+नगर्य =षण्णगर्य । तद्+मात्रम्=तन्मात्रम् ।
चिद्+मयम्=चिन्मयम् । वाक्+मयम्=वाङ्मयम् ।

[3]क् से म् तक के वर्णों मे यह नियम सुविधा के साथ चरितार्थ हो जाता है, अत र् का सवर्णी अनुनासिक करने मे नही लगता। अतएव चतुर्मुख आदि मे र् के स्थान मे कोई अनुनासिक वण नही होता। (बचे यण् और ऊष्मा, उनमे य् व् ल् का तो अनुनासिक हो भी सकता है, श् ष् स् की तो अन्त मे सत्ता ही दूसरे रूप मे रहती है।)

१६—तवर्ग[4] के बाद यदि ल् आवे तो उसके स्थान मे ल् हो जाता है, जैसे—
तत्+लय =तल्लय ( उसका नाश ) ।
वृक्षात्+लगुडम्=वृक्षाल्लगुडम् ।
(न् के स्थान मे ल् अनुनासिक अर्थात् लँ होता है)
विद्वान् + लिखति=विद्वाल्लिँखति ।

---

१ झला जशोऽन्ते ।८।२।३९।

२ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ।८।४।४५।
प्रत्यये भाषाया नित्यम् ( वा० )

३ स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरितार्थो विधिरय रेफे न प्रवर्तते।
सि० कौ० ।

४ तोर्लि ।८।४।६०।

( क ) यदि[1] उद् के पश्चात् स्था या स्तम्भ शब्द आवे तो उनके स् को थ् का आदेश होगा। जैसे उद्+स्थानम्=उत्थ्थानम्, और स् के स्थान मे आदिष्ट इस थ् का विकल्प से लोप होने पर उत्थानम्[2] भी रूप बनता है। उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम्। थ का लोप न होने पर उत्थ्तम्भनम् रूप बनेगा ( इस आदिष्ट थ् को त् करने पर थ् आदेश ही असिद्ध हो जायगा) ( द् के स्थान मे त् कैसे हुआ इसके लिए देखिए नियम १८)।

१७—यदि[3] वर्गों के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ वर्णो अर्थात् य् प्रत्याहार के बाद ह् आवे तो ह् के स्थान मे उसी वर्ग का चौथा अक्षर विकल्प से होता है, जैसे—वाक्+हरि =वाग्घरि अथवा वाग्हरि ।

यहाँ कवग के प्रथम अक्षर क् के बाद ह् आया है अत ह् के स्थान मे कवग का चतुर्थ अक्षर घ् हो गया, ( क् के स्थान मे ग् कैसे हुआ, इसके लिए देखिए नियम १४ )।

१८—झल्[4] अर्थात् अनुनासिक व्यंजन (ञ्, म्, ङ ण्, न्) तथा अन्तस्थ वर्णो को छोडकर और किसी व्यंजन के बाद यदि खर् अर्थात् क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् मे से कोई वर्ण आवे, तो पूर्वोक्त व्यंजन के स्थान मे चर् अर्थात् उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है, परन्तु[5] जब उसके बाद कुछ भी नही रहता, तब उसके स्थान मे प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है, जैसे—उद्+कीर्ण =उत्कीर्ण । सुहृद् क्रीडति= सुहृत्क्रीडति । वाक्, वाग् । रामात्, रामाद् ।

१९—श्[6] यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे, जिसके अन्त मे झय् (अर्थात् वर्गों के प्रथम, द्वितीय या चतुर्थ वर्ण) हो और श् के बाद अट् बल्कि अम् तक

---

१ उद स्थास्तम्भो पूर्वस्य ।८।४।६१।

२ झरो झरि सवर्णे।८।४।६५ ।

३ झयो होऽन्यतरस्याम् ।८।४।६२ ।

४ खरि च ।८।४।५५।

५ वाऽवसाने ।८।४।५६।

६ शश्छोऽटि ।८।४।६३। छत्वममीति वाच्यम् ।

(अर्थात् कोई स्वर, अन्त स्थ, अनुनासिक व्यजन या ह् ) रहे तो श् के स्थान मे विकल्प से छ होता है, जैसे—

तद+शिव =तच्छिव , तच्शिव ।

तद्+श्लोकेन=तच्छलोकेन, तच्श्लोकेन ।

२०—पदान्त[1] म् के बाद यदि कोई व्यजन आवे, तो उसके स्थान मे अनुस्वार हो जाता है, जैसे—

हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे । गहम्+चलति=गृहं चलति ।

किन्तु गम्+य+ते=गम्यते, न कि गयते होगा, क्योकि म् पद के अन्त मे नही है, बल्कि बीच मे है ।

२१—अपदान्त[2] म्, न् के बाद यदि झल् (अर्थात् अनुनासिक व्यजन तथा अन्त स्थ को छोड कर कोई भी व्यजन) आवे, तो म्, न् के स्थान मे अनुस्वार हो जाता है, जैसे—

आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते । यशान्+सि=यशांसि ।

परन्तु मन्+यते=मन्यते । यहा मयते नही होगा, क्योकि यहाँ पर न् के बाद य आ जाता है जो कि अन्त स्थ ।

उसी प्रकार ग्रामान्+गच्छति=ग्रामान् गच्छति । यहाँ पर ग्रामां गच्छति नही होगा, क्योकि न् पद के अत मे है ।

२२—यदि[3] पद के मध्य मे स्थित अनुस्वार के बाद यय् (अर्थात् श्, ष्, स् और ह् को छोडकर कोई भी व्यजन ) आवे, तो अनुस्वार के स्थान मे सर्वदा ही उस वर्ग का पचम वर्ण हो जाता है, जिस वर्ग का व्यजंन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है, जैसे—

गम्+ता=गं+ता ( २१ )=गन्ता । सन्+ति=संति ( २१ ) =सन्ति । अन्क्+इत =अंक्+इत ( २१ )=अंकित । शाम्+त =शां+त (२१) शान्त । अन्च्+इत =अंच+इत (२१) =अञ्चित ।

---

१ मोऽनुस्वार ।८।३।२३।

२ नश्चापदान्तस्य झलि ।८।४।२४।

३ अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण ।८।४।५८।

(क) यदि[1] अनुस्वार किसी पद के अन्त मे रहे तो ऊपर वाला नियम विकल्प से लगता है, जैसे—त्वम्+करोषि=त्व करोषि या त्वङ्करोषि। तृणम्+चरति=तृण चरति या तृणञ्चरति। नदीम्+तरति=नदी तरति या नदीन्तरति। पुस्तकम्+पठति=पुस्तक पठति या पुस्तकम्पठति।

(ख) किन्तु[2] जब राज् धातु परे हो और उसमे क्विप् प्रत्यय जुडा हो तब पूववर्ती सम् का म् ही रहेगा, अनुस्वार नही होगा, जैसे—

सम्+राट्=सम्राट्।

२३—किसी[3] एक ही पद मे यदि र्, ष्, अथवा ह्रस्व या दीर्घ ऋ के बाद न् आवे तो न् के स्थान मे ण् हो जाता है और यदि र्, ष् और न् के बीच मे कोई स्वर, य्, व्, र्, ह्, कवर्ग, पवग, आङ तथा अनुस्वार मे से कोई एक अथवा कई का व्यवधान आ जाय, तब भी न् के स्थान मे ण् होता है। इस नियम के प्रयोग को णत्वविधान कहते है, जैसे—

चतुर्+नाम्=चतुर्णाम्। पूष्+ना=पूष्णा। पितृ+नाम्=पितृणाम्।
मित्रा+नि=मित्राणि। द्रव्ये+न=द्रव्येण। रामे+न=रामेण।
शीर्षा+नि=शीर्षाणि।

किन्तु ऋषि+निवास=ऋषिनिवास, यहाँ "ऋषिणिवास" नही होगा, क्योकि "ऋषि" और "निवास" दो अलग-अलग पद है।

किन्तु[4] जब न् किसी पद के अन्त मे आता है तो वह ण् नही होता, जैसे—रामान्, पितॄन्, वृषभान्, ऋषीन्।

२४—यदि[5] इण् (अर्थात् अ, आ को छोड कर किसी स्वर, अन्त स्थ वर्ण, ह्) अथवा कवर्ग के बाद कोई प्रत्यय सम्बन्धी स्, या किसी दूसरे वर्ण के स्थान में

1 वा पदान्तस्य।८।४।५६।
2 मोराजि सम क्वौ।८।२।२५।
3 रषाभ्या नो ण समानपदे। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।८।४।१२। ऋवर्णान्नस्य णत्व वाच्यम्—(वा०)।
4 पदान्तस्य।८।४।३७।
5 अपदान्तस्य मूर्धन्य। इण्को। आदेशप्रत्यययो।८।३।५५,५७,५९।

आदेश किया हुआ स् आवे और वह पदान्त का न हो, उस स् के स्थान मे ष् हो जाता है। जैसे रामे+सु=रामेषु। वने+सु=वनेषु।

ए+साम्=एषाम्। अन्ये+साम्=अन्येषाम्।

इसी प्रकार मतिषु, नदीषु, धेनुषु, वधूषु, धातृषु, गोषु, ग्लौषु आदि जानना चाहिए।

किन्तु राम+स्य=रामस्य, यहा ष् नही हुआ क्योकि यहा स् के पूर्व 'अ' आया है। इसी प्रकार पेस्+अति=पेसति मे षत्व नही हुआ, क्योकि यह स् न तो किसी प्रत्यय का है, न आदेश का।

( क ) यदि स् पद के अन्त मे हो तो षत्वविधान न होगा, यथा—हरि ( यहाँ हरि शब्द के बाद आया हुआ 'स्' सु प्रत्यय का अवयव अवश्य है, किन्तु पद के अन्त मे है, इस कारण षत्व नही हुआ )।

( ख ) ऊपर[1] वर्णित वर्णो मे से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो, किन्तु अनुस्वार ( न् के स्थान मे आया हुआ ), विसर्ग, श्, ष्, स् मे से कोई वर्ण स् और पूर्व वर्णित वर्णो के बीच मे आ जाय, तब भी षत्वविधि होगी, यथा—धनून्+सि=धनूषि।

२५—सम् उपसर्ग के म् के बाद यदि कृ धातु का कोई रूप आवे (जो भूषित करने के अर्थ मे होने के कारण सुट् अर्थात् पूर्व मे स् से युक्त होता है ) तो म् के स्थान मे र् होता है और र् के पूर्व का स्वर अनुनासिक हो जाता है। र् विसर्ग होकर फिर स् मे परिणत हो जाता है यथा—सम्+स्कर्ता=सँस्+स्कर्ता=सँ+स्कर्ता=सँस्कर्ता। अनुनासिक के विकल्प पक्ष मे उस पूर्व स्वर के आगे अनुस्वार जुट जाता है। यथा—संस्कर्ता।

भाष्यकार के एक विशेष वचन द्वारा सम् के म् का ही लोप हो जाता है, जिससे एक सकार का भी रूप साधु माना जाता है। किन्तु म् का लोप भी अपने

---

१ नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।८।३।५८।

पूर्ववर्ती स के स्वर मे अनुनासिक तथा अनुस्वार का विकल्प से विधान करके ही होता है।[1]

२६—छ तथा छ के पूर्व वाले ह्रस्व[2] या दीर्घ[3] स्वर के बीच मे च् नित्य आता है, जैसे—(i) शिव+छाया=शिवच्छाया। वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया। (ii) चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते।

(क) किन्तु[4] छ के पूव (आङ उपसग को तथा "मा" के आ को छोडकर) कोई पदान्त दीघ स्वर आवे, तो ऊपरवाला नियम (छत्वविधान) विकल्प से लगता है, जैसे लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीछाया या लक्ष्मीच्छाया।

(ख) छ के पूव आङ और माङ[5] का आ होने पर च् अवश्य (नित्य) आयेगा, जैसे—मा+छिदत्=माच्छिदत्। यहाँ यही एक रूप होगा। माछिदत् न होगा। इसी प्रकार आ+छादयति="आच्छादयति"। यहाँ भी एक रूप होगा, "आछादयति" न होगा।

## विसर्ग सन्धि

२७—(१) पदान्त[6] स् तथा सजुष् शब्द के ष् के स्थान मे र (रु) हो जाता है। इस पदान्त[7] र के बाद खर् प्रत्याहार (वर्गो के प्रथम और द्वितीय

---

१ सपरिभ्या करोतौ भूषणे।६।१।१३७।, सम सुटि।८।३।५, अत्रानुनासिक पूर्वस्य तु वा।८।३।२, अनुनासिकात् परोऽनुस्वार।८।३।४, सम्पुकाना सो वक्तव्य, "समो वा लोपमेके" इति भाष्यम्। लोपस्यापि रुप्रकरणस्थत्वादनुस्वारानुनासिकाभ्यामेकसकार रूपद्वयम्। सि० कौ०।

२ छे च।६।१।७३।

३ दीर्घात्।६।१।७५।

४ पदान्ताद्वा।६।१।७३।

५ आङमाडोश्च।६।१।७४।

६ ससजुषो रु।८।२।६६।

७ खरावसानयोर्विसर्जनीय।८।३।१५।

वर्ण तथा श्, ष्, स्) का कोई वर्ण हो अथवा कोई भी वर्ण न हो, तो र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है, जैसे—रामस्+पठति=रामर्+पठति=राम पठति। रामस्=रामर् राम । सजुष्=सजुर्=सजु ।

२८—यदि विसर्ग[1] के बाद खर् प्रत्याहार के वर्णों में से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है, जैसे—

हरि +चरति=हरिस्+चरति=हरिश्चरति ।

राम +टङ्कारयति=रामस्+टङ्कारयति=रामष्टङ्कारयति ।

विष्णु +त्राता=विष्णुस्त्राता ।

( क ) और यदि[2] विसर्ग के बाद श्, ष्, स् आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् विकल्प से होता है, जैसे—

हरि +शेते=हरिस्+शेते=हरिश्शेते या हरि शेते ।

राम +षष्ठ =रामस्+षष्ठ या राम षष्ठ ।

( ख ) परन्तु यदि[3] विसर्ग के बाद क्, ख्, प्, फ् मे से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान मे या तो विसर्ग ही बना रहता है या क् तथा ख् के आगे रहने पर जिह्वामूलीय ᳵ तथा प् और फ् के आगे रहने पर उपध्मानीय ᳶ हो जाता है, जैसे—

एक काक =एक काक या एकᳵकाक ।

सुधिय पाहि=सुधिय पाहि या सुधियᳶपाहि ।

( ग ) यदि[4] विसर्ग के बाद आने वाले खर् प्रत्याहार के वर्ण के अनन्तर शर् ( श्, ष्, स् ) प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान मे विसर्ग ही होता है, जैसे—

क +त्सरु =क त्सरु । यहाँ विसर्ग के स्थान मे स् नही हुआ ।

घनाघन क्षोभण । यहाँ क्षो के पूर्व के विसर्ग को जिह्वामूलीय न हुआ ।

---

१ विसर्जनीयस्य स ।८।३।३४।

२ वा शरि ।८।३।३६।

३ कुप्वो ᳵकᳵपौ च ।८।३।३७।

४ शर्परे विसर्जनीय ।८।३।३५।

२६—ककारादि[1], खकारादि, पकारादि, फकारादि धातुओ के पूर्व यदि नम तथा पुर शब्द गतिसज्ञक के रूप मे आये हो तो इनके विसर्ग के स्थान मे स् हो जाता है । किन्तु नम को विकल्प से तथा पुर (आगे अर्थ वाला अव्यय शब्द) को नित्य रूप से गति सज्ञा होने के कारण नम के विसर्ग के स्थान मे विकल्प मे तथा पुर के विसर्ग के स्थान मे नित्य रूप से स् होता है, जैसे—

नम +करोति=नमस्करोति या नम करोति ।

पुर +करोति=पुरस्करोति, इसमे अवश्य विसर्ग का स् होगा ।

पुर (नगरियाँ)+प्रवेष्टव्या =पुर प्रवेष्टव्या =यहा पर पुर के विसर्ग के स्थान मे स् नही हुआ, क्योकि पुर यहाँ पर अव्यय नही है, सज्ञा है ।

३०—यदि[2] तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आवे तो स् विकल्प से बना रहता है, जैसे—

तिरस्+करोति=तिरस्करोति या तिर करोति ।

३१—यदि क्रियाभ्यावृत्ति (अनेक बार) वाचक द्वि,[3] त्रि और चतु क्रिया-विशेषण अव्ययो के बाद क्, ख् प्, फ् आवे तो विसर्ग के स्थान मे विकल्प से ष् हो जाता है, जैसे—

द्वि +करोति=द्विस्+करोति=द्विष्करोति या द्वि करोति । इसी प्रकार त्रि +खादति=त्रिष्खादति या त्रि खादति । चतु +पठति=चतुष्पठति या चतु पठति ।

किन्तु चतु +कपाल =चतुष्कपाल (चतु कपाल नही) क्योकि 'चार कपालो मे बना हुआ' अन्न—यहाँ चतु क्रियाविशेषण अव्यय नही है । यहाँ "कस्कादिषु च" (वा०) इस नियम से नित्य षत्व होता है ।[4]

---

१ नमस्पुरसोर्गत्यो ।८।३।४०। साक्षात्प्रभृतित्वात्कृञो योगे विभाषा गतिसज्ञा । तदभावे नम करोति । 'पुरोऽव्ययम्' ।१।४।६७। इति नित्य गतिसज्ञा । पुरस्करोति ।—सि० कौ० ।

२ तिरसोऽन्यतरस्याम् ।८।३।४२।

३ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ।८।३।४३।

४ चतुष्कपाल इत्यत्र ... कस्कादेराकृतिगणत्वात् षत्वप्रवृत्तिरित्याहु —
—तत्त्वबोधिनी ।

**३२**—स्[1] के स्थान मे आदिष्ट र् ( द्रष्टव्य नियम २७ ) के (मौलिक र् के स्थान मे किये हुए विसर्ग के नही) पूर्व यदि ह्रस्व "अ" आवे और बाद को ह्रस्व "अ" अथवा हश् प्रत्याहार का वर्ण आवे तो र् का "उ" हो जाता (उसको विसर्ग भी नही हो पाता) है, जैसे—

शिवस्+अर्च्य =शिवर्+अर्च्य =शिव+उ+अर्च्य =शिवो+अर्च्य =
शिवोऽर्च्य । इसी प्रकार, सस्+अपि=सोऽपि । रामस्+अस्ति=
रामोऽस्ति । एषस्+अब्रवीत्=एषोऽब्रवीत् ।
देवस् + वन्द्य =देवो वन्द्य । बालस्+गच्छति=बालो गच्छति ।
हरस्+याति=हरो याति । वृक्षस्+वर्धते=वृक्षो वर्धते ।

किन्तु प्रातर्+अत्र=प्रातरत्र । यहाँ पर र् का उ नही हुआ, क्योकि र् को स् के स्थान मे नही किया गया है, इसी प्रकार प्रातर्+गच्छ=प्रातर्गच्छ मे भी उ नही हुआ ।

( क ) यदि स् के स्थान मे आदिष्ट र् के पूर्व भो, भगो, अघो और ह्रस्व या दीर्घ अ हो और[2] उसके अनन्तर अश् प्रत्याहार का वर्ण (कोई स्वर या हश् प्रत्याहार ) हो तो र् को य् आदेश होता है और आगे स्वर रहने पर इस य् का विकल्प से तथा व्यजन रहने पर नित्य ही लोप हो जाता है, जैसे—
भोस्+देवा =भोर्+देवा =भोय् देवा =भो देवा । इसी प्रकार भो लक्ष्मि, भगो नमस्ते, अघो याहि, बाला गच्छन्ति, भक्ता जपन्ति, अश्वा धावन्ति, कन्या यान्ति ।

किन्तु देवास्+इह=देवार्+इह=देवाय् इह=देवा इह या देवायिह । इसी प्रकार,

नरास्+आगच्छन्ति=नरा आगच्छन्ति या नरायागच्छन्ति ।
रामस्+एति=राम एति या रामयेति । जनस्+इच्छति=जन इच्छति या जनयिच्छति ।

---

१ अतो रोरप्लुतादप्लुते ।६।१।११३। हशि च ।६।१।११४।

२ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ।८।३।१७। तथा—हलि सर्वेषाम् ।८।३।२२।

शत्रवस्+आपतन्ति=शत्रव आपतन्ति या शत्रवयापतन्ति ।

मुनयस्+आप्नुवन्ति=मुनय आप्नुवन्ति या मुनययाप्नुवन्ति ।

ऋषयस् एते=ऋषय एते या ऋषययेते । कवयस्+ऊहन्ति=कवय ऊहन्ति या कवययूहन्ति ।

( ख ) यदि अहन्[1] शब्द के परे विभक्तियो को छोडकर कोई स्वर या हश् प्रत्याहारी आवे तो न् को र् आदेश होता है—

अहन्+अह =अहर्+अह =अहरह । अहन्+गण =अहगण ।

किन्तु अहोभ्याम् मे न् को र् नही हुआ, क्योकि उसके बाद भ्याम् है जो विभक्ति है । यहॉ 'अहन्' ।८।२।६८। अर्थात् पदसज्ञक अहन् के न् के स्थान मे रु आदेश होता है—इसके अनुसार रु होकर, फिर 'हशि च' से उसके स्थान मे उ हुआ और गुण होकर अहोभ्याम् हुआ ।

३३—स् के स्थान मे आदिष्ट र् के पूर्व यदि अ और आ को छोडकर कोई स्वर रहे और बाद को कोई स्वर अथवा हश् प्रत्याहार हो तो उस र् में कोई परिवर्तन नही होता है, जैसे—

अलिर्+अयम्=अलिरयम् । भानुर्+उदेति=भानुरुदेति । श्रीर्+एषा=श्रीरेषा । सुधी + एति=सुधीरेति । गौर्+अयम्=गौरयम् ।

कविर्+वर्णयति=कविर्वर्णयति । गुरुर्+गच्छति=गुरुर्गच्छति ।

नौर्+याति=नौर्याति । लक्ष्मीर्+याति=लक्ष्मीर्याति ।

( क ) र्[2] के बाद यदि र् आवे तो र् का लोप हो जाता है, और उसके पूर्व मे आये हुए "अ" "इ" "उ" यदि ह्रस्व रहे तो वे दीर्घ हो जाते है, जैसे—

पुनर्+रमते=पुना रमते । हरिर्+रम्य =हरी रम्य ।

शम्भुर्+राजते=शम्भू राजते ।

कविर्+रचयति=कवी रचयति ।

गुरुर्+रुष्ट =गुरू रुष्ट । शिशुर्+रोदिति=शिशु रोदिति ।

---

१ रोऽसुपि ।८।२।६९।

२ रो रि ।८।३।१४। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण ।६।३।१११।

३४—यदि[1] किसी व्यजन के पूर्व सस् (स) अथवा एषस् (एष) शब्द आवे तो उनके स् का लोप हो जाता है, जैसे—

सस्+शम्भु=स शम्भु । एषस्+विष्णु=एष विष्णु ।

(क) यदि नञ् तत्पुरुष मे ये स और एष (अर्थात् असस और अनेष शब्द) आवें अथवा अन्त मे क से युक्त होकर आवे (अर्थात् सक, एषक) तब विसर्ग-लोप की यह विधि नही लगती, यथा—'असस शिव' का 'अस शिव' न होगा, और न 'एषक हरिण' का 'एषक हरिण' होगा।

(ख) यदि[2] सस् के सकार के परे स्वर हो और पद्य के पाद की पूर्ति इस लोप के द्वारा ही हो तो स् का लोप (और बाद मे स्वरसन्धि कार्य भी) हो जाता है, यथा—सस+एष दाशरथी राम=सैष दाशरथी राम ।

---

१ एतत्तदो सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि ।६।१।१३४।

२ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ।६।१।१३४।

# तृतीय सोपान

## संज्ञा-विचार

३५—वाक्य भाषा का आधार है, और शब्द वाक्य का—यह पीछे कह आये हैं। सस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसे जिनका रूप वाक्य के और शब्दो के सम्बन्ध से बदलता रहता है और दूसरे ऐसे जिनका रूप सदा समान ही रहता है। न बदलने वालो मे यदा, कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्त्तुम्, गत्वा आदि कुछ क्रियाओ के रूप हैं। बदलने वालो मे 'नाम' अर्थात् सज्ञा, सर्वनाम और विशेषण एव 'आख्यात' अर्थात् क्रिया हैं।

हिन्दी की भाँति सस्कृत मे भी तीन पुरुष होते हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को सस्कृत में प्रथम पुरुष कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते है—एक वचन, बहुवचन। किन्तु सस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता है जिससे दो का बोध कराया जाता है। सज्ञाएँ सब अन्य पुरुष मे होती है।

सज्ञा के तीन लिङ्ग होते है—पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग। सस्कृत भाषा मे यह लिङ्गभेद किसी स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नही है, ऐसा नही है कि सब नर चेतन पुल्लिङ्ग शब्दो द्वारा दिखाये जायें, मादा चेतन स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुएँ नपुसक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'स्त्री' का अर्थ बताने के लिए कई शब्द हैं—स्त्री, महिला, गृहिणी, दार आदि। उस पर भी 'दार' शब्द पुल्लिङ्ग है। इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द हैं जिनके लिङ्ग भिन्न हैं, जैसे तनु (स्त्री०) देह और शरीर (नपु०) तथा जल के लिए अप् (स्त्री०) और जल (नपु०)। कई शब्द ऐसे हैं जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गो में चलते हैं, जैसे गो शब्द पुल्लिङ्ग मे 'बैल' का वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' का। किन्ही-किन्ही पुल्लिङ्ग शब्दो में प्रत्यय जोडने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द [illegible] हैं और किन्ही से नपुसक

शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, सर्वनाम शब्द 'अन्य' के रूप तीनो लिङ्गो में अलग-अलग होते हैं। पुत्र—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोडी वाले शब्द हैं। इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा। परन्तु अधिकाश ऐसे शब्द हैं जो एक ही है जो एक ही लिङ्ग के है—या तो पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग या नपुसकलिङ्ग। स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्ययो का विचार आगे किया जायगा।

३६—हिन्दी मे कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द सज्ञा के पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड दिये जाते है, जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारा, तुमने बिगाडा, तुमको डाँटा आदि। किन्तु सस्कृत में यह सम्बन्ध दिखाने के लिए सज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते हैं, यथा 'गोविन्द ने' की जगह 'गोविन्द', 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह 'गोविन्दस्य'। इस प्रकार एक ही शब्द के कई रूप हो जाते है। प्रथमा, द्वितीया आदि से लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियाँ ( अथवा भाग ) होती है।

**नोट**—[1] जिन शब्दो के आगे ये सातो विभक्तियाँ जुडती हैं उन्हें प्रातिपदिक कहते है। ये प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं। एक वे अर्थवान् शब्द जिनका किसी धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्त से सम्बन्ध न हो, तथा दूसरे वे जो कृदन्त तद्धितान्त अथवा समस्त हो। इनमे प्रथम प्रकार के अव्युत्पन्न तथा दूसरे प्रकार के व्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं।

विभिन्न[2] कारको को प्रकट करने के लिए प्रातिपदिको मे जो प्रत्यय लगाये या जोडे जाते है, उन्हे सुप् कहते है। इसी प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओ का अर्थ प्रकट करने के लिए धातुओ मे जो प्रत्यय जोडे जाते है, उन्हें तिङ् कहते हैं। इन्ही सुप् और तिङ् को विभक्ति कहते हैं।

---

१ अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम्। १।२।२४।
कृत्तद्धितसमासाश्च। १।२।४६।

२ विभक्तिश्च। १।४।१०४। सुप्तिङ् विभक्तिसज्ञौ स्त।

| विभक्ति | अर्थ | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|---|
| प्रथमा | ने | सु | औ | जस् |
| द्वितीया | को | अम् | औट् | शस् |
| तृतीया | से, के द्वारा | टा | भ्याम् | भिस् |
| चतुर्थी | के लिए | ङे | भ्याम् | भ्यस् |
| पञ्चमी | से | ङसि | भ्याम् | भ्यस् |
| षष्ठी | का, की, के | ङस् | ओस् | आम् |
| सप्तमी | मे, पै, पर | ङि | ओस् | सुप् |

सम्बोधन[1] मे भी प्रथमा ही विभक्ति प्रयुक्त होती है। इन विभक्ति-सूचक प्रत्ययो को सुप् कहते है। इनके जोडने की विधि थोडी जटिल है। उदाहरणार्थ "सु" का "उ" उडा दिया जाता है क्योकि वह अनुनासिक है। केवल स् रह जाता है, यथा—राम+सु=रामस्=राम । कही-कही यह स् भी बिलकुल उडा दिया जाता है, यथा—विद्या+सु=विद्या । टा का ट् लोप कर दिया जाता है क्योकि प्रत्यय के आदि मे चवर्ग टवग लुप्त हो जाते है। भगवत्+टा=भगवत्+आ= भगवता । किन्तु कही टा का स्थान "इन" ले लेता है, यथा—नर+इन= नरेण । परन्तु यह विधि जटिल होने पर भी इतनी सुव्यवस्थित है कि एक बार समझ लेने पर शब्दो के रूप बनाने मे कोई कठिनाई नही रह जाती । इन प्रत्ययो के जोडने की सक्षिप्त विधि दी जा रही है—

(१) जस् के ज्, शस् के श्, टा के ट्, ङे, ङसि, ङस् और ङि के ङ की 'चूटू' एव 'लशक्वतद्धिते' नियमो के अनुसार इत्सज्ञा होकर इनका लोप हो जाता है।

(२) (क)[2] ह्रस्व अकारान्त से टा, ङसि और ङस् को क्रम से इन, आत् और स्य आदेश होते है।

(ख) ह्रस्व अकारान्त[3] शब्द से भिस् के स्थान पर एस् आदेश होता है।

---

१ सम्बोधन च ।२।३।४७

२ टाङसिङसामिनात्स्या ।७।१।१२।

३ अतो भिस ऐस् ।७।१।९।

(ग) ह्रस्व अकारान्त[1] शब्द से ङ को य आदेश होता है।

(घ)[2] घिसञ्ज्ञक (स्त्रीलिङ्ग शब्दो को छोडकर) शब्द मे टा जुडने पर उसे ना आदेश होता है।

(ङ)[3] ङे, ङसि, ङस्, ङि इन प्रत्ययो के परवर्त्ती होने पर घिसञ्ज्ञक शब्दो के अन्त मे आने वाले स्वर को गुण होता है, यथा—

हरि+ङे=हरि+ए=हरे+ए=हरये।

(च)[4] एकारान्त तथा ओकारान्त शब्द मे आने वाला ङसि तथा ङस् का अपूर्ववर्ती ए अथवा ओ के रूप मे मिल जाता है, यथा हरि+ङसि=हरि+अस्=हरे+अस्=हरे+स्=हरे। विष्णो+ङसि=विष्णो+अस्=विष्णो।

(छ) इ[5] और उ के पश्चात् ङि की इ को औ आदेश होता है और इ तथा उ के स्थान मे आकार हो जाता है। हरि+ङि=हरि+इ=हर+औ=हरौ।

(ज) ऋकारान्त[6] प्रातिपदिक के पश्चात् जब ङसि या ङस् आवें तो ऋ और ङसि या ङस् के अ दोनो को उ आदेश होता है।

(झ) जब आकारान्त[7] (टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग) शब्द मे औङ (औ, औट्) जुडता है तो औङ के स्थान मे (शी) ई का आदेश होता है।

(ञ) जब आकारान्त[8] (स्त्रीलिङ्ग) शब्द में आङ (टा तृतीया एकवचन) और ओस् जुडते हैं तो आ के स्थान पर ए का आदेश होता है।

(ट) आकारान्त[9] (स्त्रीलिङ्ग) शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुडने पर उन विभक्तियो के पूर्व या का आगम होता है।

---

१ ङेर्यः ।७।१।१३।

२ आङोनाऽस्त्रियाम् ।१।३।१२०।

३ घेर्ङिति ।७।३।१११।

४ ङसिङसोश्च ।

५ अच्च घेः ७।३।११९।

६ ऋत उत् ।६।१।१११।

७ औङ आपः ।७।१।१८।

८ आङि चापः ।७।३।१०५।

९ याडापः ।७।३।११३।

( ठ ) आकारान्त[1] टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम के पश्चात् ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुडने पर आकार हो जाता है तथा प्रत्यय के पूर्व स्या का आगम होता है।

( ड ) आकारान्त[2] नपुसकलिङ्ग प्रातिपदिक से सु और अम् को अम् आदेश होता है।

( ढ ) नपुसकलिङ्ग[3] शब्द से औङ जुडने पर उसके स्थान में ई ( शी ) का आदेश होता है।

( ण ) नपुसकलिङ्ग[4] प्रातिपदिक से जस् और शस् जुडने पर उनके स्थान पर इ ( शि ) का आदेश होता है तथा इ के पूर्व न् ( नुम् ) का आगम होता है।

( त ) नपुसकलिङ्ग[5] ( अकारान्त से अतिरिक्त ) प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप हो जाता है।

( थ ) इगन्त[6] नपुसकलिङ्ग प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय आने पर प्रातिपदिक के अन्त मे न् का आगम होता है।

( द ) ह्रस्वस्वरान्त[7], नदीसज्ञक और टाप्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो से आम् विभक्ति जुडने पर विभक्ति के पूर्व न् (नुट्) का आगम होता है।

३७—सस्कृत मे प्रातिपदिक पहले दो भागो में विभक्त किये जाते हैं—

( १ ) स्वरान्त, ( २ ) व्यजनान्त। स्वरान्त मे अकारान्त शब्द प्राय सभी पुल्लिङ्ग अथवा नपुसकलिङ्ग मे होते हैं। आकारान्त प्राय स्त्रीलिङ्ग मे होते है। थोडे से ही पुल्लिङ्ग मे होते है। इकारान्त शब्द कोई पुल्लिङ्ग

१ सर्वनाम्न स्याड्ढ्स्वश्च ।७।३।११४।

२ अतोऽम् ।७।१।२४।

३ नपुसकाच्च ।७।१।१६।

४ जश्शसो शि ।७।१।२०। नपुसकस्य झलच ।७।१।७२।

५ स्वमोर्नपुसकात् ।७।१।२३।

६ इकोऽचि विभक्तौ ।७।१।७३।

७ ह्रस्वनद्यापो नुट् ।७।१।५४।

में, कोई स्त्रीलिङ्ग में और कोई नपुसकलिङ्ग मे होते हैं। ईकारान्त प्राय स्त्रीलिङ्ग में, किन्तु कुछ पुल्लिङ्ग मे भी होते है। उकारान्त प्राय तीनो लिङ्गो में होते हैं। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग दोनो मे होते हैं। ऋकारान्त प्राय पुल्लिङ्ग मे ह्रस्व ऋकारान्त नपुसकलिङ्ग मे भी होते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त बहुत कम शब्द हैं, जो हैं भी वे प्राय पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग ही है। शेष स्वरो मे अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्राय नही के बराबर हैं। नपुसकलिङ्ग मे स्वरान्त शब्द सदा ह्रस्वान्त ही होते है।[1]

व्यजनान्त प्रातिपदिक प्राय ङ, ञ्, म्, य् इन वर्णों को छोड कर सभी व्यजनो मे अन्त होने वाले पाये जाते है। इनमे भी बहुधा च्, ज्, त्, द्, ध् न्, श्, ष्, स् और ह् मे अन्त होने वाले अधिक प्रयोग मे आते है। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाये जाते है।

स्वरान्त सज्ञाएँ

## ३८—अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

**बालक—लडका**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्रथमा | बालक | बालकौ | बालका |
| सम्बोधन | हे बालक | हे बालकौ | हे बालका |
| द्वितीया | बालकम् | बालकौ | बालकान् |
| तृतीया | बालकेन | बालकाभ्याम् | बालकै |
| चतुर्थी | बालकाय | बालकाभ्याम् | बालकेभ्य |
| पञ्चमी | बालकात् | बालकाभ्याम् | बालकेभ्य |
| षष्ठी | बालकस्य | बालकयो | बालकानाम् |
| सप्तमी | बालके | बालकयो | बालकेषु |

(क) सम्बोधन[2] मे बालक+स् के स् का लोप हो जाता है क्योकि यह ह्रस्व अ के पश्चात् आ रहा है।

१ ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य ।१।२।४७।

२ एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे ।६।१।६६।

(ख) शस्[1] (अस्) के स् को नकार हो जाता है क्योंकि वह प्रातिपदिक के अ और अपने ही आदिम अ के सयोग से बनने वाले पूर्वसवर्णदीर्घ का परवर्ती है। इस प्रकार पुल्लिङ्ग मे सर्वत्र पूर्वसवर्णदीर्घ के पश्चात् आने वाले स् को न् आदेश हो जाता है।

(ग) ङे[2] के स्थान मे होने वाले य तथा तीनो भ्याम् के परवर्ती होने पर अ का दीर्घ हो जाता है।

(घ) दोनो[3] भ्यस् तथा सुप् (सप्तमी व० ब०) के परवर्ती होने पर प्रातिपदिक के अन्तिम अ को ए आदेश होता है, क्योकि भ्यस् तथा सुप् प्रत्यय झलादि और बहुवचन बोधक हैं।

(ङ) ओस्[4] परे रहने पर भी अ को ए आदेश होता है।

राम, वृक्ष, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, सुर, देव, रथ, सुत, गज, रासभ (गदहा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, मास, कुक्कुर, वृक (भेडिया), व्याघ्र, सिंह इत्यादि समस्त अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप बालक के समान होते हैं। इसी प्रकार यादृश, भवादृश, मादृश, त्वादृश, एतादृश आदि शब्द भी पुल्लिङ्ग मे चलते है। स्पष्टता के लिए तादृश के रूप दिये जाते हैं।

**तादृश—उसकी तरह**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | तादृश | तादृशौ | तादृशा |
| स० | हे तादृश | हे तादृशौ | हे तादृशा |
| द्वि० | तादृशम् | तादृशौ | तादृशान् |
| तृ० | तादृशेन | तादृशाभ्याम् | तादृशै |
| च० | तादृशाय | तादृशाभ्याम् | तादृशेभ्य |
| प० | तादृशात् | तादृशाभ्याम् | तादृशेभ्य |
| ष० | तादृशस्य | तादृशयो | तादृशानाम् |
| स० | तादृशे | तादृशयो | तादृशेषु |

**नोट**—ये ही शब्द इसी अर्थ मे शकारान्त भी हैं। उनके रूप व्यञ्जनान्त सज्ञाओ मे मिलेगे।

१ तस्माच्छसो न पुसि ।६।१।१०३। २ ङेर्यः ।७।१।१३। सुपि च । ७।३।१०२। ३ बहुवचने झल्येत् ।७।३।१०३। ४ ओसि च ।७।३।१०४।

## ३६—आकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

### विश्वपा—ससार का रक्षक

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | विश्वपा | विश्वपौ | विश्वपा |
| स० | हे विश्वपा | हे विश्वपौ | हे विश्वपा |
| द्वि० | विश्वपाम् | विश्वपौ | विश्वप |
| तृ० | विश्वपा | विश्वपाभ्याम् | विश्वपाभि |
| च० | विश्वपे | विश्वपाभ्याम् | विश्वपाभ्य |
| प० | विश्वप | विश्वपाभ्याम् | विश्वपाभ्य |
| ष० | विश्वप | विश्वपो | विश्वपाम् |
| स० | विश्वपि | विश्वपो | विश्वपासु |

गोपा (गाय का रक्षक), शखध्मा (शख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस पीने वाला), धूम्रपा (धुआँ पीने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र) तथा और भी दूसरे आकारान्त धातुओ से निकले हुए समस्त पुल्लिङ्ग सज्ञा शब्दो के रूप विश्वपा के समान होते हैं। अन्य आकारान्त पु० शब्दो का रूप 'हाहा' (गन्धर्वविशेष) की भाँति चलता है, जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हाहा | हाहौ | हाहा |
| स० | हे हाहा | हे हाहौ | हे हाहा |
| द्वि० | हाहाम् | हाहौ | हाहान् |
| तृ० | हाहा | हाहाभ्याम् | हाहाभि |
| च० | हाहै | हाहाभ्याम् | हाहाभ्य |
| पं० | हाहा | हाहाभ्याम् | हाहाभ्य |
| ष० | हाहा | हाहौ | हाहाम् |
| स० | हाहे | हाहौ | हाहासु |

## ४०—इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

### (क) कवि

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | कवि | कवी | कवय |
| स० | हे कवे | हे कवी | हे कवय |
| द्वि० | कविम् | कवी | कवीन् |
| तृ० | कविना | कविभ्याम् | कविभि |
| च० | कवये | कविभ्याम् | कविभ्य |
| प० | कवे | कविभ्याम् | कविभ्य |
| ष० | कवे | कव्यो | कवीनाम् |
| स० | कवौ | कव्यो | कविषु |

हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि (ब्रह्मा), विरञ्चि (ब्रह्मा), जलधि, गिरि (पहाड), सप्ति (घोडा), रवि (सूर्य), वह्नि (आग), अग्नि इत्यादि इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप कवि के समान होते हैं।

**नोट**—विधि (विधान, तरकीब के अर्थ मे) हिन्दी मे स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु सस्कृत मे यही शब्द पुल्लिङ्ग मे है इसका ध्यान रखना चाहिए। विधि, उदधि, जलधि, आधि, व्याधि, समाधि इत्यादि शब्द भी विधि के समान ही इकारान्त पुल्लिङ्ग होते हैं।

**(ख) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं।**

**पति—स्वामी, मालिक**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पति | पती | पतय |
| स० | हे पते | हे पती | हे पतय |
| द्वि० | पतिम् | पती | पतीन् |
| तृ० | पत्या | पतिभ्याम् | पतिभि |
| च० | पत्ये | पतिभ्याम् | पतिभ्य |
| प० | पत्यु | पतिभ्याम् | पतिभ्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | पत्यु | पत्यो | पतीनाम् |
| स० | पत्यौ | पत्यो | पतिषु |

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त मे आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं, जैसे—

भूपति—राजा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भूपति | भूपती | भूपतय |
| स० | हे भूपते | हे भूपती | हे भूतपय |
| द्वि० | भूपतिम् | भूपती | भूपतीन् |
| तृ० | भूपतिना | भूपतिभ्याम् | भूपतिभि |
| च० | भूपतये | „ | भूपतिभ्य |
| प० | भूपते | „ | „ |
| ष० | भूपतेः | भूपत्यो | भूपतीनाम् |
| स० | भूपतौ | „ | भूपतिषु |

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुरपति, गजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वीपति इत्यादि शब्दो के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति होगे।

(ग) सखि (मित्र) शब्द के भी रूप बिलकुल भिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे—

सखि—मित्र

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखा | सखायौ | सखाय |
| स० | हे सखे | हे सखायौ | हे सखाय |
| द्वि० | सखायम् | सखायौ | सखीन् |
| तृ० | सख्या | सखिभ्याम् | सखिभि |
| च० | सख्ये | „ | सखिभ्य. |
| प० | सख्यु | „ | „ |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | सख्यु | सख्यो | सखीनाम् |
| स० | सख्यौ | ,, | सखिषु |

## ४१—ईकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

### (क) प्रधी—अच्छा ध्यान करने वाला

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रधी | प्रध्यौ | प्रध्य |
| स० | हे प्रधी | हे प्रध्यौ | हे प्रध्य |
| द्वि० | प्रध्यम् | प्रध्यौ | प्रध्य |
| तृ० | प्रध्या | प्रधीभ्याम् | प्रधीभि |
| च० | प्रध्ये | ,, | प्रधीभ्य |
| प० | प्रध्य | ,, | ,, |
| ष० | प्रध्य | प्रध्यो | प्रध्याम् |
| स० | प्रध्यि | ,, | प्रधीषु |

उन्नी, ग्रामीणी, सेनानी शब्दो के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एकवचन मे उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् ऐसे रूप हो जाते हैं।

### (ख) सुधी—पण्डित, विद्वान्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुधी | सुधियौ | सुधिय |
| स० | हे सुधी | हे सुधियौ | हे सुधिय |
| द्वि० | सुधियम् | सुधियौ | सुधिय |
| तृ० | सुधिया | सुधीभ्याम् | सुधीभि |
| च० | सुधिये | ,, | सुधीभ्य |
| प० | सुधिय | ,, | ,, |
| ष० | ,, | सुधियो | सुधियाम् |
| स० | सुधियि | ,, | सुधीषु |

शुष्की, पक्वी, सुश्री, शुद्धधी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

### (ग) सखी (सखायमिच्छतीति)

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखा | सखायौ | सखाय |
| स० | हे सखी | हे सखायौ | हे सखाय. |
| द्वि० | सखायम् | सखायौ | सख्य |
| तृ० | सख्या | सखीभ्याम् | सखीभि |
| च० | सख्ये | ,, | सखोभ्य. |
| प० | सख्यु | ,, | ,, |
| ष० | ,, | सख्यो | सख्याम् |
| स० | सख्यि | ,, | सखीषु |

### (घ) सखी (खेन सह वर्तते इति सख, सखमिच्छतीति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखी | सख्यौ | सख्य |
| स० | हे सखी | हे सख्यौ | हे सख्य |
| द्वि० | सख्यम् | सख्यौ | सख्य |

शेष रूप पहिले वाले सखी के समान हैं। ( सुतमिच्छतीति ) सुती, (सुखमिच्छतीति) सुखी, ( लूनमिच्छतीति ) लूनी, ( क्षाममिच्छतीति ) क्षामी, (प्रस्तीममिच्छतीति) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार प्रधी के समान होते हैं।

## ४२—उकारान्त पुलिङ्ग शब्द

### भानु—सूर्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भानु | भानू | भानव |
| स० | हे भानो | हे भानू | हे भानव. |
| द्वि० | भानुम् | भानू | भानून् |
| तृ० | भानुना | भानुभ्याम् | भानुभि |
| च० | भानवे | भानुभ्याम् | भानुभ्यः |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प० | भानो | भानुभ्याम् | भानुभ्य |
| ष० | भानो | भान्वो | भानूनाम् |
| स० | भानौ | भान्वो | भानुषु |

शत्रु, रिपु, विष्णु, गुरु, जन्तु, प्रभु, शिशु, विधु (चन्द्रमा), पशु, शम्भु, वेणु (बाँस) इत्यादि उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप भानु की तरह चलते हैं।

## ४३—ऊकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

### स्वयम्भू—ब्रह्मा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्वयम्भू | स्वयम्भुवौ | स्वयम्भुव |
| स० | हे स्वयम्भू | हे स्वयम्भुवौ | हे स्वयम्भुव |
| द्वि० | स्वयम्भुवम् | स्वयम्भुवौ | स्वयम्भुव |
| तृ० | स्वयम्भुवा | स्वयम्भूभ्याम् | स्वयम्भूभि |
| च० | स्वयम्भुवै | स्वयम्भूभ्याम् | स्वयम्भूभ्य |
| प० | स्वयम्भुव | स्वयम्भूभ्याम् | स्वयम्भूभ्य |
| ष० | स्वयम्भुव | स्वयम्भुवो | स्वयम्भुवाम् |
| स० | स्वयम्भुवि | स्वयम्भुवो | स्वयम्भुषु |

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला), स्वभू (स्वय पैदा हुआ), प्रतिभू (जामिन) के रूप इसी प्रकार होते हैं। किन्तु वर्षाभू, करभू तथा पुनर्भू के रूप प्रधी की भाँति चलते हैं।

## ४४—ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

### (क) पितृ—बाप

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पिता | पितरौ | पितर |
| स० | हे पित | हे पितरौ | हे पितर |
| द्वि० | पितरम् | पितरौ | पितॄन् |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | पित्रा | पितृभ्याम् | पितृभि |
| च० | पित्रे | ,, | पितृभ्य |
| प० | पितु | ,, | ,, |
| ष० | ,, | पित्रो | पितॄणाम् |
| स० | पितरि | ,, | पितृषु |

भ्रातृ (भाई), देवृ (देवर), जामातृ (दामाद) इत्यादि सम्बन्ध-सूचक पुल्लिङ्ग ऋकारान्त शब्दो के रूप पितृ के समान होते हैं।

### (ख) नृ—मनुष्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ना | नरौ | नर |
| स० | हे न | हे नरौ | हे नर |
| द्वि० | नरम् | नरौ | नॄन् |
| तृ० | न्रा | नृभ्याम् | नृभि |
| च० | न्रे | नृभ्याम् | नृभ्य |
| प० | नु | नृभ्याम् | नृभ्य |
| ष० | नु | न्रो | नृणाम्<br>नॄणाम् |
| स० | नरि | न्रो | नृषु |

### (ग) दातृ—देने वाला

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दाता | दातारौ | दातार |
| स० | हे दात | हे दातारौ | हे दातार |
| द्वि० | दातारम् | दातारौ | दातॄन् |
| तृ० | दात्रा | दातृभ्याम् | दातृभि |
| च० | दात्रे | ,, | दातृभ्य |
| प० | दातु | ,, | ,, |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | दातु | दात्रो | दातॄणाम् |
| स० | दातरि | ,, | दातृषु |

धातृ (ब्रह्मा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला) शब्दो के तथा नप्तृ (पोता) के रूप दातृ के समान चलते हैं।

**नोट**—तृन् और तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिको के एव स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षतृ, होतृ, प्रशास्तृ और पोतृ के आगे यदि प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय आवे तो ऋ के आदिष्ट रूप अ को दीर्घ हो जाता है।

(क) केवल सम्बोधन के ज्ञापक सु के परवर्त्ती होने पर अ को दीर्घ नही होता अत 'दात' रूप बनता है न कि 'दाता'।

## ४५—ऐकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

**रै—धन**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | रा | रायौ | राय |
| स० | हे रा | हे रायौ | हे राय |
| द्वि० | रायम् | रायौ | राय |
| तृ० | राया | राभ्याम् | राभि |
| च० | राये | राभ्याम् | राभ्य |
| प० | राय | राभ्याम् | राभ्य |
| ष० | राय | रायो | रायाम् |
| स० | रायि | रायो | रासु |

## ४६—ओकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

**गो—सांड, बैल**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | गौ | गावौ | गाव |
| स० | हे गौ | हे गावौ | हे गाव |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | गाम् | गावौ | गा |
| तृ० | गवा | गोभ्याम् | गोभि |
| च० | गवे | गोभ्याम् | गोभ्य |
| प० | गो | गोभ्याम् | गोभ्य |
| ष० | गो | गवो | गवाम् |
| स० | गवि | गवो | गोषु |

समस्त ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप गो के समान होते हैं।

## ४७—औकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

### ग्लौ—चन्द्रमा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ग्लौ | ग्लावौ | ग्लाव |
| स० | हे ग्लौ | हे ग्लावौ | हे ग्लाव |
| द्विं० | ग्लावम् | ग्लावौ | ग्लाव |
| तृ० | ग्लावा | ग्लौभ्याम् | ग्लौभि |
| च० | ग्लावे | ग्लौभ्याम् | ग्लौभ्य |
| प० | ग्लाव | ग्लौभ्याम् | ग्लौभ्य |
| ष० | ग्लाव | ग्लावो | ग्लावाम् |
| स० | ग्लावि | ग्लावो | ग्लौषु |

और भी औकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

## ४८—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग

### फल

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | फलम् | फले | फलानि |
| स० | हे फल | हे फले | हे फलानि |
| द्वि० | फलम् | फले | फलानि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | फलेन | फलाभ्याम् | फलै |
| च० | फलाय | फलाभ्याम् | फलेभ्य |
| प० | फलात् | फलाभ्याम् | फलेभ्य |
| ष० | फलस्य | फलयो | फलानाम् |
| स० | फले | फलयो | फलेषु |

(तृतीया से आगे का रूप अकारान्त पुल्लिङ्ग की भाँति रहता है)

मित्र, वन, अरण्य (जगल), मुख, कमल, कुसुम, पुष्प, पर्ण (पत्ता), नक्षत्र, पत्र (कागज या पत्ता), बीज, जल, तृण (घास), गगन, शरीर, पुस्तक, ज्ञान इत्यादि समस्त अकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्दो के रूप फल के समान होते हैं।

## ४९—इकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्द

### (क) वारि—पानी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वारि | वारिणी | वारीणि |
| स० | हे वारे, हे वारि | हे वारिणी | हे वारीणि |
| द्वि० | वारि | वारिणी | वारीणि |
| तृ० | वारिणा | वारिभ्याम् | वारिभि |
| च० | वारिणे | वारिभ्याम् | वारिभ्य |
| प० | वारिण | वारिभ्याम् | वारिभ्य |
| ष० | वारिण | वारिणो | वारीणाम् |
| स० | वारिणि | वारिणो | वारिषु |

अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाघ), अक्षि (आँख) को छोडकर समस्त इकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्दो के रूप वारि के समान होते है।

### (ख) दधि—दही

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दधि | दधिनी | दधीनि |
| स० | हे दधे, हे दधि | हे दधिनी | हे दधीनि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | दधि | दधिनी | दधीनि |
| तृ० | दध्ना | दधिभ्याम् | दधिभि |
| च० | दध्ने | दधिभ्याम् | दधिभ्य |
| प० | दध्न | दधिभ्याम् | दधिभ्य |
| ष० | दध्न | दध्नो | दध्नाम् |
| स० | दध्नि, दधनि | दध्नो | दधिषु |

**अक्षि—आँख**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अक्षि | अक्षिणी | अक्षीणि |
| स० | से अक्षि, ह अक्षे | हे अक्षिणी | हे अक्षीणि |
| द्वि० | अक्षि | अक्षिणी | अक्षीणि |
| तृ० | अक्ष्णा | अक्षिभ्याम् | अक्षिभि |
| च० | अक्ष्णे | अक्षिभ्याम् | अक्षिभ्य |
| प० | अक्ष्ण | अक्षिभ्याम् | अक्षिभ्य |
| ष० | अक्ष्ण | अक्ष्णो | अक्ष्णाम् |
| स० | अक्ष्णि, अक्षणि | अक्ष्णो | अक्षिषु |

अस्थि और सक्थ के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

(ग) जब इकारान्त, उकारान्त ऋकारान्त, विशेषण शब्दो का प्रयोग नपुसकलिङ्ग वाले सज्ञा शब्दो के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियो के एकवचन मे और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन मे विकल्प से इकारान्त, उकारान्त तथा ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के समान होते है, जैसे— शुचि (पवित्र,) गुरु (भारी)।

**शुचि (पवित्र)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शुचि | शुचिनी | शुचीनि |
| स० | हे शुचि, हे शुचे | हे शुचिनी | हे शुचीनि |
| द्वि० | शुचि | शुचिनी | शुचीनि |
| तृ० | शुचिना | शुचिभ्याम | शुचिभि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| च० | शुचये, शुचिने | शुचिभ्याम् | शुचिभ्य |
| प० | शुचे , शुचिन | ,, | ,, |
| ष० | ,, ,, | शुच्यो , शुचिनो | शुचीनाम् |
| स० | शुचौ, शुचिनि | ,, ,, | शुचिषु |

## ५०—उकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्द

### वस्तु—चीज

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वस्तु | वस्तुनी | वस्तूनि |
| स० | हे वस्तो, हे वस्तु | हे वस्तुनी | हे वस्तूनि |
| द्वि० | वस्तु | वस्तुनी | वस्तूनि |
| तृ० | वस्तुना | वस्तुभ्याम् | वस्तुभि |
| च० | वस्तुने | वस्तुभ्याम् | वस्तुभ्य |
| प० | वस्तुन | वस्तुभ्याम् | वस्तुभ्य |
| ष० | वस्तुन | वस्तुनो | वस्तूनाम् |
| स० | वस्तुनि | वस्तुनो | वस्तुषु |

दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), जत्रु (कधो की सघि) तालु, मधु (शहद), सानु [(पर्वत की चोटी) पुल्लिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग भी)] इत्यादि के रूप वस्तु के समान होते हैं।

(क) उकारान्त विशेषण शब्दो के भी रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियो के एकवचन मे तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन मे उकारान्त पुल्लिङ्ग के समान विकल्प से होते है, जैसे—बहु (बहुत)।

### बहु

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बहु | बहुनी | बहूनि |
| स० | हे बहो, हे बहु | हे बहुनी | हे बहूनि |
| द्वि० | बहु | बहुनी | बहूनि |
| तृ० | बहुना | बहुभ्याम् | बहुभि |
| च० | बहवे, बहुने | बहुभ्याम् | बहुभ्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प० | बहो , बहुन | बहुम्याम् | बहुम्य |
| ष० | बहो , बहुन | बह्वो , बहुनो | बहूनाम् |
| स० | बहौ, बहूनि | बह्वो , बहुनो | बहुषु |

इसी प्रकार मृदु, कटु, लघु, पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

## ५१—ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग

कर्तृ, नेतृ, धातृ, रक्षितृ इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिए इनका प्रयोग तीनो लिंगो मे होता है। यहाँ पर नपुसकलिङ्ग के रूप दिखाये जाते हैं। तृतीया से आगे इनका एक रूप पुल्लिङ्ग जैसा भी होता है।

**कर्तृ—करने वाला**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | कर्तृ | कर्तृणी | कर्तृणि |
| स० | हे कर्तृ<br>हे कर्ते | हे कर्तृणी | हे कर्तृणि |
| द्वि० | कर्तृ | कर्तृणी | कर्तृणि |
| त० | कर्त्रा<br>कर्तृणा | कर्तृभ्याम् | कर्तृभि |
| च० | कर्त्रे<br>कर्तृणे | कर्तृभ्याम् | कर्तृभ्य |
| प० | कर्तृ<br>कर्तृण | कर्तृभ्याम् | कर्तृभ्य |
| ष० | कर्तृ<br>कर्तृण | कर्त्रो<br>कर्तृणो | कर्तृणाम् |
| स० | कर्तरि<br>कर्तृणि | कर्त्रो<br>कर्तृणो | कर्तृषु |

इसी प्रकार धातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं।

## ५२—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

**विद्या**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विद्या | विद्य | विद्या |
| स० | हे विद्ये | हे विद्ये | हे विद्या |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | विद्याम् | विद्ये | विद्या |
| तृ० | विद्यया | विद्याम्याम् | विद्यामि |
| च० | विद्यायै | विद्याम्याम् | विद्याम्य |
| प० | विद्याया | विद्याम्याम् | विद्याम्य |
| ष० | विद्याया | विद्ययो | विद्यानाम् |
| स० | विद्यायाम् | विद्ययो | विद्यासु |

रमा (लक्ष्मी), बाला (स्त्री), निशा (रात), कन्या, ललना (स्त्री), मार्या (स्त्री), बडवा (घोडी), राधा, सुमित्रा, तारा, कौशल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप विद्या के समान होते हैं।

## ५३—इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### रुचि

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | रुचि | रुची | रुचय |
| स० | हे रुचे | हे रुची | हे रुचय |
| द्वि० | रुचिम् | रुची | रुची |
| तृ० | रुच्या | रुचिम्याम् | रुचिमि |
| च० | रुच्यै, रुचये | रुचिम्याम् | रुचिम्य |
| प० | रुच्या रुचे | रुचिम्याम् | रुचिम्य |
| ष० | रुच्या , रुचे | रुच्यो | रुचीनाम् |
| स० | रुच्याम्, रुचौ | रुच्यो | रुचिषु |

घूलि (धूर), मति, बुद्धि गति, शुद्धि, मक्ति, शक्ति, श्रुति, स्मृति, शान्ति नीति, रीति, जाति, रात्रि, पक्ति, गीति इत्यादि समी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप रुचि के समान होते हैं।

## ५४—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### नदी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | नदी | नद्यौ | नद्य |
| स० | हे नदि | हे नद्यौ | हे नद्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | नदीम् | नद्यौ | नदी |
| तृ० | नद्या | नदीभ्याम् | नदीभि |
| च० | नद्यै | ,, | नदीभ्य |
| प० | नद्या | नदीभ्याम् | नदीभ्य |
| ष० | ,, | नद्यो | नदीनाम् |
| स० | नद्याम् | ,, | नदीषु |

"स्त्री" आदि कुछ शब्दो को छोडकर सभी ईकारान्त, स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—राज्ञी (रानी), गौरी, पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नटी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रौपदी, कैकेयी, देवी, पाचाली, त्रिलोकी, पचवटी, अटवी (जगल), गान्धारी, कादम्बरी, कौमुदी (चन्द्रमा की रोशनी), माद्री, कुन्ती, देवकी, मावित्री, गायत्री, कमलिनी नलिनी इत्यादि ।

(क) केवल अवी (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), तन्त्री (वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) के प्रथमा के एकवचन मे भेद होता है, जैसे—

प्रथमा एकवचन—अवी , तरी , तन्त्री , लक्ष्मी , स्तरी ।

**लक्ष्मी**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | लक्ष्मी | लक्ष्म्यौ | लक्ष्म्य |
| स० | हे लक्ष्मि | हे लक्ष्म्यौ | हे लक्ष्म्य |
| द्वि० | लक्ष्मीम् | लक्ष्म्यौ | लक्ष्मी |
| तृ० | लक्ष्म्या | लक्ष्मीभ्याम् | लक्ष्मीभि |
| च० | लक्ष्म्यै | लक्ष्मीभ्याम् | लक्ष्मीभ्य |
| प० | लक्ष्म्या | लक्ष्मीभ्याम् | लक्ष्मीभ्य |
| ष० | लक्ष्म्या | लक्ष्म्यो | लक्ष्मीणाम् |
| स० | लक्ष्म्याम् | लक्ष्म्यो | लक्ष्मीषु |

**स्त्री**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्त्री | स्त्रियौ | स्त्रिय |
| स० | हे स्त्रि | हे स्त्रियौ | हे स्त्रिय |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | स्त्रियम्, स्त्रीम् | स्त्रियौ | स्त्रिय , स्त्री |
| तृ० | स्त्रिया | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभि |
| च० | स्त्रियै | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभ्य |
| प० | स्त्रिया | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभ्य |
| ष० | ,, | स्त्रियो | स्त्रीणाम् |
| स० | स्त्रियाम् | ,, | स्त्रीषु |

**श्री—लक्ष्मी**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्री | श्रियौ | श्रिय |
| स० | हे श्री | हे श्रियौ | हे श्रिय |
| द्वि० | श्रियम् | श्रियौ | श्रिय |
| तृ० | श्रिया | श्रीभ्याम् | श्रीभि |
| च० | श्रियै, श्रिये | ,, | श्रीभ्य |
| प० | श्रिया , श्रिय | ,, | ,, |
| ष० | ,, ,, | श्रियो | श्रीणाम्, श्रियाम् |
| स० | श्रियाम्, श्रियि | ,, | श्रीषु |

भी ( डर ), ह्री ( लज्जा ), धी (बुद्धि), सुश्री इत्यादि के रूप श्री के समान होते है।

## ५५—उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

**धेनु—गाय**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धेनु | धेनू | धेनव |
| स० | हे धेनो | हे धेनू | हे धेनव |
| द्वि० | धनुम् | धेनू | धेनू |
| तृ० | धेन्वा | धेनुभ्याम् | धेनुभि |
| च० | धेन्वै, धेनवे | धेनुभ्याम् | धेनुभ्य |
| प० | धेन्वा , धेनो , | धेनुभ्याम् | धेनुभ्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | धेन्वा, धेनो | धेन्वा | धेनूनाम् |
| स० | धेन्वाम्, धेनौ | धेन्वो | धेनुषु |

तनु (शरीर), रेणु [(धूलि) पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी], हनु [(ठुड्डी), पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] इत्यादि सभी सकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो कि रूप धेनु के समान होते है।

## ५६—ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### वधू—बहू

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वधू | वध्वौ | वध्व |
| स० | हे वधु | हे वध्वौ | हे वध्व |
| द्वि० | वधूम् | वध्वौ | वधू |
| तृ० | वध्वा | वधूभ्याम् | वधूभि |
| च० | वध्वै | ,, | वधूभ्य |
| प० | वध्वा | वधूभ्याम् | वधूभ्य |
| ष० | ,, | वध्वो | वधूनाम् |
| स० | वध्वाम् | ,, | वधूषु |

चमू (सेना), रज्जू (रस्सी), श्वश्रू (सास), ककन्धू (बेर) इत्यादि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप वधू के समान होते हैं।

### (क) भू—पृथ्वी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भू | भुवौ | भुव |
| स० | हे भू | हे भुवौ | हे भुव |
| द्वि० | भुवम् | भुवौ | भुव |
| तृ० | भुवा | भूभ्याम् | भूभि |
| च० | भुवै, भुवे | भूभ्याम् | भूभ्य |
| प० | भुवा, भुव | भूभ्याम् | भूभ्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | भुवा , भुव | भुवो | भुवाम्, भूनाम् |
| स० | भुवाम्, भुवि | भुवो | भूषु |

भ्रू (भौ) के रूप इसी प्रकार होते है।

स्त्रीलिङ्ग बहुव्रीहि समास वाले "सुभ्रू" शब्द के रूप भू रूप से भिन्न होते हैं —

### (ख) सुभ्रू—सुन्दर भौं वाली स्त्री

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुभ्रू | सुभ्रुवौ | सुभ्रुव |
| स० | हे सुभ्रु | हे सुभ्रुवौ | हे सुभ्रुव |
| द्वि० | सुभ्रुवम् | सुभ्रुवौ | सुभ्रुव |
| तृ० | सुभ्रुवा | सुभ्रूभ्याम् | सुभ्रूभि |
| च० | सुभ्रुवे | सुभ्रूभ्याम् | सुभ्रूभ्य |
| प० | सुभ्रुव | सुभ्रूभ्याम् | सुभ्रूभ्य |
| ष० | सुभ्रुव | सुभ्रुवो | सुभ्रुवाम् |
| स० | सुभ्रुवि | सुभ्रुवो | सुभ्रुषु |

## ५७—ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### मातृ—माता

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | माता | मातरौ | मातर |
| स० | हे मात | हे मातरौ | हे मातर |
| द्वि | मातरम् | मातरौ | मातृ |
| तृ० | मात्रा | मातृभ्याम् | मातृभि |
| च० | मात्रे | ,, | मातृभ्य |
| प० | मातु | ,, | ,, |
| ष० | ,, | मात्रो | मातृणाम् |
| स० | मातरि | ,, | मातृषु |

यातृ (देवरानी, जेठानी), दुहितृ (लडकी) के रूप मातृ के समान होते है।

**स्वसृ—बहिन**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्वसा | स्वसारौ | स्वसार |
| स० | हे स्वस | हे स्वसारौ | हे स्वसार |
| द्वि० | स्वसारम् | स्वसारौ | स्वसृ |
| तृ० | स्वस्रा | स्वसृभ्याम् | स्वसृभि |
| च० | स्वस्रे | स्वसृभ्याम् | स्वसृभ्य |
| प० | स्वसु | स्वसृभ्याम् | स्वसृभ्य |
| ष० | स्वसु | स्वस्रो | स्वसृणाम् |
| स० | स्वसरि | स्वस्रो | स्वसृषु |

ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दो के रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं। औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप भी पुल्लिङ्ग के समान होते हैं। जैसे नौ—

## ५८—औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

**नौ—नाव**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | नौ | नावौ | नाव |
| स० | हे नौ | हे नावौ | हे नाव |
| द्वि० | नावम् | नावौ | नाव |
| तृ० | नावा | नौभ्याम् | नौभि |
| च० | नावे | नौभ्याम् | नौभ्य |
| प० | नाव | नौभ्याम् | नौभ्य |
| ष० | नाव | नावो | नावाम् |
| स० | नावि | नावो | नौषु |

इसी प्रकार और भी औकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के रूप होते हैं।

## व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ

**नोट**—ऊपर स्वरान्त प्रातिपदिको का क्रम सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार पुल्लिङ्ग नपुसकलिंग और स्त्रीलिंग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

व्यजनान्त प्रातिपदिक सभी लिंगो मे प्राय एक से चलते हैं, इसलिए यहाँ पर वर्णक्रम से रक्खे गये हैं।

## ५६—चकारान्त शब्द

### (क) पुल्लिङ्ग जलमुच्—बादल

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | जलमुक्, ग् | जलमुचौ | जलमुच |
| स० | हे जलमुक्,ग् | हे जलमुचौ | हे जलमुच |
| द्वि० | जलमुचम् | जलमुचौ | जलमुच |
| तृ० | जलमुचा | जलमुग्भ्याम् | जलमुग्भि |
| च० | जलमुचे | जलमुग्भ्याम् | जलमुग्भ्य |
| प० | जलमुच | जलमुग्भ्याम् | जलमुग्भ्य |
| ष० | जलमुच | जलमुचो | जलमुचाम् |
| स० | जलमुचि | जलमुचो | जलमुक्षु |

सत्यवाच् आदि सभी चकारान्त शब्दो के रूप इसी प्रकार होते हैं। सभी चवर्गान्त शब्दो के अन्तिम चवर्ग को कवर्ग आदेश हो जाता है, यदि उसके आगे झल् वर्ण हो या वह पदान्त मे हो।[1] केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपो मे कुछ भेद होता है। ये शब्द अञ्च् (जाना) धातु से बने हैं।

#### प्राञ्च् (पूर्वी)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्राङ | प्राञ्चौ | प्राञ्च |
| स० | हे प्राङ | हे प्राञ्चौ | हे प्राञ्च |
| द्वि० | प्राञ्चम् | प्राञ्चौ | प्राच |
| तृ० | प्राचा | प्राग्भ्याम् | प्राग्भि |
| च० | प्राचे | प्राग्भ्याम् | प्राग्भ्य |
| प० | प्राच | प्राग्भ्याम् | प्राग्भ्य |
| ष० | प्राच | प्राचो | प्राचाम् |
| स० | प्राचि | प्राचो | प्राक्षु |

१ चो कु ।८।२।३०। चवर्गस्य कवर्गे स्याज्झलि पदान्ते च।

**प्रत्यञ्च् (पश्चिमी)**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रत्यङ | प्रत्यञ्चौ | प्रत्यञ्च |
| स० | हे प्रत्यङ | हे प्रत्यञ्चौ | हे प्रत्यञ्च |
| द्वि० | प्रत्यञ्चम् | प्रत्यञ्चौ | प्रतीच |
| तृ० | प्रतीचा | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भि |
| च० | प्रतीचे | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भ्य |
| प० | प्रतीच | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भ्य |
| ष० | प्रतीच | प्रतीचो | प्रतीचाम् |
| स० | प्रतीचि | प्रतीचो | प्रत्यक्षु |

**तिर्यञ्च् (तिरछा जाने वाला)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | तिर्यङ | तिर्यञ्चौ | तिर्यञ्च |
| स० | हे तिर्यङ | हे तिर्यञ्चौ | हे तिर्यञ्च. |
| द्वि० | तिर्यञ्चम् | तिर्यञ्चौ | तिरश्च |
| तृ० | तिरश्चा | तिर्यग्भ्याम् | तिर्यग्भि |
| च० | तिरश्चे | तिर्यग्भ्याम् | तिर्यग्भ्य |
| प० | तिरश्च | तिर्यग्भ्याम् | तिर्यग्भ्य |
| ष० | तिरश्च | तिरश्चो | तिरश्चाम् |
| स० | तिरश्चि | तिरश्चो | तिर्यक्षु |

**उदञ्च् (उत्तरी)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उदङ | उदञ्चौ | उदञ्च |
| स० | हे उदङ | हे उदञ्चौ | हे उदञ्च |
| द्वि० | उदञ्चम् | उदञ्चौ | उदीच |
| तृ० | उदीचा | उदग्भ्याम् | उदग्भि |
| च० | उदीचे | उदग्भ्याम् | उदग्भ्य |
| प० | उदीच | उदग्भ्याम् | उदग्भ्य |
| ष० | उदीच | उदीचो | उदीचाम् |
| स० | उदीचि | उदीचो | उदक्षु |

### (ख) स्त्रीलिङ्ग वाच्—वाणी

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | वाक्, वाग् | वाचौ | वाच |
| स० | हे वाक्, हे वाग् | हे वाचौ | हे वाच |
| द्वि० | वाचम् | वाचौ | वाच |
| तृ० | वाचा | वाग्भ्याम् | वाग्भि |
| च० | वाचे | वाग्भ्याम् | वाग्भ्य |
| प० | वाच | वाग्भ्याम् | वाग्भ्य |
| ष० | वाच | वाचो | वाचाम् |
| स० | वाचि | वाचो | वाक्षु |

रुच्, त्वच् (चमडा, पेड की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के रूप वाच् की तरह होते हैं।

## ६०—जकारान्त शब्द

### (क) पु० ऋत्विज् (यज्ञ करने वाला)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ऋत्विक्, ऋत्विग् | ऋत्विजौ | ऋत्विज |
| स० | हे ऋत्विक्, हे ऋत्विग् | हे ऋत्विजौ | हे ऋत्विज |
| द्वि० | ऋत्विजम् | ऋत्विजौ | ऋत्विज |
| तृ० | ऋत्विजा | ऋत्विग्भ्याम् | ऋत्विग्भि |
| च० | ऋत्विजे | ऋत्विग्भ्याम् | ऋत्विग्भ्य |
| प० | ऋत्विज | ऋत्विग्भ्याम् | ऋत्विग्भ्य |
| ष० | ऋत्विज | ऋत्विजो | ऋत्विजाम् |
| स० | ऋत्विजि | ऋत्विजो | ऋत्विक्षु |

भूभ[illegible]राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिषज् (वैद्य), वणिज् (बनिया) के रूप ऋत्वि[illegible] के समान होते है।

#### भिषज—वैद्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भिषक्, भिषग् | भिषजौ | भिषज |
| सं० | हे भिषक्, हे भिषग् | हे भिषजौ | हे भिषज. |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | भिषजम् | भिषजौ | भिषज॰ |
| तृ० | भिषजा | भिषग्भ्याम् | भिषग्भि |

इत्यादि ।

**वणिज्—बनिया**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वणिक्, वणिग् | वणिजौ | वणिज |
| स० | हे वणिक्, हे वणिग् | हे वणिजौ | हे वणिज॰ |
| द्वि० | वणिजम् | वणिजौ | वणिज |
| तृ० | वणिजा | वणिग्भ्याम् | वणिग्भि॰ |

इत्यादि ।

**पयोमुच्—बादल**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पयोमुक्, पयोमुग् | पयोमुचौ | पयोमुच |
| स० | हे पयोमुक्, हे पयोमुग् | हे पयोमुचौ | हे पयोमुचः |
| द्वि० | पयोमुचम् | पयोमुचौ | पयोमुच |
| तृ० | पयोमुचा | पयोमुग्भ्याम् | पयोमुग्भि |

इत्यादि ।

**परिव्राज्—सन्यासी**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | परिव्राट्, परिव्राड् | परिव्राजौ | परिव्राज |
| स० | हे परिव्राट्, हे परिव्राड् | हे परिव्राजौ | हे परिव्राज॰ |
| द्वि० | परिव्राजम् | परिव्राजौ | परिव्राज |
| तृ० | परिव्राजा | परिव्राड्भ्याम् | परिव्राड्भि |
| च० | परिव्राजे | परिव्राड्भ्याम् | परिव्राड्भ्य |
| प० | परिव्राज | परिव्राड्भ्याम् | परिव्राड्भ्य |
| ष० | परिव्राज | परिव्राजो | परिव्राजाम् |
| स० | परिव्राजि | परिव्राजो | परिव्राट्त्सु, परिव्राट्सु |

इसी प्रकार सम्राज् (महाराज), विश्वसृज् (ससार का रचने वाला), विराज् (बडा) के रूप होते हैं।

### सम्राज्—सम्राट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सम्राट्, सम्राड् | सम्राजौ | सम्राज |
| द्वि० | सम्राजम् | सम्राजौ | सम्राज |
| तृ० | सम्राजा | सम्राड्भ्याम् | सम्राड्भि |

इत्यादि परिव्राज् के समान।

### विराज्—विराट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विराट्, विराड् | विराजौ | विराज |
| द्वि० | विराजम् | विराजौ | विराज |
| तृ० | विराजा | विराड्भ्याम | विराड्भि. |

इत्यादि परिव्राज् के समान्।

### (ख) स्त्री० स्रज्—माला

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्रक्, स्रग् | स्रजौ | स्रज |
| स० | हे स्रक्, हे स्रग् | हे स्रजौ | हे स्रज |
| द्वि० | स्रजम् | स्रजौ | स्रज |
| तृ० | स्रजा | स्रग्भ्याम् | स्रग्भि |
| च० | स्रजे | स्रग्भ्याम् | स्रग्भ्य |
| प० | स्रज | स्रग्भ्याम् | स्रग्भ्य |
| ष० | स्रज | स्रजो | स्रजाम् |
| स० | स्रजि | स्रजो | स्रक्षु |

रुज् (रोग) के भी रूप स्रज् के समान होते हैं।

### (ग) नपु० असृज्—लोहू

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | असृक्, असृग् | असृजी | असृञ्जि |
| स० | हे असृक्, हे असृग् | हे असृजी | हे असृञ्जि |
| द्वि० | असृक् | असृजी | असृञ्जि |
| तृ० | असृजा | असृग्भ्याम् | असृग्भि |
| च० | असृजे | असृग्भ्याम् | असृग्भ्य |
| प० | असृज | असृग्भ्याम | [illegible] |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ष० | असृज | असृजो | असृजाम् |
| स० | असृजि | असृजो | असृक्षु |

सभी जकारान्त नपुसकलिग शब्दो के रूप असृज् के समान होते है।

## ६१—तकारान्त शब्द

### (क) पुल्लिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भूभृत, भूभृद् | भूभृतौ | भूभृत |
| स० | हे भूभृत्, हे भूभृद् | हे भूभृतौ | हे भूभृत |
| द्वि० | भूभृतम् | भूभृतौ | भूभृत |
| तृ० | भूभृता | भूभृद्भ्याम् | भूभृद्भि |
| च० | भूभृते | भूभृद्भ्याम् | भूभृद्भ्य' |
| प० | भूभृत | भूभृद्भ्याम | भूभृद्भ्य |
| ष० | भूभृत | भूभृतो | भूभृताम् |
| स० | भूभृति | भूभृतो | भूभृत्सु |

महीभृन् (राजा, पहाड), दिनकृत् (सूर्य), शशभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कौआ), मरुत् (वायु), विश्वजित् (ससार का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ) के रूप भूभृत् के समान होते है।

### श्रीमत्—भाग्यवान्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्रीमान् | श्रीमन्तौ | श्रीमन्त |
| स० | हे श्रीमन् | हे श्रीमन्तौ | हे श्रीमन्त |
| द्वि० | श्रीमन्तम् | श्रीमन्तौ | श्रीमत |
| तृ० | श्रीमता | श्रीमद्भ्याम् | श्रीमद्भि |
| च० | श्रीमते | श्रीमद्भ्याम् | श्रीमद्भ्य |
| प० | श्रीमत | श्रीमद्भ्याम् | श्रीमद्भ्य |
| ष० | श्रीमत | श्रीमतो | श्रीमताम् |
| स० | श्रीमति | श्रीमतो | श्रीमत्सु |

धीमत् (बुद्धिमान्), भानुमत् (चमकने वाला), सानुमत् (पहाड), धनुष्मत (धनर्धारी), अशमत (सूर्य` [illegible]ावत (विद्या वाला), बलवत

(बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्) आदि मतुप् प्रत्ययान्तो के तथा गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) आदि क्तवतु प्रत्ययान्तो के रूप श्रीमत् के समान होते है। स्त्रीलिंग मे इनके जोड के प्रातिपदिक-ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती, बुद्धिमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

### भवत्—आप

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | भवान् | भवन्तौ | भवन्त |
| स० | हे भवन् | हे भवन्तौ | हे भवन्त |
| द्वि० | भवन्तम् | भवन्तौ | भवत |
| तृ० | भवता | भवद्भ्याम् | भवद्भि |
| च० | भवते | भवद्भ्याम् | भवद्भ्य. |
| प० | भवत | भवद्भ्याम् | भवद्भ्य |
| ष० | भवत. | भवतो | भवताम् |
| स० | भवति | भवतो | भवत्सु |

इसी से स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है।

### महत्—बडा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | महान् | महान्तौ | महान्त |
| स० | हे महन् | हे महान्तौ | हे महान्त |
| द्वि० | महान्तम् | महान्तौ | महत |
| तृ० | महता | महद्भ्याम् | महद्भि |
| च० | महते | महद्भ्याम् | महद्भ्य |
| प० | महत | महद्भ्याम् | महद्भ्य |
| ष० | महत | महतो | महताम् |
| स० | महति | महतो | महत्सु |

इसके जोड का स्त्रीलिङ्ग शब्द महती है'

**पठत्—पढ़ता हुआ**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | पठन् | पठन्तौ | पठन्त |
| स० | हे पठन् | हे पठन्तौ | हे पठन्त |
| द्वि० | पठन्तम् | पठन्तौ | पठत |
| तृ० | पठता | पठद्भ्याम् | पठद्भि |
| च० | पठते | पठद्भ्याम् | पठद्भ्य |
| प० | पठत | पठद्भ्याम् | पठद्भ्य |
| ष० | पठत | पठतो | पठताम् |
| स० | पठति | पठतो | पठत्सु |

धावत् (दौडता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप पठत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग मे पठती, पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

**दत्—दाँत**

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | — | — | दत |
| तृ० | दता | दद्भ्याम् | दद्भि |
| च० | दते | दद्भ्याम् | दद्भ्य |
| प० | दत | दद्भ्याम् | दद्भ्य |
| ष० | दत | दतो | दताम् |
| स० | दति | दतो | दत्सु |

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप दन्त शब्द के ही होते हैं।[1]

---

१ पद्दन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।६।१।६३। नियम से यहाँ दन्त शब्द के स्थान मे, शस् से लेकर बाद की सभी विभक्तियो मे विकल्प से दत् आदेश होता है।

### (ख) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सरित्, सरिद् | सरितौ | सरित |
| स० | हे सरित्, हे मरिद् | हे सरितौ | हे सरित |
| द्वि० | सरितम् | सरितौ | सरित |
| तृ० | सरिता | सरिद्भ्याम् | सरिद्भि |
| च० | सरिते | सरिद्भ्याम् | सरिद्भ्य |
| प० | सरित | सरिद्भ्याम् | सरिद्भ्य |
| ष० | सरित | सरितो | सरिताम् |
| स० | सरिति | सरितो | सरित्सु |

विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री) के रूप सरित् के समान चलते है।

### (ग) नपु० जगत्—ससार

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जगत्, जगद् | जगती | जगन्ति |
| स० | हे जगत्, हे जगद् | हे जगती | हे जगन्ति |
| द्वि | जगत्, जगद् | जगती | जगन्ति |
| तृ० | जगता | जगद्भ्याम् | जगद्भि |
| च० | जगते | जगद्भ्याम् | जगद्भ्य |
| प० | जगत | जगद्भ्याम् | जगद्भ्य |
| ष० | जगत | जगतो | जगताम् |
| स० | जगति | जगतो | जगत्सु |

श्रीमत्, भवत् (होता हुआ) तथा और भी तकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्दो के रूप जगत् के समान होते है।

### नपु० महत्—बडा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | महत्, महद् | महती | महान्ति |
| स० | हे महत्,हे महद् | हे महती | हे महान्ति |
| द्वि० | महत् | महती | महान्ति |

शेष रूप जगत् के समान होते हैं।

## ६२—दकारान्त शब्द

### (क) पुल्लिङ्ग सुहृद्—मित्र

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुहृत्, सुहृद् | सुहृदौ | सुहृद |
| सं० | हे सुहृत्, हे सुहृद् | हे सुहृदौ | हे सुहृद |
| द्वि० | सुहृदम् | सुहृदौ | सुहृद |
| तृ० | सुहृदा | सुहृद्भ्याम् | सुहृद्भि |
| च० | सुहृदे | सुहृद्भ्याम् | सुहृद्भ्य |
| प० | सुहृद | सुहृद्भ्याम् | सुहृद्भ्य |
| ष० | सुहृद | सुहृदो | सुहृदाम् |
| स० | सुहृदि | सुहृदो | सुहृत्सु |

हृदयच्छिद् (हृदय को छेदने वाला), मर्मभिद्, समासद्' (सभा मे बैठने वाला), तमोनुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने वाला), अरुन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला) इत्यादि दकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप सुहृद् के समान होते हैं।

### पद्—पैर

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | — | — | पद |
| तृ० | पदा | पद्भ्याम् | पद्भि |
| च० | पदे | पद्भ्याम् | पद्भ्य |
| प० | पद | पद्भ्याम् | पद्भ्य |
| ष० | पद | पदो | पदाम् |
| स० | पदि | पदो | पत्सु |

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप अकारान्त पाद के समान होते हैं। (देखिए टिप्पणी पृ० ६८ पर)।

### (क) स्त्री० दृषद्—पत्थर, चट्टान

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दृषत्, दृषद् | दृषदौ | दृषद |
| सं० | हे दृषद् | हे दृषदौ | हे दृ[illegible] |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | दृषदम् | दृषदौ | दृषद |
| तृ० | दृषदा | दृषद्भ्याम् | दृषद्भि |
| च० | दृषदे | दृषद्भ्याम् | दृषद्भ्य |
| प० | दृषद | दृषद्भ्याम् | दृषद्भ्य |
| ष० | दृषद | दृषदो | दृषदाम् |
| स० | दृषदि | दृषदो | दृषत्सु |

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), ससद् (सभा) के रूप दषद् के समान होते हैं।

### (ख) नपु० हृद्—हृदय

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हृत्, हृद् | हृदी | हृन्दि |
| स० | हे हृत्, हे हृद् | हे हृदी | हे हृन्दि |
| द्वि० | हृत्, हृद् | हृदी | हृन्दि |
| तृ० | हृदा | हृद्भ्याम् | हृद्भि |
| च० | हृदे | हृद्भ्याम् | हृद्भ्य |
| प० | हृद | हृद्भ्याम् | हृद्भ्य |
| ष० | हृद | हृदो | हृदाम् |
| स० | हृदि | हृदो | हृत्सु |

## ६३—धकारान्त शब्द

### स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकडी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | समित्, समिद् | समिधौ | समिध |
| स० | हे समित्, हे समिद् | हे समिधौ | हे समिध |
| द्वि० | समिधम् | समिधौ | समिध |
| तृ० | समिधा | समिद्भ्याम् | समिद्भि |
| च० | समिधे | समिद्भ्याम् | समिद्भ्य |
| प० | समिध | समिद्भ्याम् | समिद्भ्य |
| ष० | समिध | समिधो | समिधाम् |
| स० | समिधि | समिधो | समित्सु |

वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध), युध्, (युद्ध) इत्यादि सभी धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दो के रूप समिध् के समान होते हैं।

## ६४—नकारान्त शब्द

### पु० आत्मन्—आत्मा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | आत्मा | आत्मानौ | आत्मान |
| स० | हे आत्मन् | हे आत्मानौ | हे आत्मान |
| द्वि० | आत्मानम् | आत्मानौ | आत्मन |
| तृ० | आत्मना | आत्मभ्याम् | आत्मभि |
| च० | आत्मने | आत्मभ्याम् | आत्मभ्य |
| प० | आत्मन | आत्मभ्याम् | आत्मभ्य |
| ष० | आत्मन | आत्मनो | आत्मनाम् |
| स० | आत्मनि | आत्मनो | आत्मसु |

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लडाई मे एक योद्धा का नाम), कृतवमन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान चलते हैं।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी मे स्त्रीलिङ्ग मे प्रयुक्त होता है, किन्तु सस्कृत मे यह शब्द पुल्लिङ्ग है, यह ध्यान मे रखना चाहिए।

### पु० राजन्—राजा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | राजा | राजानौ | राजान |
| स० | हे राजन् | हे राजानौ | हे राजान |
| द्वि० | राजानम् | राजानौ | राज्ञ |
| तृ० | राज्ञा | राजभ्याम् | राजभि |
| च० | राज्ञे | राजभ्याम् | राजभ्य |
| प० | राज्ञ | राजभ्याम् | राजभ्य |
| ष० | राज्ञ | राज्ञो | राज्ञाम् |
| स० | राज्ञि, राजनि | राज्ञो | राजसु |

इसके जोड का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पु० महिमन्—बड़प्पन

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | महिमा | महिमानौ | महिमान |
| स० | हे महिमन् | हे महिमानौ | हे महिमान |
| द्वि० | महिमानम् | महिमानौ | महिम्न |
| तृ० | महिम्ना | महिमभ्याम् | महिमभि |
| च० | महिम्ने | महिमभ्याम् | महिमभ्य |
| प० | महिम्न | महिमभ्याम् | महिमभ्य |
| ष० | महिम्न | महिम्नो | महिम्नाम् |
| स० | महिम्नि / महिमनि | महिम्नो | महिमसु |

मूर्धन् (सिर), सीमन् [ (चौहद्दी) स्त्रीलिङ्ग], गरिमन् (बडप्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), शुक्लिमन् (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रढिमन् (मजबूती), अश्वत्थामन् इत्यादि समस्त अन्नन्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप महिमन् के समान होते हैं।

**नोट**—हिन्दी मे महिमा, कालिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग मे प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु सस्कृत मे पुल्लिङ्ग मे इसका ध्यान रखना चाहिए।

पु० युवन्—जवान

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | युवा | युवानौ | युवान |
| स० | हे युवन् | युवानौ | हे युवान |
| द्वि० | युवानम् | युवानौ | यून |
| तृ० | यूना | युवभ्याम् | युवभि |
| च० | यूने | युवभ्याम् | युवभ्य |
| प० | यून | युवभ्याम् | युवभ्य |
| ष० | यून | यूनो | यूनाम् |
| स० | यूनि | यूनो | युवसु |

इसके जोड का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवती है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

### पु० श्वन्—कुत्ता

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्वा | श्वानौ | श्वान |
| स० | हे श्वन् | हे श्वानौ | हे श्वान |
| द्वि० | श्वानम् | श्वानौ | शुन |
| तृ० | शुना | श्वभ्याम् | श्वभि |
| च० | शुने | श्वभ्याम् | श्वभ्य |
| प० | शुन | श्वभ्याम् | श्वभ्य |
| ष० | शुन | शुनो | शुनाम् |
| स० | शुनि | शुनो | श्वसु |

### पु० अर्वन्—घोड़ा, इन्द्र

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अर्वा | अर्वन्तौ | अर्वन्त |
| स० | हे अर्वन् | हे अर्वन्तौ | हे अर्वन्त |
| द्वि० | अर्वन्तम् | अर्वन्तौ | अर्वत |
| तृ० | अर्वता | अर्वद्भ्याम् | अर्वद्भि |
| च० | अर्वते | अर्वद्भ्याम् | अर्वद्भ्य |
| प० | अर्वत | अर्वद्भ्याम् | अर्वद्भ्य |
| ष० | अर्वत | अर्वतो | अर्वताम् |
| स० | अर्वति | अर्वतो | अर्वत्सु |

### पु० मघवन्—इन्द्र

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | मघवा | मघवानौ | मघवान |
| स० | हे मघवन् | हे मघवानौ | हे मघवान: |
| द्वि० | मघवानम् | मघवानौ | मघोनः |
| तृ० | मघोना | मघवभ्याम् | मघवभि |
| च० | मघोने | मघवभ्याम् | मघवभ्य |
| प० | मघोन | मघवभ्याम | मघवभ्य |
| ष० | मघोन | मघोनो | मघोनाम् |
| स० | मघोनि | मघोनो | मघवसु |

**मघवन् का रूप विकल्प से इस प्रकार भी होता है—**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | मघवान् | मघवन्तौ | मघवन्त |
| स० | हे मघवन् | हे मघवन्तौ | हे मघवन्त. |
| द्वि० | मघवन्तम् | मघवन्तौ | मघवत |
| तृ० | मघवता | मघवद्भ्याम् | मघवद्भि |
| च० | मघवते | मघवद्भ्याम् | मघवद्भ्य |
| प० | मघवत | मघवद्भ्याम् | मघवद्भ्य. |
| ष० | मघवत | मघवतो | मघवताम् |
| स० | मघवति | मघवतो | मघवत्सु |

**पु० पूषन्—सूर्य**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पूषा | पूषणौ | पूषण |
| स० | हे पूषन् | हे पूषणौ | हे पूषण. |
| द्वि० | पूषणम् | पूषणौ | पूषण |
| तृ० | पूष्णा | पूषभ्याम् | पूषभि |
| च० | पूष्णे | पूषभ्याम् | पूषभ्य |
| प० | पूष्ण | पूषभ्याम् | पूषभ्य |
| ष० | पूष्ण | पूष्णो | पूष्णाम् |
| स० | पूष्णि, पूषणि | पूष्णो | पूषसु |

**पु० हस्तिन्—हाथी**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हस्ती | हस्तिनौ | हस्तिन |
| स० | हे हस्तिन् | हे हस्तिनौ | हे हस्तिन |
| द्वि० | हस्तिनम् | हस्तिनौ | हस्तिन |
| तृ० | हस्तिना | हस्तिभ्याम् | हस्तिभि |
| च० | हस्तिने | हस्तिभ्याम् | हस्तिभ्य |
| प० | हस्तिन | हस्तिभ्याम् | हस्तिभ्य |
| ष० | हस्तिन | हस्तिनो | हस्तिनाम् |
| स० | हस्तिनि | हस्तिनो | हस्तिषु |

स्वामिन्, करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी, चिडिया), धनिन्, वाजिन् (घोडा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), बलिन् (बली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला), माविन् इत्यादि इन् मे अन्त होने वाले पु० शब्दो के रूप हस्तिन् के समान होते हैं।

इन्नन्त शब्दो के जोड के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड कर हस्तिनी, एकाकिनी, माविनी आदि ईकारान्त होते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

पथिन् शब्द के रूपो मे जो भेद होता है वह नीचे दिखाया जाता है—

**पु० पथिन्—मार्ग**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | पन्था | पन्थानौ | पन्थान |
| स० | हे पन्था | हे पन्थानौ | हे पन्थान |
| द्वि० | पन्थानम् | पन्थानौ | पथ॰ |
| तृ० | पथा | पथिभ्याम् | पथिभि |
| च० | पथे | पथिभ्याम् | पथिभ्य |
| प० | पथ | पथिभ्याम् | पथिभ्य |
| ष० | पथ | पथो | पथाम् |
| स० | पथि | पथो | पथिषु |

**(क) स्त्री० सीमन्—चौहद्दी**

सीमन् के रूप महिमन् के समान होते हैं, जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सीमा | सीमानौ | सीमान |
| स० | हे सीमन् | हे सीमानौ | हे सीमान |
| द्वि० | सीमानम् | सीमानौ | सीम्न |
| तृ० | सीम्ना | सीमभ्याम् | सीमभि |
| च० | सीम्ने | सीमभ्याम् | सीमभ्य |
| प० | सीम्न | सीमभ्याम् | सीमभ्य |
| ष० | सीम्न | सीम्नो | सीम्नाम् |
| स० | सीम्नि, सीमनि | सीम्नो | सीमसु |

(ख) नपुं० नामन्—नाम

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | नाम | नाम्नी, नामनी | नामानि |
| स० | हे नाम, हे नामन् | हे नाम्नी, हे नामनी | हे नामानि |
| द्वि० | नाम | नाम्नी, नामनी | नामानि |
| तृ० | नाम्ना | नामभ्याम् | नामभि |
| च० | नाम्ने | नामभ्याम् | नामभ्य |
| प० | नाम्न | नामभ्याम् | नामभ्य |
| ष० | नाम्न | नाम्नो | नाम्नाम् |
| स० | नाम्नि, नामनि | नाम्नो | नामसु |

धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी) के रूप नामन् के समान होते हैं।

नपुं० चर्मन्—चमड़ा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | चर्म | चर्मणी | चर्माणि |
| स० | हे चर्म, हे चर्मन् | हे चर्मणी | हे चर्माणि |
| द्वि० | चर्म | चर्मणी | चर्माणि |
| तृ० | चर्मणा | चर्मभ्याम् | चर्मभि |
| च० | चर्मणे | चर्मभ्याम् | चर्मभ्य |
| प० | चर्मण | चर्मभ्याम् | चर्मभ्य |
| ष० | चर्मण | चर्मणो | चर्मणाम् |
| स० | चर्मणि | चर्मणो | चर्मसु |

पर्वन् (पौर्णमासी, अमावस्या या त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्म), वर्मन् (कवच), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) के रूप चर्मन् के समान होते हैं।

नपुं० अहन्—दिन

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अह | अह्नी, अहनी | अहानि |
| स० | हे अह | हे अह्नी, हे अहनी | हे अहानि |
| द्वि० | अह् | अह्नी, अहनी | अहानि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | अह्ना | अहोभ्याम् | अहोभि |
| च० | अह्ने | अहोभ्याम् | अहोभ्य |
| प० | अह्न | अहोभ्याम् | अहोभ्य |
| ष० | अह्न | अह्नो | अह्नाम् |
| स० | अह्नि, अहनि | अह्नो | अह सु, अहस्सु |

नपु० भाविन्—होने वाला

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भावि· | भाविनी | भावीनि |
| स० | हे भावि, हे भाविन् | हे भाविनि | हे भावीनि |
| द्वि० | भावि | भाविनी | भावीनि |
| तृ० | भाविना | भाविभ्याम् | भाविभि |
| च० | भाविने | भाविभ्याम् | भाविभ्य |
| प० | भाविन | भाविभ्याम् | भाविभ्य |
| ष० | भाविन | भाविनो | भाविनाम् |
| स० | भाविनि | भाविनो | भाविषु |

इसी प्रकार सभी इन्नन्त नपुसकलिग शब्दो के रूप होते है।

## ६५—पकारान्त शब्द

### स्त्री० अप्—पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन मे होते हैं—

| | बहुवचन |
|---|---|
| प्र० | आप |
| स० | हे आप |
| द्वि० | अप |
| तृ० | अद्भि |
| च० | अद्भ्य |
| प० | अद्भ्य |
| ष० | अपाम् |
| स० | अप्सु |

## ६६—भकारान्त शब्द

### स्त्री० ककुभ्—दिशा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| ० | ककुप्, ककुब् | ककुभौ | ककुभ |
| ०ं | हे ककुप्, हे ककुब् | हे ककुभौ | हे ककुभ. |
| द्वि० | ककुभम् | ककुभौ | ककुभ |
| [० | ककुभा | ककुब्भ्याम् | ककुब्भि |
| च० | ककुभे | ककुब्भ्याम् | ककुब्भ्य |
| प० | ककुभ | ककुब्भ्याम् | ककुब्भ्य· |
| ष० | ककुभ | ककुभो | ककुभाम् |
| स० | ककुभि | ककुभो | ककुप्सु |

इसी प्रकार अन्य भकारान्त शब्दो के रूप होते हैं।

## ६७—रकारान्त शब्द

### नपुं० वार्—पानी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वा | वारी | वारि |
| स० | हे वा | हे जारी | हे वारि |
| द्वि० | वा | वारी | वारि |
| तृ० | वारा | वार्भ्याम् | वार्भि |
| च० | वारे | वार्भ्याम् | वार्भ्यं. |
| पं० | वार | वार्भ्याम् | वार्भ्यं |
| ष० | वार | वारो | वाराम् |
| स० | वारि | वारो | वार्षु |

### (क) स्त्री० गिर्—वाणी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | गी | गिरौ | गिर |
| सं० | हे गी | हे गिरौ | हे गिरः |
| द्वि० | गिरम् | गिरौ | गिर· |
| तृ० | गिरा | गीर्भ्याम् | गीर्भिः |
| च० | गिरे | गीर्भ्याम् | गीर्भ्यं. |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प० | गिर | गीर्भ्याम् | गीर्भ्यं |
| ष० | गिर | गिरो | गिराम् |
| स० | गिरि | गिरो | गीर्षु |

**स्त्री० पुर्—नगर**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पू | पुरौ | पुर |
| स० | हे पू | हे पुरौ | हे पुर |
| द्वि | पुरम् | पुरौ | पुर |
| तृ० | पुरा | पूर्भ्याम् | पूर्भि |
| च० | पुरे | पूर्भ्याम् | पूर्भ्यं |
| प० | पुर | पूर्भ्याम् | पूर्भ्यं |
| ष० | पुर | पुरो | पुराम् |
| स० | पुरि | पुरो | पूर्षु |

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

## ६८—वकारान्त शब्द

**स्त्री० दिव्—आकाश, स्वर्ग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | द्यौ | दिवौ | दिव |
| स० | हे द्यौ | हे दिवौ | हे दिवः |
| द्वि० | दिवम् | दिवौ | दिव |
| तृ० | दिवा | द्युभ्याम् | द्युभि |
| च० | दिवे | द्युभ्याम् | द्युभ्य |
| प० | दिव | द्युभ्याम् | द्युभ्य |
| ष० | दिव | दिवो | दिवाम् |
| स० | दिवि | दिवो | द्युषु |

## ६९—शकारान्त शब्द

**पु० विश्—बनिया**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विट्, विड | विशौ | विश |
| स० | हे विट, हे विड् | हे विशौ | हे विश |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | विशम् | विशौ | विश |
| तृ० | विशा | विड्भ्याम् | विड्भि |
| च० | विशे | विड्भ्याम् | विड्भ्य |
| प० | विश | विड्भ्याम् | विड्भ्य |
| ष० | विश | विशो | विशाम् |
| स० | विशि | विशो | विटत्सु, विट्सु |

**नपु० तादृश्—उसके समान**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | तादृक्, तादृग् | तादृशौ | तादृश |
| स० | हे तादृक्, हे तादृग् | हे तादृशौ | हे तादृश |
| द्वि० | तादृशम् | तादृशौ | तादृश |
| तृ० | तादृशा | तादृग्भ्याम् | तादृग्भि |
| च० | तादृशे | तादृग्भ्याम् | तादृग्भ्य |
| प० | तादृश | तादृग्भ्याम् | तादृग्भ्य |
| ष० | तादृश | तादृशो | तादृशाम् |
| स० | तादृशि | तादृशो | तादृक्षु |

यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आपके समान), त्वादृश् (तेरे समान), एकादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

इनके जोड वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द तादृशी, यादृशी, भवादृशी आदि हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

नपुसकलिङ्ग मे तादृश्, मादृश् इत्यादि के रूप इस प्रकार होंगे —

**नपु० तादृश्—उसके समान**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | तादृक्, तादृग् | तादृशी | तादृशि |
| सं० | हे तादृक्, तादृग् | हे तादृशी | हे तादृशि |
| द्वि० | तादृक्, तादृग् | तादृशी | तादृशि |

तृतीया इत्यादि के रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं।

तादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के जोड के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं, और उनके रूप अकारान्त शब्दो के समान होते हैं जैसा कि पृष्ठ ७१ मे पहिले ही दिखा चुके हैं।

(क) स्त्री० दिश्—दिशा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | दिक्, दिग् | दिशौ | दिश |
| स० | हे दिक्, हे दिग् | हे दिशौ | हे दिश |
| द्वि० | दिशम् | दिशौ | दिश |
| तृ० | दिशा | दिग्भ्याम् | दिग्भि |
| च० | दिशे | दिग्भ्याम् | दिग्भ्य |
| प० | दिश | दिग्भ्याम् | दिग्भ्य. |
| ष० | दिश | दिशो | दिशाम् |
| स० | दिशि | दिशो' | दिक्षु |

स्त्री० निश्—रात

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | | | निश |
| तृ० | निशा | निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निज्भि, निड्भि |
| च० | निशे | निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निज्भ्य, निड्भ्य |
| पं० | निश | निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निज्भ्य, निड्भ्य. |
| ष० | निश | निशो | निशाम् |
| स० | निशि | निशोः | निक्षु, निट्सु, निट्त्सु |

इसके पहले पाँच रूप निशा शब्द के होते हैं, शस् से लेकर आगे की विभक्तियो मे निशा के स्थान पर निश् आदेश विकल्प से होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ९८ पर।

## ७०—षकारान्त शब्द

### पु० द्विष्—शत्रु

| | एकवचन | द्विचवन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | द्विट्, द्विड् | द्विषौ | द्विष |
| स० | हे द्विट्, हे द्विड् | हे द्विषौ | हे द्विष |
| द्वि० | द्विषम् | द्विषौ | द्विष |
| तृ० | द्विषा | द्विड्भ्याम् | द्विड्भि |
| च० | द्विषे | द्विड्भ्याम् | द्विड्भ्य |
| प० | द्विष | द्विड्भ्याम् | द्विड्भ्य |
| ष० | द्विष | द्विषो | द्विषाम् |
| स० | द्विषि | द्विषो | द्विट्त्सु, द्विट्सु |

### स्त्री० प्रावृष्—वर्षा ऋतु

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रावृट्, प्रावृड् | प्रावृषौ | प्रावृष |
| स० | हे प्रावृट्, हे प्रावृड् | हे प्रावृषौ | हे प्रावृष |
| द्वि० | प्रावृषम् | प्रावृषौ | प्रावृष |
| तृ० | प्रावृषा | प्रावृड्भ्याम् | प्रावृड्भि |
| च० | प्रावृषे | प्रावृड्भ्याम् | प्रावृड्भ्य |
| प० | प्रावृष | प्रावृड्भ्याम् | प्रावृड्भ्य |
| ष० | प्रावृष | प्रावृषो | प्रावृषाम् |
| स० | प्रावृषि | प्रावृषो | प्रावृट्त्सु, प्रावृट्सु |

## ७१—सकारान्त शब्द

### पु० चन्द्रमस्—चद्रमा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | चन्द्रमा | चन्द्रमसौ | चन्द्रमस |
| स० | हे चन्द्रमस | हे चन्द्रमसौ | हे चन्द्रमस |
| द्वि० | चन्द्रमसम् | चन्द्रमसौ | चन्द्रमस |
| तृ० | चन्द्रमसा | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभि |
| च० | चन्द्रमसे | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभ्य |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प० | चन्द्रमस | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभ्य |
| ष० | चन्द्रमस | चन्द्रमसो | चन्द्रमसाम् |
| स० | चन्द्रमसि | चन्द्रमसो | चन्द्रम सु-स्सु |

दिवौकस् (देवता), महौजस् (बडा तेज वाला), वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (बडा यशस्वी), महातेजस् (बडी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (बडी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपडो वाला), प्रचेतस् (वरुण) इत्यादि सभी सकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

पुं० मास्—महीना

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | | | मास |
| तृ० | मासा | माभ्याम् | माभि |
| च० | मासे | माभ्याम् | माभ्य |
| प० | मास | माभ्याम् | माभ्य |
| ष० | मास | मासो | मासाम् |
| स० | मासि | मासो | मा सु<br>मास्सु |

नोट—इस मास् शब्द के प्रथम पाँच विभक्तियो मे अकारान्त मास शब्द के रूप प्रयुक्त होते हैं। शस् के आगे की विभक्तियो मे मास के स्थान पर मास् का विकल्प से प्रयोग होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ९८ पर।

पुं० पुम्स्—पुरुष

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पुमान् | पुमांसौ | पुमांस |
| स० | हे पुमन् | हे पुमांसौ | हे पुमांस |
| द्वि० | पुमासम् | पुमासौ | पुस |
| तृ० | पुसा | पुम्भ्याम् | पुम्भि |
| च० | पुसे | पुम्भ्याम् | पुम्भ्य |
| प० | पुस | पुम्भ्याम् | पुम्भ्य |
| ष० | पुस | पुसो | पुंसाम् |
| स० | पुसि | पुसो | पुंसु |

### पु० विद्वस्—विद्वान्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | विद्वान् | विद्वांसौ | विद्वांस |
| स० | हे विद्वन् | हे विद्वांसौ | हे विद्वांस |
| द्वि० | विद्वांसम् | विद्वांसौ | विदुष[1] |
| तृ० | विदुषा | विद्वद्भ्याम्[2] | विद्वद्भि |
| च० | विदुषे | विद्वद्भ्याम् | विद्वद्भ्य |
| प० | विदुष | विद्वद्भ्याम् | विद्वद्भ्य |
| ष० | विदुष | विदुषो | विदुषाम् |
| स० | विदुषि | विदुषो | विद्वत्सु |

वस् मे अन्त मे होने वाले शब्दो के रूप इसी प्रकार चलते हैं।

इसके जोड का स्त्रीलिङ्ग शब्द "विदुषी" है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

### पु० लघीयस्—उससे छोटा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | लघीयान् | लघीयांसौ | लघीयांस |
| स० | हे लघीयन् | हे लघीयांसौ | हे लघीयांस |
| द्वि० | लघीयांसम् | लघीयांसौ | लघीयस |
| तृ० | लघीयसा | लघीयोभ्याम् | लघीयोभि |

---

१ वसो सम्प्रसारणम् ।६।४।१३१। सूत्र के अनुसार वस् मे अन्त होने वाले 'भ' संज्ञक व के स्थान पर उ (सम्प्रसारण) हो जाता है। इस प्रकार विदुष विदुषा आदि रूप बनते हैं।

२ भ्याम् इत्यादि के पूर्व विद्वस् के स् के स्थान मे द् हो जाता है और इस प्रकार विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भि इत्यादि रूप बनते हैं। यह परिवर्तन 'वसुस्रसुध्व-सुस्वनडुहा द' ।८।२।७२। के अनुसार होता है।

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| च० | लघीयसे | लघीयोभ्याम् | लघीयोभ्य |
| पं० | लघीयस | लघीयोभ्याम् | लघीयोभ्य |
| ष० | लघीयस | लघीयसो | लघीयसाम् |
| स० | लघीयसि | लघीयसो | लघीयस्सु, लघीय सु |

श्रेयस्, (अधिक प्रशस्त), गरीयस् (अधिक बडा), द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्राघीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या बडा), इत्यादि इयस् प्रत्यय से बने हुए पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप लघीयस् के समान होते हैं।

इनके जोड वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्राघीयसी इत्यादि "ई" जोडकर बनते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

### पु० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्रेयान् | श्रेयांसौ | श्रेयांस |
| सं० | हे श्रेयन् | हे श्रेयासौ | हे श्रेयांस |
| द्वि० | श्रेयांसम् | श्रेयांसौ | श्रेयस |
| तृ० | श्रेयसा | श्रेयोभ्याम् | श्रेयोभि |
| च० | श्रेयसे | श्रेयोभ्याम् | श्रेयोभ्य |
| पं० | श्रेयस | श्रेयोभ्याम् | श्रेयोभ्य |
| ष० | श्रेयस | श्रेयसो | श्रेयसाम् |
| स० | श्रेयसि | श्रेयसो | श्रेयस्सु<br>श्रेय सु |

### पुं० दोस्—भुजा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दो' | दोषौ | दोष |
| सं० | हे दो | हे दोषौ | हे दोष |
| द्वि० | दोषम् | दोषौ | दोष , दोष्ण |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | दोषा<br>दोष्णा | दोर्भ्याम्<br>दोषभ्याम् | दोर्भि<br>दोषभि |
| च० | दोषे<br>दोष्णे | दोर्भ्याम्<br>दोषभ्याम् | दोर्भ्य<br>दोषभ्य |
| पं० | दोष<br>दोष्ण | दोर्भ्याम्<br>दोषभ्याम् | दोर्भ्य<br>दोषभ्य |
| ष० | दोष<br>दोष्ण | दोषो<br>दोष्णो | दोषाम्<br>दोष्णाम् |
| स० | दोषि<br>दोष्णि<br>दोषणि | दोषो<br>दोष्णो | दोष्षु<br>दो षु<br>दोषसु |

### (क) स्त्री० अप्सरस्—अप्सरा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अप्सरा | अप्सरसौ | अप्सरस |
| सं० | हे अप्सर | हे अप्सरसौ | हे अप्सरस |
| द्वि० | अप्सरसम् | अप्सरसौ | अप्सरस |
| तृ० | अप्सरसा | अप्सरोभ्याम् | अप्सरोभि |
| च० | अप्सरसे | ,, | अप्सरोभ्य |
| पं० | अप्सरस | ,, | अप्सरोभ्य |
| ष० | ,, | अप्सरसो | अप्सरसाम् |
| स० | अप्सरसि | ,, | अप्सरस्सु, अप्सरःसु |

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है।[1]

### स्त्री० आशिस्—आशीर्वाद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आशी | आशिषौ | आशिष |
| सं० | हे आशी | हे आशिषौ | हे आशिष. |

---

१ स्त्रियां बहुष्वप्सरस स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि—शब्दार्णव ।

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | आशिषम् | आशिषौ | आशिष |
| तृ० | आशिषा | आशीर्भ्याम् | आशीर्भि |
| च० | आशिषे | आशीर्भ्याम् | आशीर्भ्य |
| प० | आशिष | आशीर्भ्याम् | आशीर्भ्य |
| ष० | आशिष | आशिषो | आशिषाम् |
| स० | आशिषि | आशिषो | आशीष्षु, आशीःषु |

### (ख) नपु० पयस्—दूध या पानी

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पय | पयसी | पयांसि |
| स० | हे पय | हे पयसी | हे पयांसि |
| द्वि० | पय | पयसी | पयांसि |
| तृ० | पयसा | पयोभ्याम् | पयोभि |
| च० | पयसे | पयोभ्याम् | पयोभ्य |
| प० | पयस | पयोभ्याम् | पयोभ्य |
| ष० | पयस | पयसो | पयसाम् |
| स० | पयसि | पयसो | पयस्सु, पयःसु |

अम्भस् (पानी), नभस् (आकास), आगस् (पाप), उरस् (छाती), मनस् (मन), वयस् (उम्र), रजस् (धूल), वक्षस् (छाती), तमस् (अँधेरा), अयस् (लोहा), वचस् (वचन, बात), यशस् (यश, कीर्ति), सरस् (तालाब), तपस् (तपस्या), शिरस् (शिर) इत्यादि सभी असन्त नपुमकलिङ्ग शब्दो के रूप पयस् के समान होते हैं।

### नपु० हविस्—होम की वस्तु

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हवि. | हविषी | हवींषि |
| स० | हे हवि | हे हविषी | हे हवींषि |
| द्वि० | हवि | हविषी | हवींषि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | हविषा | हविर्भ्याम् | हविर्भि |
| च० | हविषे | हविर्भ्याम् | हविर्भ्य |
| प० | हविष | हविर्भ्याम् | हविर्भ्य |
| ष० | हविष | हविषो | हविषाम् |
| स० | हविषि | हविषो | हविष्षु, हवि·षु |

सभी 'इस्' मे अन्त होने वाले नपुसकलिङ्ग शब्दो के रूप हविस् की तरह होते हैं।

**नपु० चक्षुस्—आँख**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | चक्षु | चक्षुषी | चक्षूषि |
| सं० | हे चक्षु | हे चक्षुषी | हे चक्षूषि |
| द्वि० | चक्षु | चक्षुषी | चक्षूषि |
| तृ० | चक्षुषा | चक्षुर्भ्याम् | चक्षुर्भि |
| च० | चक्षुषे | चक्षुर्भ्याम् | चक्षुर्भ्य |
| प० | चक्षुष | चक्षुर्भ्याम् | चक्षुर्भ्य |
| ष० | चक्षुष | चक्षुषो | चक्षुषाम् |
| स० | चक्षुषि | चक्षुषो | चक्षुष्षु, चक्षु·षु |

धनुस् (धनुष), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजुर्वेद) इत्यादि सब 'उस्' मे अन्त होने वाले नपुसकलिङ्ग शब्दो के रूप चक्षुस् के समान होते हैं।

## ७२—हकारान्त शब्द

**पु० मधुलिह्—शहद की मक्खी, भौंरा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मधुलिट्, मधुलिड् | मधुलिहौ | मधुलिह |
| स० | हे मधुलिट्, हे मधुलिड् | हे मधुलिहौ | हे मधुलिह |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| द्वि० | मधुलिहम् | मधुलिहौ | मधुलिह |
| तृ० | मधुलिहा | मधुलिड्भ्याम् | मधुलिड्भि |
| च० | मधुलिहे | मधुलिड्भ्याम् | मधुलिड्भ्य |
| प० | मधुलिह | मधुलिड्भ्याम् | मधुलिड्भ्य |
| ष० | मधुलिह | मधुलिहो | मधुलिहाम् |
| स० | मधुलिहि | मधुलिहो | मधुलिट्त्सु, मधुलिट्सु |

### पु० अनडुह्—बैल

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अनड्वान् | अनड्वाहौ | अनड्वाह |
| स० | हे अनड्वन् | हे अनड्वाहौ | हे अनड्वाह |
| द्वि० | अनड्वाहम् | अनड्वाहौ | अनडुह |
| तृ० | अनडुहा | अनडुद्भ्याम् | अनडुद्भि |
| च० | अनडुहे | अनडुद्भ्याम् | अनडुद्भ्य |
| प० | अनडुह | अनडुद्भ्योम् | अनडुद्भ्य |
| ष० | अनडुह | अनडुहो | अनडुहाम् |
| स० | अनडुहि | अनडुहो | अनडुत्सु |

### स्त्री० उपानह्—जूता

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उपानत्, उपानद् | उपानहौ | उपानह |
| स० | हे उपानत्<br>हे उपानद् | हे उपानहौ | हे उपानह |
| द्वि० | उपानहम् | उपानहौ | उपानह |
| तृ० | उपानहा | उपानद्भ्याम् | उपानद्भि |
| च० | उपानहे | उपानद्भ्याम् | उपानद्भ्य |
| प० | उपानह | उपानद्भ्याम् | उपानद्भ्य |
| ष० | उपानह | उपानहो | उपानहाम् |
| स० | उपानहि | उपानहो | उपानत्सु |

# चतुर्थ सोपान

## सर्वनाम-विचार

७३—हिन्दी मे 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी सज्ञा के स्थान मे आया हुआ शब्द' है और यही अर्थ अंग्रेजी के 'प्रोनाउन' शब्द का भी है। किन्तु सस्कृत मे सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५ शब्दो[1] का बोध होता है जो 'सर्व' शब्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्राय एक से चलते हैं।

द्वद्व[2] समास को छोडकर यदि अन्य किसी समास के अन्त मे ये सर्व इत्यादि सर्वनाम शब्द हो तो उनकी भी सर्वनाम ही सज्ञा होती है।

---

१ सर्वादीनि सर्वनामानि ।१।१।२७।

"सर्वादि" मे निम्नलिखित ३५ शब्द हैं—

१—सर्व, २—विश्व, ३—उभ, ४—उभय, ५—डतर अर्थात् डतर प्रत्ययान्त शब्द यथा कतर, यतर इत्यादि। ६—डतम अर्थात् डतम प्रत्ययान्त शब्द यथा कतम, यतम इत्यादि। ७—अन्य, ८—अन्यतर, ९—इतर, १०—त्वत्, ११—त्व, १२—नेम, १३—सम, १४—सिम, १५—पूर्व, १६—पर, १७—अवर, १८—दक्षिण, १९—उत्तर, २०—अपर, २१—अधर, २२—स्व, २३—अन्तर, २४—त्यद्, २५—तद्, २६—यद्, २७—एतद्, २८—इदम्, २९—अदस्, ३०—एक, ३१—द्वि, ३२—युष्मद्, ३३—अस्मद्, ३४—भवत्, ३५—किम्। इनमे 'त्वत्' और 'त्व' दोनो ही 'अन्य' के पर्याय हैं। 'नेम' अर्ध का और 'सम' सर्व का पर्याय है। 'सम' तुल्य का पर्याय होने पर सर्वनाम नही होगा। उस अवस्था मे उसका रूप नर के समान होगा जैसा पाणिनि के 'यथासख्यमनुदेश समानाम्' इस सूत्र से स्पष्ट है। 'सिम' सम्पूर्ण का पर्याय है। 'स्व' भी निज का वाचक होने पर ही सर्वनाम होता है, 'जाति वाले व्यक्ति' या 'धन' का वाचक होने पर नही (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।१।१।३५।)

२ तदन्तस्यापि इय सज्ञा। द्वन्द्वे चेति ज्ञापकात्। तेन परमसर्वत्रेति अल् परमभवकानित्यत्राकच्च सिध्यति। पूर्व उद्धृत् सूत्र ।१।१।२७। पर भट्टोजि की वृत्ति।

किसी[1] के नाम होने पर तथा समास मे गौण स्थानभागी होने पर इन शब्दो की सर्वनाम सज्ञा नही होती।

(१) इन सर्वनामो मे कुछ तो उस अर्थ मे सवनाम है जिस अर्थ मे हिन्दी मे सर्वनाम शब्द आता है।

(२) कुछ विशेषण हैं और

(३) कुछ सख्यावाची शब्द है।

इस परिच्छेद मे केवल प्रथम श्रेणी के शब्दो पर विचार किया जायगा।

७४—उत्तमपुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप तीनो लिङ्गो मे इस प्रकार चलते हैं—

## अस्मद्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अहम् | आवाम् | वयम् |
| द्वि० | माम्, मा | आवाम्, नौ | अस्मान्, न |
| तृ० | मया | आवाभ्याम् | अस्माभि |
| च० | मह्यम्, मे | आवाभ्याम्, नौ | अस्मभ्यम्, न |
| प० | मत् | आवाभ्याम् | अस्मत् |
| ष० | मम, मे | आवयो , नौ | अस्माकम्, न |
| स० | मयि | आवयो | अस्मासु |

(क) इनमे से 'मा नौ न, मे नौ न, मे नौ न' वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग मे नही लाये जा सकते। वाक्य के आरम्भ मे, पद्य के चरण के आदि मे, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययो के साथ तथा सम्बोधन शब्द (हरे बालक! आदि) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है। किन्तु यदि सम्बोधन पद का विशेषण भी सम्बोधन रूप से प्रयुक्त हो तो इसका प्रयोग होता है। "मे गृहम्" कहना सस्कृतव्याकरण के अनुसार निषिद्ध है, क्योकि 'मे' वाक्य के आरम्भ मे है इत्यादि।

---

१ सज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादय (वा०)

(ख) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नही बदलते। वक्ता चाहे पुरुष हो या स्त्री, अपने लिए 'अहम्' का ही प्रयोग करेगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियो मे भी समझना चाहिए।

७५—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप तीनो लिङ्गो मे इस प्रकार होते हैं—

### युष्मद्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | त्वम् | युवाम् | यूयम् |
| द्वि० | त्वाम्, त्वा | युवाम्, वाम् | युष्मान्, व |
| तृ० | त्वया | युवाभ्याम् | युष्माभि |
| च० | तुभ्यम्, ते | युवाभ्याम्, वाम् | युष्मभ्यम्, व |
| प० | त्वत् | युवाभ्याम् | युष्मत् |
| ष० | तव, ते | युवयो , वाम् | युष्माकम्, व |
| स० | त्वयि | युवयो | युष्मासु |

ऊपर—७४ (क) मे उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक (त्वा वाम् व, ते वाम् व, ते वाम् व) रूपो पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ७४ (ख) नियम भी यहाँ लागू है।

**नोट—** मा नौ न, मे नौ न, मे नौ न,
त्वा वा व, ते वा व, ते वा व,

इनके प्रयोगो को दिखाने के लिए दो श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्ता ते मेऽपि शर्म स ।
स्वामी ते मेऽपि स हरि पातु वामपि नौ विभु ।।
सुख वा नौ ददात्वीश पतिर्वामपि नौ हरि ।
सुखऽव्याद्वो न शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र व स न ।।

युष्मद्[1] और अस्मद् शब्दो की प्रथमा, द्वितीया तथा चतुर्थी मे सभी वचनों में अम् आदेश होता है।

---

१ ङेप्रथमयोरम् ।७।१।२८।

प्रथमा[१] विभक्ति 'सु' के जुडने पर (एकवचन) मे युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर 'व' और 'अह' आदेश होते हैं एव 'टि' का लोप होकर 'त्व' और 'अह' रूप बनते हैं।

इसी[२] प्रकार प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन मे युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर युव और आव का आदेश होता है तथा दोनो के अन्तिम अ का दीर्घ हो जाता है।

जस्[३] प्रत्यय के जुडने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर यूय और वय आदेश होते हैं।

अन्य[४] विभक्तियो के एकवचन मे युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म स्थानो पर त्व और म आदेश होते हैं।

द्वितीया[५] विभक्ति मे त्व और म का अकार दीर्घ हो जाता है।

द्वितीया[६] बहुवचन के प्रत्यय को अम् आदेश न होकर 'न्' आदेश होता है और युष्म और अस्म के अ का दीर्घ हो जाता है।

जहा[७] युष्मद् और अस्मद् को कोई दूसरा आदेश न हुआ हो और व्यजन से आरम्भ होने वाली विभक्ति आगे जुडती हो वहाँ युष्मद् और अस्मद् के अद् के स्थान पर आकार हो जाता है।

ङे के[८] जुडने पर क्रमश तुभ्य और मह्य आदेश होते है।

ङसि[९] और भ्यस् को अत् आदेश होता है।

१ त्वाहौ सौ ।७।२।६४।

२ युवावौ द्विवचने ।७।२।६२।

३ यूयवयौ ।७।२।६३।

४ त्वमावेकवचने ।७।२।६७।

५ द्वितीयाया च ।७।२।८७।

६ शसो न ।७।१।२६।

७ युष्मदस्मदीरनादेशे ।७।२।८६।

८ तुभ्यमह्यौ ङयि ।७।२।६५।

९ एकवचनस्य च। पञ्चम्या अत् ।७।१।३२-३१।

युष्मद्[1] और अस्मद् की षष्ठी के एकवचन मे तव और मम आदेश होते हैं।

युष्मद्[2] और अस्मद् की षष्ठी के बहुवचन को आकम् आदेश होता है।

७६—सस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। इसके रूप तीनो लिङ्गो और तीनो वचनो मे चलते हैं और क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य-पुरुषवाची है। यथा—भवान् आगच्छतु, न कि भवान् आगच्छ। पुल्लिङ्ग मे इसके रूप श्रीमत् (देखिए ६१ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप) के समान भवान् भवन्तौ भवन्त इत्यादि चलते हैं, नपुसकलिङ्ग मे जगत् (देखिए ६१ ग) के समान 'भवत्, भवती, भवन्ति' आदि होते हैं। स्त्रीलिङ्ग मे यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है और नदी (देखिए ५४) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्य आदि इसके रूप होते हैं।

(क) भवत् के पूव कभी-कभी 'अत्र' शब्द जोड कर 'अत्रभवत्' और तत्रभवत्' शब्द होते हैं। इन शब्दो के रूप भी ठीक भवत् के समान चलते हैं, केवल अर्थ मे थोडा भेद है। 'अत्रभवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध मे होता है और 'तत्रभवत्' का प्रयोग दूरवर्ती तथा परोक्षवर्ती के सम्बन्ध मे, यथा—अत्रभवान् आचार्य अस्मान् आज्ञापयति, तत्रभवान् कालिदास प्रख्यात कविरासीत्—इत्यादि। यहा अत्र और तत्र मे वही विभक्ति समझनी चाहिए, जो भवत् मे लगी है। यह त्रल् प्रत्यय उसी विभक्ति के अर्थ मे इदम् और तद् से सयुक्त हुआ है। इस प्रकार अत्र भवत का अर्थ है इम भवन्त तथा तत्र भवताम् का तेषा भवताम्।

७७—'यह' शब्द के लिए सस्कृत मे दो शब्द है—'इदम्' और 'एतद्'। इसी प्रकार 'वह' के लिए भी दो शब्द है—'तद्' और 'अदस्'। इनके प्रयोग मे कुछ भेद है। वह इस प्रकार है—

इदमस्तु सन्निकृष्ट समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्ट तदिति परोक्षे विजानीयात ।।

---

१ तवममौ ङसि।७।२।९६।

२ साम आकम्।७।१।३३।

अर्थात् 'इदम्' शब्द के रूपो का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो, यदि किसी बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपो का प्रयोग करना चाहिए और यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'अदस्' शब्द के रूपो को काम मे लाना चाहिए। 'तद्' शब्द के रूपो का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओ के विषय मे करना चाहिए जो सामने नही है--परोक्ष है। उदाहरणाथ, यदि मेरे पास दो पुरुष बैठे है तो मुझसे जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय मे 'एतद्' शब्द और जो जरा दूर है, उसके विषय मे 'इदम्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष दूर खडा है और उसके विषय मे कोई बात कहनी है तो 'अदस्' शब्द का प्रयोग करेगे। 'तद्' शब्द का प्रयोग ऐसे लोगो के विषय मे होगा, जो इस समय दृष्टिगोचर नही है। इन चारो शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो मे चलते है जो नीचे दिखाये जाते है--

इदम् और एतद् के रूपो को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी है--इदम् के (पु०) एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयो, एनयो, (नपु०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयो, एनयो और (स्त्री०) एनाम्, एने, एना, एनया, एनयो, एनयो। एतद् के भी ये ही रूप है। जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपो मे से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और जब फिर उसी वस्तु के विषय मे कुछ और बात कहनी रहती है तब इन विशेष रूपो का प्रयोग हो सकता है। इसके लिए इस प्रकार नियम है --

इदम्[1] और एतद् को द्वितीया मे, तृतीया एकवचन मे तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन मे 'एन' आदेश हो जाता है और ऐसा अन्वादेश मे ही होता है। एक बार कही हुई वस्तु का कार्यान्तर के लिए पुनरुल्लेख करना अन्वादेश कहलाता है, जैसे--

एतद् वस्त्र सुष्ठु धावय मैनत् पाटय--इस कपडे को अच्छी तरह धोना, इसे फाड मत डालना।

---

१ द्वितीयाटौस्स्वेन ।२।४।३४। द्वितीयाया टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेश स्यादन्वादेशे। किञ्चित्कार्य विधातुमुपात्तस्य कार्यन्तर विधातु पुनरुपादानमन्वादेश । सि० कौ०

यहाँ उसी वस्त्र के लिए पहिले एतद् प्रयुक्त हुआ, बाद मे उसी के लिए एनत् आया।

एष पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्वाहय—यह पच्चीस वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब ब्याह कर दो।

यहाँ भी पहले 'एष' आया, तदनन्तर 'एनम्' आया।

## (क) इदम्—यह

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अयम् | इमौ | इमे |
| द्वि० | इमम्, एनम् | इमौ, एनौ | इमान्, एनान् |
| तृ० | अनेन, एनेन | आभ्याम् | एभि |
| च० | अस्मै | आभ्याम् | एभ्य |
| प० | अस्मात्, द् | आभ्याम् | एभ्य |
| ष० | अस्य | अनयो, एनयो | एषाम् |
| स० | अस्मिन् | अनयो, एनयो | एषु |

इदम्[1] 'शब्द' के 'इद्' का पुल्लिङ्ग मे अय् आदेश हो जाता है।

क[2] रहित इदम् शब्द के 'इद्' का तृतीया से सप्तमी तक 'अन्' हो जाता है। क-युक्त होने पर 'इमकेन' इत्यादि होगा। (आप् प्रत्याहार तृतीया से सप्तमी तक का बोधक है)।

क-रहित[3] इदम् और अदस् शब्द मे भिस् (तृतीया बहुवचन) के स्थान मे ऐस् (ऐ) नही होता। क-युक्त होने पर हो जाता है, यथा, इमकै।

यदि[4] इदम् के आगे तृतीया से सप्तमी तक की विभक्तियो की कोई ऐसी विभक्ति जुडे जो व्यजन से आरम्भ होती हो तो इदम् के 'इद्' का लोप हो

१ इदोऽय् पुसि ।७।२।१११।

२ अनाप्यक ।७।२।११२।

३ नेदमदसोरको ।७।१।११।

४ हलि लोप ।७।२।११३।

जायगा और शेष केवल अ बचेगा, क्योकि इदम् का म् तो पहिले से ही त्यदा-दीनाम ।७।२।१०२। से अ होकर इद के अ को भी अतोगुणे ।६।१।९७। मे अपने रूप मे मिला लेता है। इस प्रकार, अस्मै, आभ्याम्, अस्मात्, अस्मिन् इत्यादि पद सिद्ध होते हैं। आभ्याम् इत्यादि मे बालकाभ्याम् इत्यादि की भाँति दीर्घ हो जाता है।

नपुंसकलिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | इदम् | इमे | इमानि |
| द्वि० | इदम्, एनत् | इमे, एने | इमानि, एनानि |
| तृ० | अनेन, एनेन | आभ्याम् | एभि |
| च० | अस्मै | आभ्याम् | एभ्य |
| प० | अस्मात्, द् | आभ्याम् | एभ्य |
| ष० | अस्य | अनयो , एनयो | एषाम् |
| स० | अस्मिन् | अनयो , एनयो | एषु |

स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | इयम् | इमे | इमा |
| द्वि० | इमाम्, एनाम् | इमे, एने | इमा ,एना |
| तृ० | अनया, एनया | आभ्याम् | आभि |
| च० | अस्यै | आभ्याम् | आभ्य |
| प० | अस्या | आभ्याम् | आभ्य |
| ष० | अस्या | अनयो , एनयो | आसाम् |
| स० | अस्याम् | अनयो , एनयो | आसु |

## (ख) एतद्—यह

पुंल्लिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एष | एतौ | एते |
| द्वि० | एतम्, एनम् | एतौ, एनौ | एतान्, एनान् |
| तृ० | एतेन, एनेन | एताभ्याम् | एतैः |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| च० | एतस्मै | एताभ्याम् | एतेभ्य |
| प० | एतस्मात्, द् | एताभ्याम् | एतेभ्य· |
| ष० | एतस्य | एतयो , एनयो | एतेषाम् |
| स० | एतस्मिन् | एतयो , एनयो | एतेषु |

नपुंसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एतत्, द् | एते | एतानि |
| द्वि० | एतत्, द्<br>एनत्, द् | एते, एने | एतानि, एनानि |
| तृ० | एतेन, एनेन | एताभ्याम् | एतै |
| च० | •एतस्मै | एताभ्याम् | एतेभ्य· |
| प० | एतस्मात्, द् | एताभ्याम् | एतेभ्य |
| ष० | एतस्य | एतयो , एनयो | एतेषाम् |
| स० | एतस्मिन् | एतयो , एनयो | एतेषु |

स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एषा | एते | एता |
| द्वि० | एताम्, एनाम् | एते, एने | एता , एना |
| तृ० | एतया, एनया | एताभ्याम् | एताभि |
| च० | एतस्यै | एताभ्याम् | एताभ्य |
| प० | एतस्या | एताभ्याम् | एताभ्य |
| ष० | एतस्या | एतयो , एनयो | एतासाम् |
| स० | एतस्याम् | एतयो , एनयो | एतासु |

## (ग) तद्—वह

पुल्लिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स | तौ | ते |
| द्वि० | तम् | तौ | तान् |
| तृ० | तेन | ताभ्याम | तै |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| च० | तस्मै | ताभ्याम् | तेभ्य |
| प० | तस्मात् | ताभ्याम् | तेभ्य |
| ष० | तस्य | तयो | तेषाम् |
| स० | तस्मिन् | तयो | तेषु |

नपुसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | तत्, द् | ते | तानि |
| द्वि० | तत्, द् | ते | तानि |
| तृ० | तेन | ताभ्याम् | तै |
| च० | तस्मै | ताभ्याम् | तेभ्य |
| प० | तस्मात्, द् | ताभ्याम् | तेभ्य |
| ष० | तस्य | तयो | तेषाम् |
| स० | तस्मिन् | तयो | तेषु |

स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सा | ते | ता |
| द्वि० | ताम् | ते | ता |
| तृ० | तया | ताभ्याम् | ताभि |
| च० | तस्यै | ताभ्याम् | ताभ्य |
| प० | तस्या | ताभ्याम् | ताभ्य |
| ष० | तस्या | तयो | तासाम् |
| स० | तस्याम् | तयो | तासु |

त्यदादि[1] (त्यद्, तद्, एतद्, यद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि) सर्वनामो के बाद विभक्ति जुडने पर अन्तिम वर्ण के स्थान मे अ हो जाता है।

त्यद्[2] इत्यादि सर्वनाम शब्दो के आगे सु (प्रथमा एकवचन) विभक्ति जुडने पर त् तथा द् के स्थान मे स का आदेश हो जाता है। परन्तु अन्त वाले त् या द् के स्थान मे नही। इस प्रकार तद्+सु=स्+अ (।७।२।१०२। के

---

१ त्यदादीनाम ।७।२।१०२। (द्विपर्यन्तानामेवेष्टि)।

२ तदो स सावनन्त्ययो ।७।२।१०६।

अनुसार अन्तिम द् के स्थान मे हो जायगा।) +स्=स । इसी प्रकार एष इत्यादि भी बनेगा।

## (घ) अदस्—वह

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | असौ | अमू | अमी |
| द्वि० | अमुम् | अमू | अमून् |
| तृ० | अमुना | अमूभ्याम् | अमीभि |
| च० | अमुष्मै | अमूभ्याम् | अमीभ्य |
| प० | अमुष्मात्, द् | अमूभ्याम् | अमीभ्य |
| ष० | अमुष्य | अमूयो | अमीषाम् |
| स० | अमुष्मिन् | अमूयो | अमीषु |

### नपुंसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अद | अमू | अमूनि |
| द्वि० | अद | अमू | अमूनि |
| तृ० | अमुना | अमूभ्याम् | अमीभि |
| च० | अमुष्मै | अमूभ्याम् | अमीभ्य |
| प० | अमुष्मात्, द् | अमूभ्याम् | अमीभ्य |
| ष० | अमुष्य | अमुयो | अमीषाम् |
| स० | अमुष्मिन् | अमुयो | अमीषु |

### स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | असौ | अमू | अमू |
| द्वि० | अमुम् | अमू | अमू |
| तृ० | अमुया | अमूभ्याम् | अमूभि |
| च० | अमुष्यै | अमूभ्याम् | अमूभ्य |
| प० | अमुष्या | अमूभ्याम् | अमूभ्य |
| ष० | अमुष्या | अमुयो | अमूषाम् |
| स० | अमुष्याम् | अमुयो | अमूषु |

७८—सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए सस्कृत मे 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनो लिङ्गो मे भिन्न-भिन्न होते हैं जो नीचे दिये जाते है। इसके बाद के 'सो' शब्द के लिए 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं, यथा—

यो मद्भक्त स मे प्रिय —।

बुद्धिर्यस्य बल तस्य।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।

तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ॥

(जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मर कर ऐसे लोको मे पहुँचते हैं जो असुरो के हैं तथा जिनमे सदा अँधेरा रहता है।)

## यद्—जो

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | य | यौ | ये |
| द्वि० | यम् | यौ | यान् |
| तृ० | येन | याभ्याम् | यै |
| च० | यस्मै | याभ्याम् | येभ्य |
| प० | यस्मात्, द् | याभ्याम् | येभ्य |
| ष० | यस्य | ययो | येषाम् |
| स० | यस्मिन् | ययो | येषु |

### नपुसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | यत्, द् | ये | यानि |
| द्वि० | यत्, द् | ये | यानि |
| तृ० | येन | याभ्याम् | यै |
| च० | यस्मै | याभ्याम् | येभ्य |
| पं० | यस्मात्, | याभ्याम् | येभ्य |
| ष० | यस्य | ययो | येषाम् |
| स० | यस्मिन् | ययो | येषु |

स्त्रीलिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | या | ये | या |
| द्वि० | याम् | ये | या |
| तृ० | यया | याभ्याम् | याभि |
| च० | यस्यै | याभ्याम् | याभ्य |
| प० | यस्या | याभ्याम् | याभ्य |
| ष० | यस्या | ययो | यासाम् |
| स० | यस्याम् | ययो | यासु |

७६—प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन', 'क्या' के लिए संस्कृत मे 'किम्' शब्द है, इसके रूप तीनो लिङ्गो मे नीचे लिखे प्रकार से चलते है। उदाहरणार्थ, क आगत ? (कौन आया है ?), का आगता ? (कौन स्त्री आयी है ?), किमस्ति (क्या है ?) आदि इसके प्रयोग होते है।

(क) इसी शब्द के रूपो के साथ 'अपि', 'चित्' अथवा 'चन' जोड देने से हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामो का बोध होता है, यथा—

कोऽपि आगतोऽस्ति<br>कश्चिदागतोऽस्ति<br>कश्चनागतोऽस्ति } —कोई आया है।

काऽप्यागताऽस्ति<br>काचिदागताऽस्ति<br>काचन आगताऽस्ति } —कोई आयी है।

किमप्यस्ति<br>किञ्चिदस्ति<br>किञ्चनास्ति } —कुछ है।

## किम्—कौन

पुल्लिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | क | कौ | के |
| द्वि० | कम् | कौ | कान् |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| तृ० | केन | काभ्याम् | कै |
| च० | कस्मै | काभ्याम् | केभ्य |
| प० | कस्मात्, द् | काभ्याम् | केभ्य |
| ष० | कस्य | कयो | केषाम् |
| स० | कस्मिन् | कयो | केषु |

नपुसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | किम् | के | कानि |
| द्वि० | किम् | के | कानि |
| तृ० | केन | काभ्याम् | कै |
| च० | कस्मै | काभ्याम् | केभ्य |
| प० | कस्मात्, द् | काभ्याम् | केभ्य |
| ष० | कस्य | कयो | केषाम् |
| स० | कस्मिन् | कयो | केषु |

स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | का | के | का: |
| द्वि० | काम् | के | का |
| तृ० | कया | काभ्याम् | काभि |
| च० | कस्यै | काभ्याम् | काभ्य |
| प० | कस्या | काभ्याम् | काभ्य |
| ष० | कस्या | कयो | कासाम् |
| स० | कस्याम् | कयो | कासु |

८०—हिन्दी के निजवाचक सर्वनाम (Reflexive Pronoun) 'अपने आप', 'अपने को' आदि का अर्थ बोध कराने के लिए सस्कृत मे तीन शब्दों का प्रयोग होता है—(१) आत्मन्, (२) स्व, (३) स्वयम्। इस अर्थ का बोध कराने के लिए आत्मन् शब्द के रूप केवल पुल्लिङ्ग एकवचन मे चलते हैं और सभी लिङ्गो और वचनो मे निजवाचकता का अर्थ देते हैं, जैसे—

स आत्मान निन्दितवान्,
सा आत्मान निन्दितवती,
सर्वा राजकन्या आत्मान मुकुरे अद्राक्षु,
सा आत्मानमपराधिनममन्यत,
सा आत्मनि कमपि दोष नाद्राक्षीत,
तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम्, इत्यादि।

'स्व' शब्द के चार अर्थ होते है—नातेदार, धन, आत्मीय और अपने आप। इनमे से जब इसका[1] अथ 'आत्मीय' या 'अपने आप' होता है, तभी यह सर्वनाम होता है। तब इसके रूप सर्व शब्द (८८) के समान तीनो लिङ्गों मे अलग-अलग चलते है, केवल पुल्लिङ्ग प्रथमा बहुवचन तथा पचमी और सप्तमी के एकवचन मे बालक के समान भी रूप होते है—स्वे, स्वा, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन्। 'स्वयम्' शब्द अव्यय है। सब लिङ्गो और सब वचनो मे यह ऐसा ही प्रयोग मे आता है, यथा—

सा स्वयमपराध कृत्वा दोष मयि क्षिप्तवती। राजा स्वयमुत्कोच गृह्णाति मन्त्रिणा का कथा, इत्यादि।

(क) परस्परवाची सवनाम सस्कृत मे तीन होते है—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर। इनके रूप बालक के समान होते है, और एकवचन मे ये क्रिया-विशेषण के रूप म ही प्रयुक्त होते है।

परस्पर विवाद कृतवान्,
अन्योन्येन मिलितम्,
इतरेतरस्य सौभाग्य दूषयति।

८९—निश्चयवाचक सवनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए सर्वनाम के रूप के साथ 'एव' शब्द जोड कर सस्कृत मे निश्चय का बोध कराते है, यथा—

---

१ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।१।१।३५।

क आगत ? स एव पुन आगत ।
केनेद कृतम् ? तेनैव तु कृतम् इत्यादि ।

अनिश्चयात्मक ७९ (क) सर्वनामो को छोड कर ऊपर लिखे और सब सर्वनामो के साथ इस प्रकार 'एव' जोड कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट किया जा सकता है ।

# पञ्चम सोपान

## विशेषण-विचार

८२—हिन्दी मे कभी-कभी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है (जैसे, अच्छा लडका, अच्छे लडके, अच्छी लडकी, अच्छी लडकियाँ), किन्तु बहुधा नही बदलता (जसे, लाल घोडा, लाल घोडी, लाल घोडे, लाल घोडियाँ)। सस्कृत मे विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है। जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग, उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है। यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यो के साथ भी विशेषण बदलता है, जो लिङ्ग के लिए भिन्न रूप नही रखते, किन्तु जिनका प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है, यथा हिन्दी मे 'मै सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद सस्कृत मे 'अह सुन्दरोऽस्मि' और 'अह सुन्दरी अस्मि'—इन दोनो वाक्यो से होगा। यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग मे आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य। हिन्दी मे विशेषणो के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग (का, मे आदि) नही लगाये जाते जैसे—'पढे-लिखे मनुष्यो का आदर होता है'—इस वाक्य मे 'का' परसर्ग केवल 'मनुष्यो' के पश्चात् लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े-लिखे' के पश्चात् नही। परन्तु सस्कृत मे विशेषण और विशेष्य दोनो मे विभक्तियाँ लगती हैं। ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा—शिक्षितानां मनुष्याणामादर क्रियते (अथवा भवति)। इस प्रकार सज्ञा की तरह सस्कृत मे विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। कुछ सख्यावाची विशेषण, शत, विशति, त्रिशत् आदि जिनके लिङ्ग नियत हैं और वचन

भी विशेष अर्थ मे ही बदलते हैं, विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नही बदल सकते, किन्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही है। (विशेष-विशेष स्थलो पर इसका विस्तृत वर्णन किया गया है)।

अधिकतर विशेषणो के रूप सज्ञाओ के समान ही होते है, जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के पुल्लिङ्ग मे अकारान्त बालक के समान और नपुसकलिङ्ग मे अकारान्त फल के समान रूप होते है। इसी प्रकार ईकारान्त विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के समान होते है। थोडे से विशेषण ऐसे भी है, जिनके रूप भिन्न होते है, उनका विचार इस परिच्छेद मे किया गया है।

८३—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामो मे से इदम्, एतद्, तद्, अदस् (७७), यद् (७८), किम् (७६) तथा अनिश्चयवाचक (७६ क) और निश्चयवाचक (८१) सर्वनाम, सभी का प्रयोग विशेषण के रूप मे भी होता है, जैसे, अय पुरुष, एषा नारी, एतच्छरीर, ते भृत्या, अमी जना, यो विद्यार्थी, का नारी, कस्मिश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

८४—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्ध-सूचक भाव दिखाने के लिए सस्कृत मे दो उपाय हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद्, आदि की षष्ठी विभक्ति के रूपो का प्रयोग करना, जैसे मम पुस्तक, तवाश्व, अस्य प्रबन्ध इत्यादि, दूसरे इन शब्दो मे कुछ प्रत्यय जोड कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणो के अनुसार प्रयोग मे लाना। ये विशेषण छ, अण् तथा खञ् प्रत्ययो को जोडकर बनाये जाते हैं।

युष्मद्[1] और अस्मद् मे विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय भी लगते हैं।

छ को ईय आदेश होता है। छ प्रत्यय जुडने पर अस्मद् के स्थान मे (ए० व० मे) मत् और (ब० व० मे) अस्मत् तथा युष्मद् के स्थान मे (ए० व० मे) त्वत् और (ब० व० मे) युष्मद् हो जाते हैं।

---

१ युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ्च ।४।३।१।

छ और खञ् प्रत्यय के अतिरिक्त युष्मद् और अस्मद् मे अण् भी जुडता है। खञ् और अण् लगने पर अस्मद् और युष्मद् के स्थान मे एकवचन[1] मे ममक और तवक और बहुवचन[2] मे अस्माक और युष्माक आदेश होते है। खञ् का ईन हो जाता है।

**अस्मद् शब्द से बने हुए विशेषण**

१—छ प्रत्यय जोडकर—मदीय (मेरा) और अस्मदीय (हमारा)
२—अण् प्रत्यय जोडकर—मामक ( " ) और आस्माक ( " )
३—खञ प्रत्यय जोडकर—मामकीन ( " ) और आस्माकीना ( " )

**स्त्रीलिङ्ग**

१—छ प्रत्यय जोडकर—मदीया (मेरी) अस्मदीया (हमारी)
२—अण् प्रत्यय जोडकर—मामकी ( " ) आस्माकी ( " )
३—खञ् प्रत्यय जोडकर—मामकीना ( " ) आस्माकीना ( " )

**युष्मद् शब्द से बने हुए विशेषण**

**पुल्लिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग**

१—छ प्रत्यय जोडकर—त्वदीय (तेरा) युष्मदीय (तुम्हारा)
२—अण् प्रत्यय जोडकर—तावक ( " ) यौष्माक ( " )
३—खञ् प्रत्यय जोडकर—तावकीन ( " ) यौष्माकीण ( " )

**स्त्रीलिङ्ग**

१—छ प्रत्यय जोडकर—त्वदीया (तेरी) युष्मदीया (तुम्हारी)
२—अण् प्रत्यय जोडकर—तावकी ( " ) यौष्माकी ( " )
३—खञ् प्रत्यय जोडकर—तावकीना ( " ) यौष्माकीणा ( " )

(ग) तद् शब्द से—

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| तदीय (उसका) | तदीया (उसकी) |

(घ) एतद् शब्द से—

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| एतदीय (इसका) | एतदीया (इसकी) |

---

१ तवकममकावेकवचने ।४।३।३।

२ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।२।

(च) यद् शब्द से—

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| यदीय (जिसका) | यदीया (जिसकी) |

इनमे जो अकारान्त हैं उनके बालक (पु०) तथा फल (नपु०) के समान, और जो आकारान्त व ईकारान्त हैं उनके विद्या और नदी के समान सब विभक्तियो और वचनो मे रूप चलते हैं। अन्य विशेषणो की तरह इनके भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं, यथा—

त्वदीयानामश्वाना युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता।

यदीया सम्पत्ति तदीय स्वत्वम्।

अस्मद्, युष्मद्, इदम् आदि की षष्ठी के रूपो के विषय मे यह नियम नही लगता, वे विशेष्य के अनुसार नही बदलते, यथा—मम अश्व , तव गृहम्, अस्य लिपि इत्यादि।

८५—'ऐसा, जैसा' आदि शब्दो द्वारा बोधित 'प्रकार' के अर्थ के लिए सस्कृत मे तद्, अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दो मे प्रत्यय जोडकर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते है। अन्य विशेषणो की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते है। ये शब्द नीचे लिखे है—

(क) **अस्मद् शब्द से**

**पुल्लिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—क्विन् जोडकर—मादृश् | (मुझ सा) | अस्मादृश | (हमारा सा) |
| २—कञ्* जोडकर—मादृश | (") | अस्मादृश | (") |

**स्त्रीलिङ्ग**

| | |
|---|---|
| मादृशी (मुझ सी) | अस्मादृशी (हमारी सी) |

---

*त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ।३।२।६०। अर्थात् यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद् इत्यादि शब्दो के आगे दृश् धातु हो और उसका देखना अर्थ न हो, तो कञ् और क्विन् प्रत्यय विकल्प से जुडते हैं। 'क्सोऽपि वाच्य ' इस वार्त्तिक के द्वारा इसी अर्थ मे दृश् धातु के आगे क्स भी लगता है, जैसे अस्मादृक्ष, तादृक्ष, ईदृक्ष, सदृक्ष इत्यादि। 'आ सर्वनाम्न ' ।६।३।६१। इस नियम के अनुसार त्वत्, अस्मत्, मत्, तत् इत्यादि के अन्त मे आकार आदेश होता है।

(ख) युष्मद् शब्द से

**पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग**

१—क्विन् जोडकर—त्वादृश् (तुझ सा) युष्मादृश् (तुम्हारा सा)
२—कञ् जोडकर—त्वादृश् ( " ) युष्मादृश् ( " )

**स्त्रीलिङ्ग**

त्वादृशी (तुझ सी) युष्मादृशी (तुम्हारी सी)

(ग) तद् शब्द से

| **पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग** | **स्त्रीलिङ्ग** |
|---|---|
| तादृश् (वैसा, तैसा) | तादृशी (वैसी, तैसी) |
| तादृश ( " " ) | |

(घ) इदम् शब्द से

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| ईदृश् (ऐसा) | ईदृशी (ऐसी) |
| ईदृश ( " ) | |

(च) एतद् शब्द से

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| एतादृश् (ऐसा) | एतादृशी (ऐसी) |
| एतादृश ( " ) | |

(छ) यद् शब्द से

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| यादृश् (जैसा) | यादृशी (जैसी) |
| यादृश ( " ) | |

(ज) किम् शब्द से

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| कीदृश् (कैसा) | कीदृशी (कैसी) |
| कीदृश (") | |

(झ) भवत् शब्द से

| **पु० तथा नपु०** | **स्त्री०** |
|---|---|
| भवादृश् (आप सा) | भवादृशी (आप सी) |
| भवादृश (") | |

इनमे शकारान्त के रूप शकारान्त पुल्लिङ्ग अथवा नपुसकलिङ्ग सज्ञाओ के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त सज्ञा (नदी) के अनुसार चलते है। जैसा ऊपर कह चुके है, उनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते है।

८६—परिमाणसूचक 'जितना, उतना, कितना' आदि शब्दो का अर्थ दिखाने के लिए सस्कृत मे इदम् आदि शब्दो से विशेषण बनते है। वे इस प्रकार है। इनमे तकारान्त शब्दो के रूप पुल्लिङ्ग मे तकारान्त श्रीमत् (६१) तथा नपुसकलिङ्ग मे जगत् (६१ ग) के अनुसार चलते है और ईकारान्त शब्दो के नदी के समान।

यद्[1], तद्, एतद् इत्यादि शब्दो मे परिमाण का अर्थ प्रकट करने के लिए वतुप् जोडा जाता है, जैसे, यद्+वतुप्=यावत्, इसी प्रकार तावत्, एतावत् इत्यादि। 'आ सर्वनाम्न ', इस सूत्र से यद्, तद्, एतद् इत्यादि का क्रमश आकार अन्तादेश होकर उसके रूप या, ता, एता हो जाते है।

(क) यद् शब्द से
यावत् (जितना) यावती (जितनी)

(ख) तद् शब्द से
तावत् (उतना) तावती (उतनी)

(ग) एतद् शब्द से
एतावत् (इतना) एतावती (इतनी)

किम्[2] तथा इदम् शब्दो मे भी वतुप् जुडता है और वतुप् का 'व' घ य मे परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार कियत् और इयत् बनते है।

(घ) किम् शब्द से
कियत् (कितना) कियती (कितनी)

(ङ) इदम् शब्द
इयत् (इतना) इयती (इतनी)

---

१ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् ।५।२।३९।

२ किमिदम्या वो घ ।५।२।४०।

परिमाण के अर्थ मे इन शब्दो का प्रयोग प्राय॰ केवल एकवचन मे ही होता है, यथा—

कियानध्वाऽधुनावशिष्ट ?
तावानेव यावान् भवता लङ्घित ।
तेन कियती सम्पत्ति॰ गुरवे समर्पिता ?
तावती यावती गुरुणा याचिता।
सख्यासूचक होने पर तो सभी वचनो का प्रयोग होता है।

८७—सख्यासूचक 'इतने, कितने' आदि शब्दो का अर्थ दिखाने के लिए सस्कृत मे दो उपाय हैं—

(१) ऊपर ८६ के शब्दो को बहुवचन मे प्रयोग करना, इस दशा मे विशेष्य के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमे भी परिवर्तन होगा, यथा—

कियन्त॰ पुरुषा आगता, कियत्य स्त्रिय ?
तावन्त पुरुषा यावन्त त्व आगता, तावत्य एव स्त्रिय इत्यादि।

किम्[1] शब्द से सख्या-परिमाण अर्थ मे एक और प्रत्यय लगता है डति, जिससे रूप बनता है कति।

जब किसी वस्तु की निश्चित सख्या के विषय मे प्रश्न करना अभीष्ट हो, तब किम् मे यह 'डति' प्रत्यय लगता है। सूत्र मे 'च' रखने का प्रयोजन यह है कि 'डति' के अतिरिक्त इसी अर्थ मे 'वतुप्' भी लगता है। इसी कारण कियत् इत्यादि की सख्या के अर्थ मे भी प्रयोग सम्भव होता है।

कति शब्द सब लिङ्गो मे प्रयुक्त होता है, नित्य बहुवचन होता है और इसके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्ति मे एक-से तथा अविकृत-से रहते हैं, शेष विभक्तियों मे भिन्न होते हैं—

---

१ किम सख्यापरिमाणे डति च ।५।२४।१। सख्याया परिमाण परिच्छेद तस्मिन् कर्त्तव्य य प्रश्नस्तस्मिन् वर्तमानात्किम् प्रथमासामर्थ्यादस्यति षष्ठ्यर्थे डति स्यात्। तत्त्वबोधिनी।

| | बहुवचन |
|---|---|
| प्र० | कति |
| द्वि० | " |
| तृ० | कतिभि |
| च० | कतिभ्य |
| प० | " |
| ष० | कतीनाम् |
| स० | कतिषु |

८८—'सर्व' शब्द के रूप तीनो लिङ्गो मे चलते है और इस प्रकार होते हैं—

## सर्व—सब

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सर्व | सर्वौ | सर्वे[1] |
| द्वि० | सर्वम् | सर्वौ | सर्वान् |
| तृ० | सर्वेण | सर्वाभ्याम् | सर्वै |
| च० | सर्वस्मै[2] | सर्वाभ्याम् | सर्वेभ्य |
| प० | सर्वस्मात्, द्[3] | सर्वाभ्याम् | सर्वेभ्य |
| ष० | सर्वस्य | सर्वयो | सर्वेषाम्[4] |
| स० | सर्वस्मिन् | सर्वयो | सर्वेषु |

सर्व इत्यादि अकारान्त सर्वनाम शब्दो के जस् (अर्थात् प्रथमा बहुवचन) को 'ई' आदेश हो जाता है। इस प्रकार सर्व+जस्=सर्व+ई=सर्वे।

अकारान्त सर्वनाम शब्दो के चतुर्थी एकवचन के प्रत्यय ङे को स्मै आदेश हो जाता है।

---

१ जस शी ।७।१।१७।

२ सर्वनाम्न. स्मै ।७।१।१४।

३ ङसिङ्यो स्मात्स्मिनौ ।७।७।११५।

४ आमि सर्वनाम्न सुट् ।७।१।५२।

अकारान्त सर्वनाम शब्दो की पचमी तथा सप्तमी के एकवचन मे ङसि और ङि के स्थान मे क्रमश स्मात् और स्मिन् हो जाता है।

आम् (षष्ठी बहुवचन) को स् का आगम हो जाता है। इस प्रकार सर्व+आम्=सर्व+स्+आम्=सर्वेषाम्।

**नपुसकलिङ्ग**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | सर्वम् | सर्वे | सर्वाणि |
| द्वि० | सर्वम् | सर्वे | सर्वाणि |

आगे पुलिङ्ग के समान रूप होते हैं।

**स्त्रीलिङ्ग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सर्वा | सर्वे | सर्वा |
| द्वि० | सर्वाम् | सर्वे | सर्वा |
| तृ० | सर्वया | सर्वाभ्याम् | सर्वाभि |
| च० | सवस्यै | सर्वाभ्याम् | सर्वाभ्य |
| प० | सर्वस्या | सर्वाभ्याम् | सर्वाभ्य |
| ष० | सर्वस्या | सर्वयो | सर्वासाम् |
| स० | सर्वस्याम् | सर्वयो | सर्वासु |

सर्व शब्द के द्विवचन के रूप प्राय प्रयोग मे नही मिलते, किन्तु यदि किन्हीं दो वस्तुओ के साथ सबका अर्थ लाना हो तो द्विवचन का प्रयोग कर सकते हैं।

**८९**—परिमाणवाची[1] अल्प (थोडा), अर्ध (आधा), नेम (आधा) तथा सम (बराबर) तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग रूप रखते हैं—पुल्लिङ्ग मे बालक के समान, नपुसकलिङ्ग मे फल के समान और स्त्रीलिङ्ग मे विद्या के समान। केवल अल्प, अर्ध और नेम के पुल्लिङ्ग मे प्रथमा के बहुवचन मे दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पा, अर्धे अर्धा, नेमे नेमा।

(क) पूरकसख्यावाची 'प्रथम' और 'चरम' शब्द के रूप भी तीनो लिङ्गो

---

१ प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च ।१।१।३३। एते जस कार्यं प्रत्युक्तसज्ञा वा स्यु । सि० कौ०।

मे चलते है, जैसे परिमाणवाची 'अल्प' आदि के। इनके भी पुल्लिङ्ग प्रथमा के बहुवचन मे दो रूप होते है—प्रथमे प्रथमा, चरमे चरमा।

(ख) सख्यावाची 'कतिपय' (कुछ) शब्द के रूपो के विषय मे भी ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है, यथा—कतिपये, कतिपया।

(ग) 'तीय'[1] प्रत्ययान्त 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दो की केवल ङित्[2] (ङे, ङसि, ङस् तथा ङि) विभक्तियो मे विकल्प से सर्वनाम सज्ञा मानी जाती है। शेष मे इनके रूप बालक की भाँति होते हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग मे दिये जाते हैं—

## द्वितीयः

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | द्वितीय | द्वितीयौ | द्वितीया |
| द्वि० | द्वितीयम् | द्वितीयौ | द्वितीयान् |
| तृ० | द्वितीयेन | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयै |
| च० | द्वितीयस्मै<br>द्वितीयाय | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयेभ्य |
| प० | द्वितीयस्मात्, द्<br>द्वितीयात्, द् | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयेभ्य |
| ष० | द्वितीयस्य | द्वितीययो | द्वितीयानाम् |
| स० | द्वितीयस्मिन्<br>द्वितीये | द्वितीययो | द्वितीयेषु |

१ द्वस्तीय ।५।२।५४। यह सूत्र 'तस्य पूरणे डट्' ।५।२।४८। का अपवाद है। द्वि के साथ पूरणी सख्या के अर्थ में तीय प्रत्यय लगता है। इस प्रकार 'द्वयो पूरण' इस अर्थ में 'द्वितीय' शब्द बना। 'त्रे सम्प्रसारण च' ।५।२।५५। सूत्र से त्रि शब्द मे भी 'तीय' प्रत्यय लगता है और त्रि के रेफ का ऋकार हो जाता है। इस प्रकार '[illegible]' बनता है।

२ विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसख्यानम् (वा०)

स्त्रीलिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | द्वितीया | द्वितीये | द्वितीया |
| द्वि० | द्वितीयाम् | द्वितीये | द्वितीया |
| तृ० | द्वितीयया | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयाभि |
| च० | { द्वितीयस्यै<br>द्वितीयायै | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयाभ्य |
| प० | { द्वितीयस्या<br>द्वितीयाया | द्वितीयाभ्याम् | द्वितीयाभ्य |
| ष० | { द्वितीयस्या<br>द्वितीयाया | द्वितीययो | द्वितीयानाम् |
| स० | { द्वितीयस्याम्<br>द्वितीयायाम् | द्वितीययो | द्वितीयासु |

६०—उभ (दोनो) शब्द के रूप केवल द्विवचन मे होते हैं और तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग। विशेष्य के अनुसार इसकी विभक्तियाँ होती हैं और लिङ्ग भी।

| | पुल्लिङ्ग | नपुसकलिङ्ग | स्त्रीलिङ्ग |
|---|---|---|---|
| प्र० | उभौ | उभे | उभे |
| द्वि० | उभौ | उभे | उभे |
| तृ० | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् |
| च० | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् |
| प० | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् | उभाभ्याम् |
| ष० | उभयो | उभयो | उभयो |
| स० | उभयो | उभयो | उभयो |

(क) 'उभय' शब्द के[1] द्विवचन के रूप नही होते, केवल एकवचन तथा बहुवचन के ही होते है। जस् विभक्ति मे भी इसकी सर्वदीनि सर्वनामानि ।१।१।२७। से नित्य सर्वनाम सज्ञा होती है। प्रथमचरम ।१।१।३३। आदि नियम

१ उभयशब्दस्य द्विवचन नास्तीति कैयट। तस्माज्जस्य यजादेशस्य स्थानिवद्भावेन तयप्प्रत्ययान्ततया 'प्रथमचरम्' इति विकल्पे प्राप्ते विभक्ति-निरपेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वान्नित्यैव सज्ञा भवति उभये—रि कौ०।

से विकल्प से होने वाली सर्वनाम सज्ञा यहाँ नही लागू होती। क्योकि 'प्रथमचरम' से होने वाली वैकल्पिक सज्ञा जस् विभक्ति की अपेक्षा रखने से बहिरङ्ग है और अतएव, विभक्तिनिरपेक्ष रूप से होने वाली सर्वादीनि सर्वनामानि से होने वाली अन्तरग सर्वनाम सज्ञा कमजोर पडती है।

उभ[1] शब्द मे तयप् के स्थान मे अयच् हो जाता है और वह आदि उदात्त होगा। इस प्रकार—उभ+अयच्=उभय।

## उभय

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्र० | उभय | उभये |
| द्वि० | उभयम् | उभयान् |
| तृ० | उभयेन | उभयै |
| च० | उभयस्मै | उभयेभ्य |
| प० | उभयस्मात्, द् | उभयेभ्य |
| ष० | उभयस्य | उभयेषाम् |
| स० | उभयस्मिन् | उभयेषु |

### नपुसकलिङ्ग

| | | |
|---|---|---|
| प्र० | उभयम् | उभयानि |
| द्वि० | उभयम् | उभयानि |

शेष विभक्तियो मे पुल्लिङ्ग के समान रूप होते हैं।

### स्त्रीलिङ्ग उभयी शब्द

| | | |
|---|---|---|
| प्र० | उभयी | उभय्य |

इत्यादि नदी के समान।

(ख) 'दो का समूह', 'तीन का समूह' इत्यादि समूहवाचक सख्या शब्द सस्कृत मे कई प्रकार से बनते हैं। मुख्य ये हैं—

---

१ उभादुदात्तो नित्यम् ।५।२।४४। उभयशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्त (भट्टोजिकृत वृत्ति)।

(१) तयप्[1] प्रत्यय से—द्वितय, त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय पु० तथा नपु० मे, द्वितयी, त्रितयी, चतुष्टयी, पञ्चतयी स्त्रीलिङ्ग मे। इनके रूप तीनो वचनों मे स्वरान्त सज्ञाश्रो के समान होते हैं। वर्णाना चतुष्टयी, वेदाना त्रितयी, सख्या-वाचकशब्दाना द्वितयम्, द्वितये, द्वितयानि।

(२) द्वि[2] और त्रि शब्दो के आगे तयप् के स्थान मे विकल्प से अयच् होने से द्वय और त्रय पु० तथा नपु० मे एव द्वयी और त्रयी स्त्री० मे बनते है। इनके रूप भी द्वितय आदि के अनुसार होते है—

वेदत्रयी, विद्याद्वयम्, इत्यादि।

६१—सस्कृत की गिनती नीचे दी जाती है—

| संख्या | पूरणी क्रम संख्या पु० तथा नपु० | पूरणी संख्या |
|---|---|---|
| १ एक | प्रथम | प्रथमा |
| २ द्वि | द्वितीय[3] | द्वितीया |
| ३ त्रि | तृतीय[4] | तृतीया |
| ४ चतुर् | चतुर्थ,[4] तुरीय, तुर्य | चतुर्थी, तुरीया, तुर्या |

१ सख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२। अवयव का अर्थ देने के लिए सख्याओ मे तयप् जोडा जाता है। इस प्रकार 'पञ्चावयवा अस्य' इस अर्थ मे 'पञ्चतय' (दारु) शब्द पञ्च मे तयप जोडकर बनेगा। इस अर्थ का पर्यवसान समूह मे ही होता है। 'पञ्चतय' का अर्थ होगा 'पाँच का समूह'।

२ द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा ।५।२।४३। द्वि और त्रि शब्दो मे तयप् के स्थान मे विकल्प से अयच् हो जाता है। इस प्रकार द्वितय एव त्रितय के अतिरिक्त द्वय और त्रयी भी होगे।

३, ४ द्रष्टव्य पृष्ठ १४६ पर नीचे दी गयी टिप्पणी।

४ षट्कतिकतिपयचतुरा थुक् ।५।२।५१। पूरण के अर्थ मे षट्, कतिपय तथा चतुर शब्दो मे डट् प्रत्यय लगने पर उन्हे 'थुक्' का आगम होता है। 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च' (वार्तिक) इस विधान से चतुर् शब्द मे पूरण अर्थ मे छ और यत् प्रत्यय भी जुडते हैं और इन दो प्रत्ययो के जुडने पर आद्य अक्षर 'च' का लोप हो जाता है। इस प्रकार तुरीय और तुर्य रूप भी बनेगे।

| | | |
|---|---|---|
| ५ पञ्चन् | पञ्चम[1] | पञ्चमी |
| ६ षष् | षष्ठ | षष्ठी |
| ७ सप्तन् | सप्तम | सप्तमी |
| ८ अष्टन् | अष्टम | अष्टमी |
| ९ नवन् | नवम | नवमी |
| १० दशन् | दशम | दशमी |
| ११ एकादशन् | एकादश | एकादशी |
| १२ द्वादशन् | द्वादश | द्वादशी |
| १३ त्रयोदशन् | त्रयोदश | त्रयोदशी |
| १४ चतुर्दशन् | चतुर्दश | चतुर्दशी |
| १५ पञ्चदशन् | पञ्चदश | पञ्चदशी |
| १६ षोडशन् | षोडश | षोडशी |
| १७ सप्तदशन् | सप्तदश | सप्तदशी |
| १८ अष्टादशन् | अष्टादश | अष्टादशी |
| १९ नवदशन् | | |
| या | नवदश | नवदशी |
| एकोनविंशति (स्त्री०) | एकोनविंश | एकोनविंशी |
| या | एकोनविंशतितम | एकोनविंशतितमी |
| ऊनविंशति | ऊनविंश, ऊनविंशतितम | ऊनविंशी |
| या | | ऊनविंशतितमी |
| एकान्नविंशति | एकान्नविंश, एकान्नविंशतितम | एकान्नविंशी |
| | | एकान्नविंशतितमी |
| २० विंशति | विंश,[2] विंशतितम | विंशी, विंशतितमी |

---

१ नान्तसंख्यादेर्मट् ।५।२।४९। नान्तसंख्यावाची शब्दो मे पूरण के अर्थ मे डट् प्रत्यय लगने पर उसे मट् आगम होता है।

२ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ।५।२।५६। विंशति आदि से ऊपर होने वाले पूरण अर्थ के डट् प्रत्यय को विकल्प से तमट का आगम होता है।

| | | |
|---|---|---|
| २१ एकविंशति | एकविंश, एकविंशतितम | एकविंशी<br>एकविंशतितमी |
| २२ द्वाविंशति | द्वाविंश, द्वाविंशतितम | द्वाविंशी<br>द्वाविंशतितमी |
| २३ त्रयोविंशति | त्रयोविंश, त्रयोविंशतितम | त्रयोविंशी<br>त्रयोविंशतितमी |
| २४ चतुर्विंशति | चतुर्विंश, चतुर्विंशतितम | चतुर्विंशी<br>चतुर्विंशतितमी |
| २५ पञ्चविंशति | पञ्चविंश, पञ्चविंशतितम | पञ्चविंशी<br>पञ्चविंशतितमी |
| २६ षड्विंशति | षड्विंश, षड्विंशतितम | षड्विंशी<br>षड्विंशतितमी |
| २७ सप्तविंशति | सप्तविंश, सप्तविंशतितम | सप्तविंशी<br>सप्तविंशतितमी |
| २८ अष्टाविंशति | अष्टाविंश<br>अष्टाविंशतितम | अष्टाविंशी<br>अष्टाविंशतितमी |
| २९ नवविंशति | नवविंश | नवविंशी |
| या | नवविंशतितम | नवविंशतितमी |
| एकोनत्रिंशत् | एकोनत्रिंश, एकोनत्रिंशत्तम | एकोनत्रिंशी |
| या | | एकोनत्रिंशत्तमी |
| ऊनत्रिंशत् | ऊनत्रिंश, ऊनत्रिंशत्तम | ऊनत्रिंशी |
| या | | ऊनत्रिंशत्तमी |
| एकान्नत्रिंशत् | एकान्नत्रिंश, एकान्नत्रिंशत्तम | एकान्नत्रिंशी<br>एकान्नत्रिंशत्तमी |
| ३० त्रिंशत् | त्रिंश, त्रिंशत्तम | त्रिंशी, त्रिंशत्तमी |
| ३१ एकत्रिंशत् | एकत्रिंश<br>एकत्रिंशत्तम | एकत्रिंशी<br>एकत्रिंशत्तमी |
| ३२ द्वात्रिंशत् | द्वात्रिंश<br>द्वात्रिंशत्तम | द्वात्रिंशी<br>द्वात्रिंशत्तमी |

| | | |
|---|---|---|
| ३३ त्रयस्त्रिंशत् | त्रयस्त्रिंशी | त्रयस्त्रिशी |
| | त्रयस्त्रिशत्तम | त्रयस्त्रिशत्तमी |
| ३४ चतुस्त्रिंशत् | चतुस्त्रिंश | चतुस्त्रिंशी |
| | चतुस्त्रिंशत्तम | चतुस्त्रिंशत्तमी |
| ३५ पञ्चत्रिंशत् | पचत्रिंश | पचत्रिंशी |
| | पचत्रिंशत्तम | पचत्रिंशत्तमी |
| ३६ षट्त्रिंशत् | षट्त्रिंश | षट्त्रिंशी |
| | षट्त्रिंशत्तम | षट्त्रिंशत्तमी |
| ३७ सप्तत्रिंशत् | सप्तत्रिंश | सप्तत्रिंशी |
| | सप्तत्रिंशत्तम | सप्तत्रिंशत्तमी |
| ३८ अष्टात्रिंशत् | अष्टात्रिंश | अष्टात्रिंशी |
| | अष्टात्रिंशत्तम | अष्टात्रिंशत्तमी |
| ३९ नवत्रिंशत् | नवत्रिंश | नवत्रिंशी |
| या | नवत्रिंशत्तम | नवत्रिंशत्तमी |
| एकोनचत्वारिंशत् | एकोनचत्वारिंश | एकोनचत्वारिंशी |
| या | एकोनचत्वारिंशत्तम | एकोनचत्वारिंशत्तमी |
| ऊनचत्वारिंशत् | ऊनचत्वारिंश | ऊनचत्वारिंशी |
| या | ऊनचत्वारिंशत्तम | ऊनचत्वारिंशत्तमी |
| एकान्नचत्वारिंशत् | एकान्नचत्वारिंश | एकान्नचत्वारिंशी |
| | एकान्नचत्वारिंशत्तम | एकान्नचत्वारिंशत्तमी |
| ४० चत्वारिंशत् | चत्वारिंश | चत्वारिंशी |
| | चत्वारिंशत्तम | चत्वारिंशत्तमी |
| ४१ एकचत्वारिंशत् | एकचत्वारिंश | एकचत्वारिंशी |
| | एकचत्वारिंशत्तम | एकचत्वारिंशत्तमी |
| ४२ द्वाचत्वारिंशत् | द्वाचत्वारिंश | द्वाचत्वारिंशी |
| या | द्वाचत्वारिंशत्तम | द्वाचत्वारिंशत्तमी |
| द्विचत्वारिंशत् | द्विचत्वारिंश | द्विचत्वारिंशी |
| | द्विचत्वारिंशत्तम | द्विचत्वारिंशत्तमी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४३ | त्रयश्चत्वारिंशत् | त्रयश्चत्वारिंश | त्रयश्चत्वारिंशी |
| | या | त्रयश्चत्वारिंशत्तम | त्रयश्चत्वारिंशत्तमी |
| | त्रिचत्वारिशत् | त्रिचत्वारिंश | त्रिचत्वारिंशी |
| | | त्रिचत्वारिंशत्तम | त्रिचत्वारिंशत्तमी |
| ४४ | चतुश्चत्वारिंशत् | चतुश्चत्वारिंश | चतुश्चत्वारिंशी |
| | | चतुश्चत्वारिंशत्तम | चतुश्चत्वारिंशत्तमी |
| ४५ | पञ्चचत्वारिंशत् | पञ्चचत्वारिंश | पञ्चचत्वारिंशी |
| | | पञ्चचत्वारिंशत्तम | पञ्चचत्वारिंशत्तमी |
| ४६ | षट्चत्वारिंशत् | षट्चत्वारिंश | षट्चत्वारिंशी |
| | | षट्चत्वारिंशत्तम | षट्चत्वारिंशत्तमी |
| ४७ | सप्तचत्वारिंशत् | सप्तचत्वारिंश | सप्तचत्वारिंशी |
| | | सप्तचत्वारिंशत्तम | सप्तचत्वारिंशत्तमी |
| ४८ | अष्टाचत्वारिंशत् | अष्टाचत्वारिंश | अष्टाचत्वारिंशी |
| | या | अष्टाचत्वारिशत्तम | अष्टाचत्वारिंशत्तमी |
| | अष्टचत्वारिंशत् | अष्टचत्वारिश | अष्टचत्वारिंशी |
| | | अष्टचत्वारिंशत्तम | अष्टचत्वारिंशत्तमी |
| ४९ | नवचत्वारिंशत् | नवचत्वारिंश | नवचत्वारिंशी |
| | या | नवचत्वारिंशत्तम | नवचत्वारिंशत्तमी |
| | एकोनपञ्चाशत् | एकोनपञ्चाश | एकोनपञ्चाशी |
| | या | एकोनपञ्चाशत्तम | एकोनपञ्चाशत्तमी |
| | ऊनपञ्चाशत् | ऊनपञ्चाश | ऊनपञ्चाशी |
| | या | ऊनपञ्चाशत्तम | ऊनपञ्चाशत्तमी |
| | एकान्नपञ्चाशत् | एकान्नपञ्चाश | एकान्नपञ्चाशी |
| | | एकान्नपञ्चाशत्तम | एकान्नपञ्चाशत्तमी |
| ५० | पञ्चाशत् | पञ्चाश | पञ्चाशी |
| | | पञ्चाशत्तम | पञ्चाशत्तमी |
| ५१ | एकपञ्चाशत | एकपञ्चाश | एकपञ्चाशी |
| | | एकपञ्चाशत्तम | एकपञ्चाशत्तमी |

| | | |
|---|---|---|
| ५२ द्वापञ्चाशत् | द्वापञ्चाश | द्वापञ्चाशी |
| या | द्वापञ्चाशत्तम | द्वापञ्चाशत्तमी |
| द्विपञ्चाशत् | द्विपञ्चाश | द्विपञ्चाशी |
| | द्विपञ्चाशत्तम | द्विपञ्चाशत्तमी |
| ५३ त्रय पञ्चाशत् | त्रय पञ्चाश | त्रय पञ्चाशी |
| या | त्रय पञ्चाशत्तम | त्रय पञ्चाशत्तमी |
| त्रिपञ्चाशत् | त्रिपञ्चाश | त्रिपञ्चाशी |
| | त्रिपञ्चाशत्तम | त्रिपञ्चाशत्तमी |
| ५४ चतु पञ्चाशत् | चतु पञ्चाश | चतु पञ्चाशी |
| | चतु पञ्चाशत्तम | चतु पञ्चाशत्तमी |
| ५५ पञ्चपञ्चाशत् | पञ्चपञ्चाश | पञ्चपञ्चाशी |
| | पञ्चपञ्चाशत्तम | पञ्चपञ्चाशत्तमी |
| ५६ षट्पञ्चाशत् | षट्पञ्चाश | षट्पञ्चाशी |
| | षट्पञ्चाशत्तम | षट्पञ्चाशत्तमी |
| ५७ सप्तपञ्चाशत् | सप्तपञ्चाश | सप्तपञ्चाशी |
| | सप्तपञ्चाशत्तम | सप्तपञ्चाशत्तमी |
| ५८ अष्टापञ्चाशत् | अष्टापञ्चाश | अष्टापञ्चाशी |
| या | अष्टापञ्चाशत्तम | अष्टापञ्चाशत्तमी |
| अष्टपञ्चाशत् | अष्टपञ्चाश | अष्टपञ्चाशी |
| | अष्टपञ्चाशत्तम | अष्टपञ्चाशत्तमी |
| ५९ नवपञ्चाशत् | नवपञ्चाश | नवपञ्चाशी |
| या | नवपञ्चाशत्तम | नवपञ्चाशत्तमी |
| एकोनषष्टि | एकोनषष्ट | एकोनषष्टी |
| या | एकोनषष्टितम | एकोनषष्टितमी |
| ऊनषष्टि | ऊनषष्ट | ऊनषष्टी |
| या | ऊनषष्टितम | ऊनषष्टितमी |
| एकान्नषष्टि | एकान्नषष्ट | एकान्नषष्टी |
| | एकान्नषष्टितम | एकान्नषष्टितमी |
| ६० षष्टि | षष्टितम | षष्टितमी |

| | | |
|---|---|---|
| १ एकषष्टि | एकषष्ट | एकषष्टी |
| | एकषष्टितम | एकषष्टितमी |
| २ द्वाषष्टि | द्वाषष्ट | द्वाषष्टी |
| या | द्वाषष्टितम | द्वाषष्टितमी |
| द्विषष्टि | द्विषष्ट | द्विषष्टी |
| | द्विषष्टितम | द्विषष्टितमी |
| ३ त्रयष्षष्टि | त्रयष्षष्ट | त्रयष्षष्टी |
| या | त्रयष्षष्टितम | त्रयष्षष्टितमी |
| त्रिषष्टि | त्रिषष्ट | त्रिषष्टी |
| | त्रिषष्टितम | त्रिषष्टितमी |
| ६४ चतुष्षष्टि | चतुष्षष्ट | चतुष्षष्टी |
| | चतुष्षष्टितम | चनुष्षष्टितमी |
| ६५ पञ्चषष्टि | पञ्चषष्ट | पञ्चषष्टी |
| | पञ्चषष्टितम | पञ्चषष्टितमी |
| ६६ षट्षष्टि | षट्षष्ट | षट्षष्टी |
| | षट्षष्टितम | षट्षष्टितमी |
| ६७ सप्तषष्टि | सप्तषष्ट | सप्तषष्टी |
| | सप्तषष्टितम | सप्तषष्टितमी |
| ६८ अष्टाषष्टि | अष्टाषष्ट | अष्टाषष्टी |
| या | अष्टाषष्टितम | अष्टाषष्टितमी |
| अष्टषष्टि | अष्टषष्ट | अष्टषष्टी |
| | अष्टषष्टितम | अष्टषष्टितमी |
| ६९ नवषष्टि | नवषष्ट | नवषष्टी |
| या | नवषष्टितम | नवषष्टितमी |
| एकोनसप्तति | एकोनसप्तत | एकोनसप्तती |
| ऊनसप्तति | ऊनसप्तत | ऊनसप्तती |
| या | ऊनसप्ततितम | ऊनसप्ततितमी |
| एकान्नसप्तति | एकान्नसप्तत | एकान्नसप्तती |
| | एकान्नसप्ततितम | एकान्नसप्ततितमी |

| | | |
|---|---|---|
| ७० सप्तति | सप्तत | सप्तती |
| | सप्ततितम | सप्ततितमी |
| ७१ एकसप्तति | एकसप्तत | एकसप्तती |
| | एकसप्ततितम | एकसप्ततितमी |
| ७२ द्वासप्तति | द्वासप्तत | द्वासप्तती |
| या | द्वासप्ततितम | द्वासप्ततितमी |
| द्विसप्तति | द्विसप्तत | द्विसप्तती |
| | द्विसप्ततितम | द्विसप्ततितमी |
| ७३ त्रयस्सप्तति | त्रयस्सप्तत | त्रयस्सप्तती |
| या | त्रयस्सप्ततितम | त्रयस्सप्ततितमी |
| त्रिसप्तति | त्रिसप्तत | त्रिसप्तती |
| | त्रिसप्ततितम | त्रिसप्ततितमी |
| ७४ चतुस्सप्तति | चतुस्सप्तत | चतुस्सप्तती |
| | चतुस्सप्ततितम | चतुस्सप्ततितमी |
| ७५ पञ्चसप्तति | पञ्चसप्तत | पञ्चसप्तती |
| | पञ्चसप्ततितम | पञ्चसप्ततितमी |
| ७६ षट्सप्तति | षट्सप्तत | षट्सप्तती |
| | षट्सप्ततितम | षट्सप्ततितमी |
| ७७ सप्तसप्तति | सप्तसप्तत | सप्तसप्तती |
| | सप्तसप्ततितम | सप्तसप्ततितमी |
| ७८ अष्टासप्तति | अष्टासप्तत | अष्टासप्तती |
| या | अष्टासप्ततितम | अष्टासप्ततितमी |
| अष्टसप्तति | अष्टसप्तत | अष्टसप्तती |
| | अष्टसप्ततितम | अष्टसप्ततितमी |
| ७९ नवसप्तति | नवसप्तत | नवसप्तती |
| या | नवसप्ततितम | नवसप्ततितमी |
| एकोनाशीति | एकोनाशीत | एकोनाशीती |
| या | एकोनाशीतितम | एकोनाशीतितमी |
| ऊनाशीति | ऊनाशीत | ऊनाशीती |

| | | |
|---|---|---|
| या | ऊनाशीतितम | ऊनाशीतितमी |
| एकोनाशीति | एकान्नाशीत | एकान्नाशीतितमी |
| | एकान्नाशीतितम | एकान्नाशीतितमी |
| ८० अशीति | अशीतितम | अशीतितमी |
| ८१ एकाशीति | एकाशीत | एकाशीती |
| | एकाशीतितम | एकाशीतितमी |
| ८२ द्व्यशीति | द्व्यशीति | द्व्यशीती |
| | द्व्यशीतितम | द्व्यशीतितमी |
| ८३ त्र्यशीति | त्र्यशीति | त्र्यशीती |
| | त्र्यशीतितम | त्र्यशीतितमी |
| ८४ चतुरशीति | चतुरशीत | चतुरशीती |
| | चतुरशीतितम | चतुरशीतितमी |
| ८५ पञ्चाशीति | पञ्चाशीत | पञ्चाशीती |
| | पञ्चाशीतितम | पञ्चाशीतितमी |
| ८६ षडशीति | षडशीत | षडशीती |
| | षडशीतितम | षडशीतितमी |
| ८७ सप्ताशीति | सप्तशीत | सप्ताशीती |
| | सप्तशीतितम | सप्ताशीतितमी |
| ८८ अष्टाशीति | अष्टाशीत | अष्टाशीती |
| | अष्टाशीतितम | अष्टाशीतितमी |
| ८९ नवाशीति | नवाशीत | नवाशीती |
| या | नवाशीतितम | नवाशीतितमी |
| एकोननवति | एकोननवत | एकोननवती |
| या | एकोननवतितम | एकोननवतितमी |
| ऊननवति | ऊननवत | ऊननवती |
| या | ऊननवतितम | ऊननवतितमी |
| एकान्ननवति | एकान्ननवत | एकान्ननवती |
| | एकान्ननवतितम | एकान्ननवतितमी |
| ९० नवति | नवतितम | नवतितमी |

| | | |
|---|---|---|
| ९१ एकनवति | एकनवत | एकनवती |
| | एकनवतितम | एकनवतितमी |
| ९२ द्वानवति | द्वानवत | द्वानवती |
| या | द्वानवतितम | द्वानवतितमी |
| द्विनवति | द्विनवत | द्विनवती |
| | द्विनवतितम | द्विनवतितमी |
| ९३ त्रयोनवति | त्रयोनवत | त्रयोनवती |
| या | त्रयोनवतितम | त्रयोनवतितमी |
| त्रिनवति | त्रिनवत | त्रिनवती |
| | त्रिनवतितम | त्रिनवतितमी |
| ९४ चतुर्नवति | चतुनवत | चतुर्नवती |
| | चतुर्नवतितम | चतुर्नवतितमी |
| ९५ पञ्चनवति | पञ्चनवत | पञ्चनवती |
| | पञ्चनवतितम | पञ्चनवतितमी |
| ९६ षण्णवति | षण्णवत | षण्णवती |
| | षण्णवतितम | षण्णवतितमी |
| ९७ सप्तनवति | सप्तनवत | सप्तनवती |
| | सप्तनवतितम | सप्तनवतितमी |
| ९८ अष्टानवति | अष्टानवत | अष्टानवती |
| या | अष्टानवतितम | अष्टानवतितमी |
| अष्टनवति | अष्टनवत | अष्टनवती |
| | अष्टनवतितम | अष्टनवतितमी |
| ९९ नवनवति | नवनवत | नवनवती |
| या | नवनवतितम | नवनवतितमी |
| एकोनशत (नपुं०) | एकोनशततम | एकोनशततमी |
| १०० शत | शततम | शततमी |
| २०० द्विशत | द्विशततम | द्विशततमी |
| ३०० त्रिशत | त्रिशततम | त्रिशततमी |
| ४०० चतुरशत | चतुश्शततम | चतुश्शततमी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५०० | पञ्चशत | पञ्चशततम | पञ्चशततमी |
| १,००० | सहस्र | सहस्रतम | सहस्रतमी |

१०,००० अयुत (नपु०)

१,००,००० लक्ष (नपु०) या लक्षा (स्त्री०)

दस लाख—'प्रयुत' (नपु०)

करोड—'कोटि' (स्त्री०)

दस करोड—'अर्बुद' (नपु०)

अरब—'अब्ज' (नपु०)

दश अरब—'खर्व' (पु०, नपु०)

खर्व—'निखर्व' (पु०, नपु०)

दस खर्व—'महापद्म' (नपु०)

नील—'शङ्कु' (पु०)

दस नील—'जलधि' (पु०)

पद्म—'अन्त्य' (नपु०)

दस पद्म—'मध्य' (नपु०)

शङ्ख—'परार्घ' (नपु०)

| | | |
|---|---|---|
| ५०१ | एकाधिपञ्चशतम् | एकोत्तरपञ्चशतम् |
| | एकाधिक पञ्चशतम् | एकोत्तर पञ्चशतम् |
| ५०२ | द्व्यधिकपञ्चशतम् | द्व्युत्तरपञ्चशतम् |
| | द्व्यधिक पञ्चशतम् | द्व्युत्तरपञ्चशतम् |
| ५०३ | त्र्यधिकपञ्चशतम् | त्र्युत्तरपञ्चशतम् |
| | त्र्यधिक पञ्चशतम् | त्र्युत्तर पञ्चशतम् |
| ५०४ | चतुरधिकपञ्चशतम् | चतुरुत्तरपञ्चशतम् |
| | चतुरधिक पञ्चशतम् | चतुरुत्तर पञ्चशतम् |
| ५०५ | पञ्चाधिकपञ्चशतम् | पञ्चोत्तरपञ्चशतम् |
| | पञ्चाधिक पञ्चशतम् | पञ्चोत्तर पञ्चशतम् |
| ५०६ | षडधिकपञ्चशतम् | षडुत्तरपञ्चशतम् |
| | षडधिक पञ्चशतम् | षडुत्तर पञ्चशतम् |

| | | |
|---|---|---|
| ५०७ | सप्ताधिकपञ्चशतम् | सप्तोत्तरपञ्चशतम् |
| | सप्ताधिक पञ्चशतम् | मप्तोत्तर पञ्चशतम् |
| ५०८ | अष्टाधिकपञ्चशतम् | अष्टोत्तरपञ्चशतम् |
| | अष्टाधिक पञ्चशतम् | अष्टोत्तर पञ्चशतम् |
| ५०९ | नवाधिकपञ्चशतम् | नवोत्तरपञ्चशतम् |
| | नवाधिक पञ्चशतम् | नवोत्तर पञ्चशतम् |
| ५१० | दशाधिकपञ्चशतम् | दशोत्तरपञ्चशतम् |
| | दशाधिक पञ्चशतम् | दशोत्तर पञ्चशतम् |
| ५१७ | सप्तदशाधिकपञ्चशतम् | सप्तदशोत्तरपञ्चशतम् |
| | सप्तदशाधिक पञ्चशतम् | सप्तदशोत्तर पञ्चशतम् |
| ६०० | षटशतम् | |
| ६२५ | पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम् | पञ्चविंशत्यधिक षट्शतम् |
| | पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम् | पञ्चविंशत्युत्तर षट्शतम् |
| ६३७ | सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम् | सप्तत्रिंशदधिक षट्शतम् |
| | सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम् | सप्तत्रिंशदुत्तर षट्शतम् |
| ६४६ | षट्चत्वारिंशदधिकषट्शतम् | षट्चत्वारिंशदधिक षट्शतम् |
| | षट्चत्वारिंशदुत्तरषट्शतम् | षट्चत्वारिंशदुत्तर षट्शतम् |
| ६५५ | पञ्चपञ्चाशदधिकषट्शतम् | पञ्चपञ्चाशदधिक षट्शतम् |
| | पञ्चपञ्चाशदुत्तरषट्शतम् | पञ्चपञ्चाशदुत्तर षट्शतम् |
| ६६६ | षट्षष्ट्यधिकषट्शतम् | षट्षष्ट्यधिक षट्शतम् |
| | षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम् | षट्षष्ट्युत्तर षट्शतम् |
| ६७३ | त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम् | त्रिसप्तत्यधिक षट्शतम् |
| | त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम् | त्रिसप्तत्युत्तर षट्शतम् |
| ६८४ | चतुरशीत्यधिकषट्शतम् | चतुरशीत्यधिक षट्शतम् |
| | चतुरशीत्युत्तरषट्शतम् | चतुरशीत्युत्तर षट्शतम् |
| ६९५ | पञ्चनवत्यधिकषट्शतम् | पञ्चनवत्यधिक षट्शतम् |
| | पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम् | पञ्चनवत्युत्तर षट्शतम् |
| १३२५ | पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम् | |
| | या | |
| | पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम् | |

| | |
|---|---|
| ११२८ | अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम् <br> या <br> अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम् |
| १९३९ | एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम् <br> या <br> एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम् |
| ५९६३७ | सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम् |

**९२**—सख्यावाचक शब्दो के रूपो मे जो भेद है, वह नीचे दिखाया जाता है—

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ सख्यावाचक 'एक' होता है, तो इसका रूप केवल एकवचन मे होता है, इसके अतिरिक्त अर्थों[1] मे इसके रूप तीनो वचनो में होते हैं।

**एक**

| | **पुल्लिङ्ग** | **नपुसकलिङ्ग** | **स्त्रीलिङ्ग** |
|---|---|---|---|
| | एकवचन | एकवचन | एकवचन |
| **प्र०** | एक | एकम् | एका |
| **द्वि०** | एकम् | एकम् | एकाम् |
| **तृ०** | एकेन | एकेन | एकया |
| **च०** | एकस्मै | एकस्मै | एकस्यै |
| **प०** | एकस्मात्, द् | एकस्मात्, द् | एकस्या |
| **ष०** | एकस्य | एकस्य | एकस्या |
| **स०** | एकस्मिन् | एकस्मिन् | एकस्याम् |

---

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽपि सख्याया च प्रयुज्यते ।।

अर्थात्, अल्प (थोडा, कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक इतने अर्थों मे एक शब्द का प्रयोग होता है।

बहुवचन मे इसका अर्थ होता है—'कुछ लोग', 'कोई-कोई', यथा 'एके पुरुषा', 'एका', 'एकानि फलानि' इत्यादि।

(ख) द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन मे तथा तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग होते हैं।

## द्वि—दो

| | पुल्लिङ्ग | नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग |
|---|---|---|
| | द्विवचन | द्विवचन |
| प्र० | द्वौ | द्वे |
| द्वि० | द्वौ | द्वे |
| तृ० | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| च० | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| प० | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| ष० | द्वयो | द्वयो |
| स० | द्वयो | द्वयो |

## त्रि—तीन

(ग) 'त्रि' शब्द के रूप केवल बहुवचन मे होते हैं—

| | बहुवचन | बहुवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | त्रय | त्रीणि | तिस्र[1] |
| द्वि० | त्रीन् | त्रीणि, | " |
| तृ० | त्रिभि | त्रिभि | तिसृभि |
| च० | त्रिभ्य | त्रिभ्य | तिसृभ्य |
| प० | त्रभ्य | त्रिभ्य | तिसृभ्य |
| ष० | त्रयाणाम्[2] | त्रयाणाम् | तिसृणाम |
| स० | त्रिषु | त्रिषु | तिसृषु |

१ त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतसृ ।७।२।९९। त्रि तथा चतुर् शब्दो के स्थान मे स्त्रीलिङ्ग मे तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं।

२ त्रेस्त्रय ।७।१।५३। अर्थात् आम् (षष्ठी बहु० के विभक्ति प्रत्यय) के जुडने पर 'त्रि' शब्द के स्थान मे 'त्रय' हो जाता है। इस प्रकार त्रीणाम् न होकर 'त्रयाणाम्' रूप बन जाता है।

## चतुर्—चार

(घ) चतुर् (चार) शब्द के रूप भी तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग और केवल बहुवचन मे होते हैं—

| | पुल्लिङ्ग | नपुसकलिङ्ग | स्त्रीलिङ्ग |
|---|---|---|---|
| | बहुवचन | बहुवचन | बहुवचन |
| प्र० | चत्वार | चत्वारि | चतस्र |
| द्वि० | चतुर | चत्वारि | चतस्र |
| तृ० | चतुर्भि | चतुर्भि | चतसृभि |
| च० | चतुर्भ्य | चतुर्भ्य | चतसृभ्य |
| प० | चतुर्भ्य | चतुर्भ्य | चतसृभ्य |
| ष० | चतुर्णाम्[1], चतुर्ण्णाम् | चतुर्णाम्, चतुर्ण्णाम् | चतसृणाम् |
| स० | चतुर्षु | चतुर्षु | चतसृषु |

## पञ्चन्—पॉच

(च) पञ्चन् और इसके आगे के सख्यावाची शब्दो के रूप तीना लिङ्गो मे समान होते हैं और केवल बहुवचन मे होते है—

| | पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग |
|---|---|
| प्र० | पञ्च |
| द्वि० | पञ्च |
| तृ० | पञ्चभि |
| च० | पञ्चभ्य |
| प० | पञ्चभ्य |
| ष० | पञ्चानाम् |
| स० | पञ्चसु |

---

१ षट्चतुर्भ्यश्च ।७।१।५५। अर्थात् 'षट्' सज्ञा वाले सख्यावाची शब्दो तथा चतुर् शब्द मे आम् (षष्ठी बहुवचन की विभक्ति) के पूर्व न् का आगम हो जाता है। फिर 'रषाभ्या नो ण समानपदे' के अनुसार न् का ण् हो जायगा। पुनश्च अचो रहाभ्या द्वे ।८।४।४७। अर्थात् 'स्वर के बाद र् और ह् हो तो उस र् या ह् के बाद आने वाले (ह् को छोडकर) किसी भी व्यञ्जन-वर्ण का विकल्प से द्वित्व हो जाता है, इसके अनुसार 'चतुर्ण्णाम्' भी होगा।

(छ) **षष्—छः**

**पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग**

केवल बहुवचन मे

| | |
|---|---|
| प्र० | षट् |
| द्वि० | षट् |
| तृ० | षड्भि |
| च० | षड्भ्य |
| प० | षड्भ्य |
| ष० | षण्णाम् |
| स० | षट्त्सु, षट्सु |

(ज) **सप्तन्—सात**

**पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग**

केवल बहुवचन मे

| | |
|---|---|
| प्र० | सप्त |
| द्वि० | सप्त |
| तृ० | सप्तभि |
| च० | सप्तभ्य |
| प० | सप्तभ्य |
| ष० | सप्तानाम् |
| स० | सप्तसु |

(झ) **अष्टन्[1]—आठ**

**पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग**

केवल बहुवचन मे

| | |
|---|---|
| प्र० | [2]अष्टौ, अष्ट |

---

१ अष्टन् आ विभक्तौ ।७।२।८४। यदि अष्टन् शब्द के बाद व्यञ्जनवर्ण से आरम्भ होने वाले विभक्ति-प्रत्यय जुडे हो तो 'न्' के स्थान मे 'आ' हो जाता है। परन्तु 'न्' के स्थान मे 'आ' का होना वैकल्पिक है।

२ अष्टाभ्य औश् ।७।१।२१। 'अष्टा' के बाद प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन के विभक्ति-प्रत्ययो के जुडने पर उनके स्थान मे 'औ' का आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'अष्टौ' रूप बन जाता है। 'न्' के स्थान मे 'आ' न होने पर 'अष्ट' रूप बनता है।

| | |
|---|---|
| द्वि० | अष्टौ, अष्ट |
| तृ० | अष्टाभि , अष्टभि |
| च० | अष्टाभ्य , अष्टभ्य |
| प० | अष्टाभ्य अष्टभ्य |
| ष० | अष्टानाम् |
| स० | अष्टासु, अष्टसु |

( ट ) नवन् (नौ), दशन् (दस) तथा सभी नकारान्त सख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दो के रूप पञ्चन् के समान तीनो लिङ्गो मे एक ही समान होते है। अष्टन् मे जो भेद होता है, वह दिखा दिया गया।

( ठ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविशति से लेकर जितने सख्यावाची शब्द है, उन सब के रूप केवल एकवचन[1] ही मे होते है तथा कभी-कभी सख्यावाचक विशेषण के रूप मे नही, अपितु सज्ञा-शब्द की भाँति प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—विशति स्त्रीणाम्। मुनीना दशसाहस्रम् इत्यादि।

( ड ) ह्रस्व इकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक ऊनविंशति, विंशति, एकविंशति आदि 'विशति' मे अन्त होने वाले शब्दो के रूप 'रुचि' शब्द के समान होते हैं।

एकवचन

प्र० विंशति

द्वि० विंशतिम्

तृ० विंशत्या

च० विंशत्यै, विंशतये

प० विंशत्या , विंशते

ष० विंशत्या , विंशते

स० विंशत्याम्, विंशतौ

---

१ पर दो बीस, तीन बीस इत्यादि अर्थ मे द्विविंशती, तिस्र विंशतय इत्यादि ही प्रयोग होते हैं।

( ढ ) नित्यस्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) तथा शत् मे अन्त होने वाले अन्य सख्यावाची शब्दो के रूप 'सरित्' के समान होते है, जैसे—

| | त्रिंशत् | चत्वारिंशत् |
|---|---|---|
| प्र० | त्रिशत् | चत्वारिशत् |
| द्वि० | त्रिशतम् | चत्वारिशनम् |
| तृ० | त्रिशता | चत्वारिशता |
| च० | त्रिशते | चत्वारिंशते |
| प० | त्रिशत | चत्वारिंशत |
| ष० | त्रिशत | चत्वारिंशत |
| स० | त्रिशति | चत्वारिंशति |

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते है।

( त ) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त सख्यावाची शब्दो के रूप 'विशनि' के अनुसार 'रुचि' के समान होते है, जैसे—

| | षष्टि | सप्तति |
|---|---|---|
| | एकवचन | एकवचन |
| प्र० | षष्टि | सप्तति |
| द्वि० | षष्टिम् | सप्ततिम् |
| तृ० | षष्ट्या | सप्तत्या |
| च० | षष्ट्यै, षष्टये | सप्तत्यै, सप्ततये |
| प० | षष्ट्या , षष्टे | सप्तत्या , सप्तते |
| ष० | षष्ट्या , षष्टे | सप्तत्या , सप्तते |
| स० | षष्ट्याम्, षष्टौ | सप्तत्याम्, सप्ततौ |

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते है।

(थ) शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, अब्ज, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध शब्द केवल नपुसकलिङ्ग मे होते हैं और इनके रूप फल के अनुसार तीनो वचनो मे चलते है।

(द) 'लक्षा' (स्त्री०) के रूप 'विद्या' के समान और 'कोटि' के 'रुचि' के समान होते हैं।

(ध) 'खर्व' और 'निखर्व' पुल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग दोनो होते है। पु० के रूप 'बालक' के समान तथा नपु० के रूप 'फल' के समान होते है। 'जलधि' (पु०) के रूप 'कवि' के समान तथा 'शङ्कु' के रूप 'भानु' के समान चलते है—

९३—पूरकसख्यावाची (Ordinal numeral adjectives) शब्दो के रूप इस प्रकार चलते है—

(क) 'प्रथम' शब्द के रूप ८९ (क) मे उल्लिखित है, 'अग्रिम' और 'आदिम' के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते है।

(ख) 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो मे ८९ (ग) मे उदाहृत है।

(ग) 'चतुथ' और इसके आगे के पूरकसख्यावाची शब्दो के रूप यदि अकारान्त पु० हो तो बालक के समान, अकारान्त नपु० हो तो फल के समान, आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हो तो नदी के समान चलते है।

(घ) 'शत' और इसके आगे की सख्याओ के पूरकसख्यावाची शब्द पु० तथा नपुसक० मे 'तम' जोड कर और स्त्रीलिङ्ग मे 'तमी' जोड कर बनते है' जैसे—सहस्रतम, सहस्रतम, सहस्रतमी आदि।

९४—ऊपर सख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दस सहस्र, लक्ष, दश लक्ष आदि के लिए दिये गये हैं। जो सख्याए बीच की है, जैसे १३५, ११०६, १०५१५ आदि, उनके लिए विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो नीचे दिखाया जाता है—

(१) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड देना, यथा—

एक सौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित है—पञ्चत्रिंशदधिक शत मनुष्याणामुपस्थितम्। अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तर शतम्

दो सौ इकतालीस आदमियो के ऊपर जुर्माना लगाया गया और तीन सौ उन्सठ को सजा हुई—मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयो शतयो (एकचत्वारिंशदुत्तरयो शतयो वा) उपरि अर्थदण्ड आदिष्ट, एकोनषष्ट्यधिकाना त्रयाणा शतानामुपरि कायदण्ड ।

एक लाख पन्द्रह हजार तीन सौ बत्तीस—द्वात्रिंशदधिकत्रिशतोत्तरपञ्चदशसहस्राणि एक लक्षञ्च।

इसी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग से और भी सख्याएँ बनायी जा सकती है।

कभी-कभी 'च' जोडते जाते है, जैसे, २३५—द्वे शते पञ्चत्रिंशच्च।

(२) कभी-कभी सख्याओ के बोलने मे हम लोग दो कम दो सौ, चार कम पाँच सौ इत्यादि मे 'कम' शब्द का प्रयोग करते है। सस्कृत मे इस 'कम' शब्द का बोधक 'ऊन' शब्द जोडा जाता है, यथा—दो कम दो सौ—द्व्यूने शते, द्व्यून शतद्वय, द्व्यूनशतद्वयी इत्यादि। चार कम पाँच सौ—चतुरूनपञ्चशतानि, चतुरून शतपञ्चतम् इत्यादि। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी सख्याएँ ऊपर दे दी गयी हैं।

**६५—क्रम का भेद बतलाने के लिए सस्कृत के शब्द बहुधा 'सर्वनाम' मे सम्मिलित किये जाते हैं। वस्तुत ये क्रमवाची विशेषण है, इसलिए यहाँ दिये जाते हैं। मुख्य २ ये है—**

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो मे से एक के विषय मे कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिए यह शब्द प्रयोग मे आता है) इतर (दूसरा) तथा किम्, यद् और तद् सर्वनामो मे डतर और डतम प्रत्यय जोड कर बने हुए कतर (दो मे से कौन सा), कतम (दो से अधिक मे से कौन सा), यतर (दो मे से जो सा), यतम् (दो से अधिक मे से जो सा), ततर (दो मे से वह सा), ततम (दो से अधिक मे से वह सा), शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो मे चलते हैं और एक समान होते है। उदाहरण के लिए 'अन्य' शब्द के रूप दिखाये जाते है—

## अन्य—दूसरा

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अन्य | अन्यौ | अन्ये |
| द्वि० | अन्यम् | अन्यौ | अन्यान् |
| तृ० | अन्येन | अन्याभ्याम् | अन्यै |
| च० | अन्यस्मै | अन्याभ्याम् | अन्येभ्य |
| प० | अन्यस्मात्, द् | अन्याभ्याम् | अन्येभ्य |
| ष० | अन्यस्य | अन्ययो | अन्येषाम् |
| स० | अन्यस्मिन् | अन्ययो | अन्येषु |

### नपुंसकलिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अन्यत्, द् | अन्ये | अन्यानि |
| द्वि० | अन्यत्, द् | अन्ये | अन्यानि |
| तृ० | अन्येन | अन्याभ्याम् | अन्यै |
| च० | अन्यस्मै | अन्याभ्याम् | अन्येभ्य |
| प० | अन्यस्मात्, द् | अन्याभ्याम् | अन्येभ्य |
| ष० | अन्यस्य | अन्ययो | अन्येषाम् |
| स० | अन्यस्मिन् | अन्ययो | अन्येषु |

### स्त्रीलिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | अन्या | अन्ये | अन्या |
| द्वि० | अन्याम् | अन्ये | अन्या. |
| तृ० | अन्यया | अन्याभ्याम् | अन्याभि |
| च० | अन्यस्यै | अन्याभ्याम् | अन्याभ्य |
| प० | अन्यस्या | अन्याभ्याम् | अन्याभ्य |
| ष० | अन्यस्या | अन्ययो | अन्यासाम् |
| स० | अन्यस्याम् | अन्ययो | अन्यासु |

(ख) पूव (पहला अथवा पूर्वी), अवर (बाद वाला अथवा पश्चिमी), दक्षिण (दक्खिनी), उत्तर (उत्तरी), पर (दूसरा), अपर (दूसरा) और अधर (नीचे वाला) शब्दो के रूप एक समान चलते है और तीनो लिङ्गो मे होते है। उदाहरण के लिए 'पूर्व' शब्द के रूप दिये जाते है।

## पूर्व (पहला अथवा पूर्वी)

### पुल्लिङ्ग

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० | पूर्व | पूर्वौ | पूर्वे, पूर्वा |
| द्वि० | पूर्वम् | पूर्वौ | पूर्वान् |
| तृ० | पूर्वेण | पूर्वाभ्याम् | पूर्वै |
| च० | पूर्वस्मै | पूर्वाभ्याम् | पूर्वेभ्य |
| प० | पूर्वस्मात्, द्, पूर्वात्, द् | पूर्वाभ्याम् | पूर्वेभ्य |
| ष० | पूर्वस्य | पूर्वयो | पूर्वेषाम् |
| स० | पूर्वस्मिन्, पूर्वे | पूवयो | पूर्वेषु |

### नपुसकलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पूर्वम् | पूर्वे | पूर्वाणि |
| द्वि० | पूर्वम् | पूर्वे | पूर्वाणि |

तृतीया से सप्तमी तक पुल्लिङ्ग जैसा ही रूप होता है।

### स्त्रीलिङ्ग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पूर्वा | पूर्वे | पूर्वा |
| द्वि० | पूर्वाम् | पूर्वे | पूर्वा |
| तृ० | पूर्वया | पूर्वाभ्याम् | पूर्वाभि |
| च० | पूर्वस्यै | पूर्वाभ्याम् | पूर्वाभ्य |
| प० | पूर्वस्या | पूर्वाभ्याम् | पूर्वाभ्य |
| ष० | पूर्वस्या | पूर्वयो | पूर्वासाम् |
| स० | पूर्वस्याम् | पूर्वयो | पूर्वासु |

[illegible] के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नही [illegible] आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द वि[illegible] के साथ दिये जाते हैं, जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर [illegible] मुझमे वह अच्छा है अथवा ज्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु सस्कृत मे बहुधा अधिक आदि शब्द जोड कर तुलना नही की जाती, जैसे, 'गोपाल श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति'—यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से चाहे गलत न हो तब भी उसमे हिन्दीपन की गन्ध आती है। सस्कृत मे विशेषणो की तुलना करने के लिए उनमे प्रत्यय जोडे जाते हैं।

(क) तुलना द्वारा दो[1] मे से एक अतिशय दिखाने के लिए विशेषण मे तरप् (तर) या ईयसुन् और दो से अधिक[2] मे से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् (तम) या इष्ठन् प्रत्यय जोडे जाते हैं, परन्तु ईयसुन् और इष्ठन् गुणवाचक[3] विशेषणो के अनन्तर ही जोडे जाते हैं, तरप् तथा तमप् इनके अतिरिक्त अन्य विशेषणो मे भी। तरप् और तमप् के कुछ उदाहरण ये हैं—

| | | |
|---|---|---|
| कुशल | कुशलतर | कुशलतम |
| चतुर | चतुरतर | चतुरतम |
| विद्वस् | विद्वत्तर | विद्वत्तम |
| धनिन् | धनितर | धनितम |
| महत् | महत्तर | महत्तम |
| गुरु | गुरुतर | गुरुतम |
| लघु | लघुतर | लघुतम |
| पाचक | पाचकतर | पाचकतम |

इन परिवर्त्तित विशेषणो के रूप विशेष्य के अनुसार होते हैं।

जहाँ तरप् अथवा ईयसुन् एव तमप् अथवा इष्ठन् दोनो जोडने की अनुमति है, वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोडना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है।

१ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।

२ अतिशायने तमबिष्ठनौ ।५।३।५५।

३ अत्रादी 'गुणवचनादेव ।५।३।५८।

इन दो प्रत्ययो के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यंजन हो तो उसका भी लोप हो जाता है[1] (यथा—पटु का केवल पट् रह जाता है, लघु का लघ्, धनिन् का धन्)। कही-कही और भी अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ—

| | | | |
|---|---|---|---|
| पटु | — | पटीयस्, | पटिष्ठ |
| लघु | — | लघीयस्, | लघिष्ठ |
| धनिन् | — | धनीयस्, | धनिष्ठ |
| अन्तिक | — | नेदीयस्, | नेदिष्ठ |
| अल्प[2] | — | अल्पीयस्, / कनीयस्, | अल्पिष्ठ / कनिष्ठ |
| यवन्[3] | — / — | यवीयस्, / कनीयस्, | यविष्ठ / कनिष्ठ |
| ह्रस्व[4] | — | ह्रसीयस्, | ह्रसिष्ठ |
| क्षिप्र | — | क्षेपीयस्, | क्षेपिष्ठ |
| क्षुद्र | — | क्षोदीयस्, | क्षोदिष्ठ |
| स्थूल | — | स्थवीयस्, | स्थविष्ठ |
| दूर | — | दवीयस्, | दविष्ठ |
| दीर्घ | — | द्राघीयस्, | द्राघिष्ठ |
| गुरु | — | गरीयस्, | गरिष्ठ |

१ टे ।६।१।५५। भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु। सि० कौ०।

२ अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ।५।३।६३। इष्ठन् तथा ईयसुन् प्रत्यय के जुटने पर अन्तिक (निकट) के स्थान पर नेद तथा बाढ (भला) के स्थान पर साध आदेश होता है।

३ युवाल्पयो कनन्यतरस्याम् ।५।३।६४। युवन् तथा अल्प शब्दो के स्थान में विकल्प से कन् आदेश हो जाता है।

४ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणा यणादिपर पूर्वस्य च गुण ।६।४।१५६। पूर्वोक्त शब्दो मे परवर्त्ती य र, ल, व (यण् प्रत्याहार के वर्णो) का लोप हो जाता है और पूर्व के स्वर का गुण हो जाता है। इस प्रकार क्षिप्र के र का लोप हो जायगा तथा क्षिप् को क्षेप् हो जायगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| उरु | — | वरीयस्, | वरिष्ठ |
| प्रिय[1] | — | प्रेयस्, | प्रेष्ठ |
| बहुल | — | बहीयस्, | बंहिष्ठ |
| कृश* | — | क्रशीयस, | क्रशिष्ठ |
| प्रशस्य[2] | — | श्रेयस्, ज्यायस्, | श्रेष्ठ ज्येष्ठ |
| वृद्ध[3] | — | ज्यायस्, वर्षीयस्, | ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ |
| स्थिर | — | स्थेयस् | स्थेष्ठ |
| स्फिर | — | स्फेयस्, | स्फेष्ठ |
| तृप्र* | — | त्रपीयस्, | त्रपिष्ठ |
| दृढ* | — | द्रढीयस्, | द्रढिष्ठ |

१ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्तदीर्घवृन्दारकाणा प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रप्द्राघिवृन्दा ।६।४।१५७। प्रिय के स्थान मे प्र, स्थिर के स्थान मे स्थ, स्फिर के स्फ, उरु के वर्, बहुल के बहि, गुरु के गर्, वृद्ध के वर्षि, तृप्त के त्रप्, दीर्घ के द्राघि तथा वृन्दारक के स्थान मे वृन्द हो जाता है।

*र ऋतो हलादेलघो ।६।४।१६१। लघु ऋकार के स्थान मे र् आदेश हो जाता है, इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् प्रत्यय के जुटने पर, किन्तु उस ऋकार के पूर्व कोई व्यञ्जन वर्ण अवश्य रहना चाहिए।

२ प्रशस्यस्य श्र ।५।३।६०। ईयसुन् और इष्ठन् जुडने पर प्रशस्य को 'श्र' आदेश हो जाता है। इस प्रकार श्रेयस् और श्रेष्ठ रूप होते हैं। फिर 'ज्य च' ।५।३।६१। के अनुसार 'ज्य' भी आदेश होता है। अतएव ज्यायस और ज्येष्ठ भी रूप बनेगे।

३ वृद्धस्य च ।५।३।६२। ईयसुन् और इष्ठन् जुडने पर वृद्ध शब्द के स्थान मे भी 'ज्य' हो जाता है। फिर ज्यादादीयस ।६।४।१६०। के अनुसार 'ज्य' के अनन्तर ईयसुन् के ईकार का आकार हो जाता है। इस प्रकार वृद्ध+ईयस्= =ज्य+ईयस्=ज्य+आयस्=ज्यायस् शब्द बना, जिसके ज्यायान् इत्यादि रूप होगे। उपर्युक्त नोट (१) के अनुसार वृद्ध को 'वर्षि' भी आदेश होता है। इस प्रकार वर्षीयस् और वर्षिष्ठ भी रूप सिद्ध होगे।

| | | | |
|---|---|---|---|
| मृदु | — | म्रदीयस्, | म्रदिष्ठ |
| बहु[1] | — | भूयस्, | भूयिष्ठ |

---

१ बहोर्लोपो भू च बहो ।६।४।१५८। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर बहु को 'भू' आदेश हो जाता है और उसके बाद आने वाले ईयसुन् के ईकार का लोप हो जाता है। इसी प्रकार 'इष्ठस्य यिट् च' ।६।४।१५९। के अनुसार बहु के बाद आने वाले इष्ठन् के इकार का भी लोप हो जाता है और उसके स्थान पर 'यि [illegible]।

# षष्ठ सोपान

## कारक-विचार

९७—पहले कह चुके है कि सस्कृत मे प्रातिपदिको (क्रिया से इतर) की सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियो का किन अर्थों मे प्रयोग होता है, यह इस परिच्छेद मे दिखाया जायगा।

'कारक' का अर्थ है ऐसी वस्तु, जिसका क्रिया के सम्पादन मे उपयोग हो। उदाहरण के लिए 'अयोध्या म रघु ने अपने हाथ से लाखा रुपये ब्राह्मणो को दान दिये', इस वाक्य मे दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन-जिन वस्तुओ का उपयोग हुआ वे 'कारक' कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है, यहाँ अयोध्या मे हुई, इसलिए 'अयोध्या' कारक हुई, इस क्रिया के करने वाले रघु थे, इसलिए रघु' कारक हुए, यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई, इसलिए 'हाथ' कारक हुआ, रुपये दिये गये, इसलिए 'रुपये' कारक हुए और ब्राह्मणो को दिये गये, इसलिए 'ब्राह्मण' कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार छ सम्बन्ध स्थापित होते है—

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता

क्रिया का कम—कर्म

क्रिया का सम्पादन जिमकी सहायता से हो—करण

क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान

क्रिया जिससे निकले या जिससे दूर हो—अपादान

क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

इस प्रकार कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छ कारक[1] हुए। इन्ही कारको के व्यवहार मे विभक्तियाँ आती हैं।

---

१ कर्त्ता कर्म च करण सम्प्रदान तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहु कारकाणि षट्॥

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है। 'गोविन्द के लडके गोपाल को श्याम ने पीटा'—ऐसे वाक्यो मे पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नही है। इसलिए "गोविन्द के" को कारक नही कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है, किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन मे उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नही होता। अत सम्बन्ध मे की गयी षष्ठी विभक्ति कारक विभक्ति नही मानी जाती।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियो के प्रयोग पर विचार होगा।

## ९८—प्रथमा

### (क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा।२।३।४६।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल (प्रातिपदिक अवस्था मे) शब्द का अर्थ बतलाने के लिए अथवा केवल लिङ्ग[1] बतलाने के लिए अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ —

(१) केवल[2] प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है, शब्द, जिसको अँग्रेजी मे बेस् (Base) या क्रूड् फार्म (Crude form) कहते है। प्रत्येक शब्द

---

१ यद्यपि सूत्र का अक्षरार्थ तो केवल प्रातिपदिकाथ, केवल लिङ्ग, केवल परिमाण तथा केवल वचन को प्रकट करने के लिए प्रथमा का विधान करता है, परन्तु चूंकि प्रातिपदिकार्थ के बिना लिङ्गादि की प्रतीति असमभव है, अतएव प्रातिपदिक के लिङ्गादि अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

२ 'केवल प्रातिपदिक का अर्थ प्रकट करने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है'—इसके उदाहरण वे ही शब्द हो सकते हैं, जो या तो अलिङ्ग हैं अर्थात् किसी लिङ्ग का बोध नही कराते, जैसे उच्चै , नीचै इत्यादि, अथवा नियत (निश्चित) लिङ्ग वाले हैं, जैसे कृष्ण , श्री , ज्ञानम् इत्यादि। जो अनियतलिङ्ग होते हैं, उनमे लिङ्गमात्र अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा होती है, जैसे तट , तटम् इत्यादि (अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्रविषयस्य—सि० कौ०)।

का कुछ नियत अर्थ होता है, परन्तु सस्कृत के वैयाकरणो के हिसाब से किसी शब्द मे जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्त पदम्) न बना लिया जाय, तब तक उसका अर्थ नही समझा जा सकता। अतएव यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते है, जैसे यदि केवल 'राम' उच्चारण करे तो सस्कृत मे यह शब्द निरर्थक होगा, यदि "राम" कहे तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसीलिए सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही मे नही, प्रत्युत अव्ययो तक मे भी सस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते है, जैसे नीचै, उच्चै आदि। यदि न लगाएँ तो उन अव्ययो का अर्थ ही न निकले।

(२) प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्ग—ऐसे श० जिनमे लिङ्ग नही होता (जैसे उच्चै आदि अव्यय) और ऐसे शब्द जिनका लिङ्ग नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुल्लिङ्ग मे होता है (जैसे वृक्ष) अथवा केवल नपुसकलिङ्ग मे होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग मे होता है (जैसे कन्या)—इनको छोडकर बाकी शब्दो के अर्थ और लिङ्ग दोनो प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पडते है, जैसे तट, तटी, तटम्। इन शब्दो मे 'तट' से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुल्लिङ्ग मे है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटी' स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटम्' नपुसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है।

(३) केवल परिमाण जैसे—प्रस्थो व्रीहि यहाँ प्रथमा विभक्ति से प्रस्थ अर्थात् आधसेर का परिमाण विदित होता है। कितना चावल? आध सेर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है।

(४) केवल वचन (सख्या)—जैसे एक, द्वौ, बहव।

## (ख) सम्बोधने च।२।३।४७।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने मे भी होता है, जैसे—हे बालका? (हे बालको), हे कन्या? (हे कन्याओ) आदि। इसलिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नही मानते। ऊपर सज्ञाओ के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कही-कही दिये गये हे, इससे यह नही समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी आठवी विभक्ति होती है। रूप केवल आसानी के लिए दिये गये है, क्योकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एकवचन मे कुछ अन्तर पड जाता है।

(घ) संस्कृत-व्याकरणो मे ऊपर (क) और (ख) मे लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि सारे संस्कृत-साहित्य मे कर्तृवाच्य के कर्ता (बालक गच्छति, कन्या फलमश्नुते, लुब्धका वृक्षमारोहन्ति) और कर्मवाच्य के कर्म (हरि सेव्यते, पित्रा पुत्र ताड्यते, भ्रात्रा भगिनी पाठ्यते, भोजन स्वाद्यते) मे जो प्रथमा विभक्ति मिलती है, वह किस नियम अथवा सूत्र से सिद्ध होनी चाहिए। इसका समाधान इस प्रकार है। संस्कृत भाषा मे क्रिया अथवा व्यापार को ही वाक्य मे प्रधानत्व दिया गया है। क्या करना है, इसके बारे मे सबसे पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए, फिर कर्त्ता, कर्म आदि आवेंगे। ऊपर कारक (९७) का व्याख्यान करते समय कह आये हैं कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है। अन्य भाषाओ मे किसी मे कर्म को प्रधानत्व दिया गया है और किसी मे कर्त्ता को, जैसे अँग्रेजी मे कर्त्ता को। अँग्रेजी मे कर्त्ता निश्चित हो जाता है, फिर उसके अनुसार क्रिया, कर्म आदि आते हे। परन्तु संस्कृत मे क्रिया का निश्चय हो जाना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध मे अन्य कारक शब्द आते हैं। क्रिया बतला दी जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो, उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए, अब 'गच्छति' से इन बातो का बोध होता है—

(१) क्रिया वर्तमान काल मे हो रही है।

(२) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है। अब कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमे "गच्छति" शब्द आता हो, जैसे—

राम ग्राम गच्छति।

इस वाक्य मे दो शब्द है, जो अन्यपुरुष और एकवचन मे है, अर्थात् 'राम' और 'ग्रामम्'। 'ग्रामम्' कर्मस्थानीय है—यह आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रो से व्यक्त हो जायगा इसलिए यह कर्त्ता हो नही सकता, बाकी बचा 'राम' शब्द, यही कर्त्ता हो सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय मे भी क्रिया के साथ जिस शब्द का अन्वय लग जायगा, वही कर्म होगा, जैसे—'सेव्यते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष एकवचन की संज्ञा कर्म हो सकती है। अब

जिस वाक्य मे 'सेव्यते' क्रिया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही से सिद्ध हो अन्य से नही, वही कर्म होगा, जैसे—हरि सेव्यते इत्यादि मे 'हरि'।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य मे क्रिया का कर्त्ता और कर्मवाच्य मे क्रिया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति मे होते हैं।

---

## ६९—द्वितीया

### (क) कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।१।४।४९।

"किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों मे से जिसको कर्त्ता सबसे अधिक चाहता है उसे कर्म कहते है,' पाणिनि ने कर्म कारक की इस प्रकार परिभाषा दी है।

"जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल समाप्त होता है, उसे कर्म कहते हैं" यह हिन्दी तथा अँग्रेजी मे कमकारक का लक्षण बतलाया जाता है, किन्तु साहित्य मे ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नही माने जाते जैसे—'वह घर जाता है'। यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य 'घर' पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणत कर्म नही माना जाता। सस्कृत मे भी 'घर' को साधारण नियमो के अनुसार कर्म नही मानते, न 'जाना' को सकर्मक क्रिया मानते है। घर को कम मानने के लिए साधारण नियमो के अतिरिक्त विशेष नियम है। इसी प्रकार और भी स्थल दिखाये जायँगे जो कम के साधारण लक्षण के अनुसार कर्म के अन्तर्गत नही होते और जिन्हे कर्म-सज्ञा देने के लिए विशेष सूत्रो की रचना करनी पडी।

कर्त्ता जिस क्रियान्वयी पदाथ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चाह या इच्छा रखता है, उसे कम कहते हैं।

(१) कर्त्ता की चाह का अभिप्राय यह है कि यदि कोई पदार्थ कर्मादि का अभीष्टतम हो परन्तु कर्त्ता को उसकी प्राप्ति अभीष्ट न हो तो उसकी कर्मसज्ञा नही होगी, जैसे 'माषेस्वश्व बध्नाति' (उडद के खेत मे घोडे को बाँधता है)—इस वाक्य मे बाँधने वाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व ही को वशगत करना चाहता है। अतएव बन्धनव्यापार द्वारा अश्व ही कर्त्ता का अभीष्ट है,

उडद नही। उडद की चाह अश्व को हो सकती है और उसके प्रलोभन से अश्व का बाँधना सुगमतर भी हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को यहाँ उसकी चाह नही है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्त्ता की इच्छा का ही प्राधान्य कर्मनिर्धारण मे निर्णायक होता है, न कि कर्त्ता से अतिरिक्त अन्य किसी की इच्छा का प्राधान्य।

(२) जिसे कर्म सज्ञा दी जायगी, वह पदाथ कर्त्ता की क्रिया द्वारा उस (कर्त्ता) को अभीष्टतम होना चाहिए, अर्थात् यदि उसी क्रिया से कोई पदार्थ ऐसे सम्बद्ध हो जिन सभी की सामान्य चाहना कर्त्ता रखता है तो उन सबो मे जो सब से अधिक ईप्सित होगा, वही कर्मसज्ञा प्राप्त करेगा, दूसरे नही। जैसे 'पयसा ओदन भुक्ते' (दूध से भात खाता है)––इस वाक्य मे दूध भी भात ही की तरह कर्त्ता को प्रिय है, पर कर्त्ता अपने भोजनव्यापार द्वारा जिसको सबसे अधिक पाना चाहता है,वह भात है, न कि दूध। क्योकि दूध पेय है, भोज्य नही, वह तो केवल भोजन-क्रिया के सम्पादन मे सहायक है।

(३) इसी कारण 'ब्राह्मणस्य पुत्र पन्थान पृच्छति'––इस वाक्य मे यद्यपि पूछने वाला कर्त्ता पुत्र की अपेक्षा विज्ञ ब्राह्मण से ही रास्ता पूछना अधिक पसन्द करेगा, तथापि ब्राह्मण की कर्मसज्ञा नही हो सकती, क्योकि ब्राह्मण का 'पृच्छति' क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध न होकर पुत्र के साथ विशेष सम्बन्ध है।

## (ख) कर्मणि द्वितीया ।२।३।२।

कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे––

भक्त हरि को भजता है। इसमे 'हरि को' कम है, इसलिए हरि शब्द मे द्वितीया करनी होगी––भक्तो हरि भजति। ब्रह्मचारी वेदमधीते।

## तथायुक्त चानीप्सितम् ।१।४।५०।

(क) कुछ पदार्थ ऐसे भी होते है जो कि कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होते हुए भी ईप्सित ही की तरह क्रिया से सटे रहते है। उनकी भी कर्मसज्ञा होती है। जैसे, 'ओदन भुञ्जानो विष भुक्ते' इस वाक्य मे 'विष' अत्यन्त अनीप्सित है, परन्तु 'ओदन' (जो भोजन क्रिया द्वारा कर्त्ता का ईप्सिततम् है) की ही तरह वह भी उस क्रिया से सटा हुआ है और ओदन भोजन के साथ उसके भोजन का भी रहना अनिवार्य है। अत 'विष' भी कर्मसज्ञक हो जायगा। इस प्रकार 'ग्राम गच्छन् तृण स्पृशति'––इस वाक्य मे भी 'तृण' कर्मसज्ञक होगा।

## (ग) अकथितं च ।१।४।५१।

(ख) अपादान इत्यादि के द्वारा अविवक्षित कारक 'अकथित' कम कहलाता है।

बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कई एक धातुओ के कर्मों के साथ नियत रूप मे सम्बद्ध रहते हैं और वस्तुत वे कर्म के अतिरिक्त अन्य कारको के अर्थ को द्योतित करते हैं। वे ही गौण कर्म के रूप मे स्वीकार कर लिये जाते है। अत इनके लिए द्वितीया विभक्ति का ही विधान होता है। यह नियम—

## (घ) दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् । कर्मयुक् स्यादकथित तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

इस कारिका मे गिनायी गयी धातुओ के ही लिए है। इनमे इन धातुओ की पर्यायवाची धातुएँ भी सम्मिलित समझनी चाहिए।

(१) 'गा दोग्धि पय'—यहाँ पर 'गाय से दूध दुहता है' ऐसा अर्थ निकलने के कारण 'गाय' सामान्यत अपादान कारक है, इसलिए उसमे पञ्चमी विभक्ति होनी चाहिए। परन्तु यहाँ पर 'गाय' दूध के निमित्तमात्र के रूप मे गृहीत है, अवधि-रूप मे नही। अतएव उपर्युक्त नियम के अनुसार 'गाय' की कमसज्ञा हुई। इस वाक्य से अभिप्राय यह निकला कि पय कमक गोसम्बन्धी दोहन-व्यापार हुआ। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'गोर्दोग्धि पय' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(२) 'बलि याचते वसुधाम्'—यहाँ 'बलि' गौण कर्म है। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'बलेर्याचते वसुधाम्'—यह प्रयोग होगा।

(३) 'तण्डुलानोदन पचति'—यहाँ 'तण्डुल' वस्तुत करणार्थक है, परन्तु वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नही, अतएव वह गौण कर्म के रूप मे अवस्थित हो गया है।

(४) गर्गान् शत दण्डयति।

(५) 'व्रजमवरुणद्धि गाम्'—यहाँ सामान्यत 'व्रज' आधार होता, परन्तु आधार की विवक्षा न होने के कारण उपर्युक्त नियम के अनुसार अकथित कर्म हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

(६) माणवक पन्थान पृच्छति।

(७) वृक्षमवचिनोति फलानि।

(८) माणवक धर्म ब्रूते शास्ति वा।

(९) शत जयति देवदत्तम्।

(१०) सुधा क्षीरनिधि मथ्नाति।

(११) देवदत्त शत मुष्णाति।

(१२) ग्राममजा नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

इन धातुओ की समानार्थक[1] धातुए भी द्विकर्मक होती हैं, जैसे—माणवक धर्म भाषते वक्ति वा, बलि वसुधा भिक्षते इत्यादि।

ऊपर कही हुई 'दुहादि' धातुओ के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता है, वे अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं, जैसे—दुह् का प्रधान कर्म दूध' है, दूध से सम्बन्ध रखने वाली है गाय, 'गाय' अकथित अथवा अप्रधान कम है। इसी प्रकार "अवरुणद्धि" का प्रधान कम "गाय" है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला "बाडा" है, "बाडा" अकथित कर्म है। 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र के अनुसार इस अकथित कम मे द्वितीया विभक्ति हुई है।

पय, वसुधा, ओदन इसलिए प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योकि वे कर्ता के इष्टतम हैं और कर्म छोडकर दूसरे कारक हो ही नही सकते। गाम्, व्रजम्, माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं क्योकि वे कर्म के अतिरिक्त दूसरे कारक भी हो सकते हैं, जैसे—

| | | |
|---|---|---|
| "गा दोग्धि पय" | के बदले | गो (पञ्चमी) दोग्धि पय। |
| "व्रजम् अवरुणद्धि गाम्" | ,, ,, | व्रजे अवरुणद्धि गाम्। |
| "माणवक पन्थान पृच्छति" | ,, ,, | माणवकात् पन्थान पृच्छति। |

**(ङ) अकर्मकधातुभिर्योगे देश· कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् (वार्त्तिक)**—अकर्मक धातुओ के योग मे देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म समझे जाते हैं, जैसे—

(१) कुरून् स्वपिति—कुरुदेश मे सोता है ('कुरून्' देशव्यञ्जक है)।

---

१ अर्थनिबन्धनेय सज्ञा। बलि भिक्षते वसुधाम्। माणवक धर्म भाषते अभिधत्ते, वक्तीत्यादि।—'अकथितञ्च' ।१।४।५१। पर सि० कौ०।

(२) मासमास्ते—महीने भर रहता है ('मासम्' कालव्यञ्जक है)

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की क्रिया जितनी देर होती है उतनी देर तक रहता है ('गोदोहम्' भावव्यजक है)।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर मे रहता है ('क्रोशम्' मार्गव्यञ्जक है)।

## (च) अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६।

शी, स्था तथा आस् धातुओ के पूर्व यदि 'अधि' उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओ का आधार कर्म कहलाता है अर्थात् जिस स्थान पर इन धातुओ की क्रियाएँ होती हैं, वह कर्म होता है जैसे—

चन्द्रापीड मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिश्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्धासन गोत्रभिदोऽधितस्थौ—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था।

भूपति सिंहासनम् अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहाँ ये क्रियाएँ पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हैं, हुई हैं। इसलिए इन शब्दो को कर्म कहेंगे और इनमे द्वितीया विभक्ति होगी। यदि 'अधि' उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अधिकरण होने के कारण उसमे सप्तमी होती—शिलापट्टे शिश्ये, अर्धासने तस्थौ, सिंहासने आस्ते।

## (छ) अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक होता है, जैसे—

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे माग का अनुसरण करता है।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है, जिसके ऊपर आपका मन लगा है।

यदि 'अभि-नि' साथ-साथ न आकर केवल एक ही आवे तो द्वितीया न होगी, जैसे—

'निविशते यदि शूकशिखा पदेरु (नैषध)

## (ज) उपान्वध्याङ्वस· ।१।४।४८।

यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ मे से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है, जैसे—

हरि वैकुण्ठम्[१] उपवशति
हरि वैकुण्ठम्[२] अनुवसति
हरि वैकुण्ठम्[३] अधिवसति
हरि वैकुण्ठम्[४] आवसति
परन्तु हरि वैकुण्ठे वसति।

} हरि वैकुण्ठ मे वास करते है।

अन्तिम वाक्य मे 'वसति' का आधार "वैकुण्ठ" कर्म नही हुआ क्योकि "वसति" के पूर्व उप, अनु, अधि, आ मे से कोई उपसर्ग नही लगा है।

## (झ) अभुक्त्यर्थस्यतु न (वार्त्तिक)

जब "उपवस्" का अर्थ "उपवास करना, न खाना" होता है, तब "उपवस्" का आधार कर्म नही होता, अधिकरण ही रहता है, जैसे—वने उपवसति—वन मे उपवास करता है।

## (ञ) अकर्मक क्रिया

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षात कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥

(१) जब धातु का अर्थ बदल जाय जैसे 'वह्' धातु का अर्थ है 'ढोना' (ले जाना), पर 'नदी वहति' इस प्रयोग मे 'वह्' का अर्थ स्यन्दन करना है,

(२) जब धातु के अर्थ मे ही कर्म समाविष्ट हो जैसे 'जीवति' इस प्रयोग मे 'जीवन जीवति' इस प्रकार का अर्थ गम्य होने के कारण जीवन की कर्मता छिपी हुई है,

(३) जब धातु का कर्म अत्यन्त प्रख्यात हो, जैसे 'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' का कर्म 'जलम्' अत्यन्त लोकविख्यात है।

(४) और जब कर्म का कथन अभीष्ट न हो जैसे (हिताम्न य सश्रृणुते स किं प्रभु' इस प्रयोग मे 'हित' कर्म है, पर उसे कर्म बतलाना वक्ता को अभीष्ट नही।

---

**१, २, ३, ४ ये सभी वास्तव मे अधिकरण हैं, किन्तु नियमविशेष से कर्म हो गये हैं।**

सब सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं। इसके विपरीत अकर्मक धातुएँ भी उपसर्गपूर्वक होने पर प्राय सकर्मक हो जाती हैं, जैसे 'प्रभुचित्तमेव जनोऽनुवर्तते' 'अचलतुङ्गशिखरमारुरोह', 'नोत्पतति वा दिवम्' ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति' इत्यादि।

## (ट) उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु[1] त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि[2] दृश्यते॥

उभय, सर्वत, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽध तथा अध्यधि शब्दो का जिससे सयोग हो तो उसमे द्वितीया होती है, जैसे—

उभयत कृष्ण गोपा—कृष्ण के दोनो ओर ग्वाले हैं।
सर्वत कृष्ण गोपा—कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं।
धिक् पिशुनम्—चुगुलखोर को धिक्कार है।
धिक् त्वा पापिनम्—तुझ पापी को धिक्कार है।
उपर्युपरि लोक ह`र—हरि लोक के ठीक ऊपर हैं।
अधोऽधो लोक पाताल—पाताल लोक के ठीक नीचे है।
नवान् मेघान् अधोऽध—नये बादलो के ठीक नीचे।
अध्यधि लोकम्—ससार के ठीक ऊपर।

**नोट**—ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि 'दोनो ओर', 'सभी ओर', 'ठीक ऊपर', 'ठीक नीचे' के साथ हिन्दी मे 'का' परसर्ग लगता है, किन्तु सस्कृत मे 'का' की स्थानीय षष्ठी न लगकर द्वितीया लगती है। अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

---

१ धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं, जैसे—धिगिय दरिद्रता, धिगर्था कष्टसश्रया, धिङ् मूढ।

२ उपर्यध्यधस सामीप्ये।८।१।७। अर्थात् 'सामीप्य' के अर्थ मे उपरि, अधि तथा अध आम्रेडित (द्विरुक्त) होते हैं। परन्तु यदि सामीप्य अर्थ न हो तो षष्ठी ही होती है, जैसे—'उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा' (महाभारत)

## (ठ) अभित:परित:समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वार्त्तिक)

अभित (चारो ओर या सब ओर), परित (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ़) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध मे प्रयुक्त हो, उसमे द्वितीया होती है, जैसे—

परिजन राजानम् अभित तस्थौ—नौकर राजा के चारो ओर खडे थे।

रक्षासि वेदी परितो निरास्थत्—राक्षसो को वेदी के चारो ओर से निकाल दिया।

ग्राम समया निकषा वा—ग्राम के समीप।

हा[1] शठम्—हाय शठ!

मातु हृदय कन्या प्रति स्निग्ध भवति—माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी और सस्कृत दोनो के प्रयोगो मे विभिन्नता है। प्रति के साथ हिन्दी मे षष्ठी लगती है, सस्कृत मे द्वितीया। इसी प्रकार अभित , परित , समया, निकषा के साथ भी होता है।

## (ड) अन्तराऽन्तरेण युक्ते।२।३।४।

अन्तरा (बीच मे), अन्तरेण (विषय मे, बिना, छोड कर) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध मे प्रयुक्त हो, उसमे द्वितीया होती है, जैसे—

अन्तरा त्वा मा हरि—तुम्हारे हमारे बीच मे हरि हैं।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे मे कुछ नही जानता हूँ।

त्वामन्तरेण कोऽन्य प्रतिकर्तुं समर्थ—तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला लेने मे समर्थ है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी मे षष्ठी होती है और सस्कृत मे द्वितीया।

१ हा के साथ कभी-कभी सम्बोधन भी होता है, जैसे—हा भगवत्यरुन्धति!

### (ढ) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ।२।३।५।

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द मे द्वितीया होती है जैसे—

चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढता रहा।

सहस्र वर्षाणि राक्षस तपस्तप्तवान्—राक्षस हजार वर्ष तक लगातार तप करता रहा।

क्रोश कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन् कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी है।

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता।
छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराऽभवत् ॥

वानरश्रेष्ठ (हनुमान् जी) की परछाई जो कि दस योजन चौडी और तीस योजन लम्बी थी, जल मे अधिक सुन्दर लगती थी।

### (ण) एनपा द्वितीया ।२।३।३१।

एनप् प्रत्ययान्त शब्द का जिस शब्द से सम्बन्ध होता है, उसमे द्वितीया या षष्ठी होती है, जैसे—

ग्राम ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर।

तत्रागार धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम्—वहाँ पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनो शब्दो मे एनप् प्रत्यय है। इन्हे तृतीयान्त नही समझना चाहिए। एनप् प्रत्यय के (अमुक दिशा मे समीप मे इस अर्थ मे) लगने पर शब्द अव्यय-सा ही रहता है—उसका रूप नही चलता।

### (त) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ।२।३।१२।

जब गत्यर्थक धातुओ (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ 'जाना' हो, जैसे, या, गम्, चल्, इण् आदि) का कर्म मार्ग नही रहता है और क्रियानिष्पादन मे शरीर से व्यापार करना पडता है, तो उस कर्म मे द्वितीया या चतुर्थी होती है, जैसे—

गृह गृहाय वा गच्छति।

यहाँ पर 'गृह' मार्ग नही है, बल्कि स्थान है और घर जाने मे हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गो को हिलाना-डुलाना पडता है, इसलिए गृह, गृहाय दोनो होता है। यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो केवल द्वितीया होती है, जैसे—पन्थान गच्छति।

जहाँ शरीर से व्यापार नही करना पडता, वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे—मनसा हरि व्रजति। यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है, जिसमे जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नही हिलाना-डुलाना पडता एव इसमे शरीर-व्यापार नही होता, इसलिए चतुर्थी नही हो सकती। इसी प्रकार—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके।
तदानन मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनय, विनयाद्याति पात्रताम्।
अश्वत्थामा कि न यात स्मृति ते।
पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम।

## (थ) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च।२।३।३५।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दो मे द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है, जैसे—ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूर, दूरेण, दूरात्, दूरे वा।

वनस्य, वनाद् वा अन्तिक, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा।
गृहस्य निकट, निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

## (द) गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्। विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः॥

पूर्व कही हुई द्विकर्मक धातुओ के कर्मवाच्य बनाने मे दुह् से लेकर मुष् तक के गौण कर्म मे और नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म मे प्रथमा लगाते हैं, शेष कर्म मे अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म मे और नी, हृ, कृष्, वह् के गौण कर्म मे द्वितीया होती है, जैसे—

| कर्तृवाच्य | कर्मवाच्य |
|---|---|
| गोप धेनु पयो दोग्धि | गोपेन धेनु पयो दुह्यते |
| देवा समुद्र सुधा ममन्थु | देवै समुद्र सुधा ममन्थे |
| सोऽजा ग्राम नयति, हरति कर्षति, वहति वा | तेन अजा ग्राम नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा। |

## (ध) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ (कर्म)[1] ।१।४।५२।

(१) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—गम्, या, इण् आदि,

(२) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त करना हो, जैसे—बुध् (जानना), ज्ञा (जानना), विद् (जानना) आदि,

(३) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, भुज् आदि,

(४) ऐसी धातुएँ जिनका कम कोई शब्द हो जैसे—पठ् (पढना), उच्चर् (बोलना) आदि, और

(५) ऐसी धातुएँ जिनका कोई कम न हो, जैसे—उत्तिष्ठ (उठना), आस् (बैठना) आदि,

इनका साधारण दशा (अणिजन्त) मे जो कर्त्ता रहता है, वह णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक मे कर्म हो जाता है, जैसे—

> शत्रूनगमयत् स्वर्ग, वेदार्थ स्वानवेदयत् ।
> आशयच्चामृत देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम् ।
> आशयत् सलिले पृथ्वी, य स मे श्रीहरिर्गति ।।

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओ को स्वर्ग भेजा, आत्मीयो को वेद का अर्थ समझाया, देवताओ को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढाया, पृथ्वी को जल मे बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं।

---

१ सामान्यत प्रकृतदशा का कर्त्ता णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रियाओ मे करण होता है और तृतीया मे रखा जाता है, जैसे 'रामो भार्यां त्यजति' का प्रेरणार्थक 'रामेण भार्या त्याजयति' होता है।

| साधारण रूप | प्रेरणार्थक रूप |
|---|---|
| शत्रव स्वर्गमगच्छन् | शत्रून् स्वर्गमगमयत् । |
| स्वे वेदार्थम् अविदु | स्वान् वेदार्थम् अवेदयत् । |
| देवा अमृतम् आश्नन् | देवान् अमृतम् आशयत् । |
| विधि वेदम् अध्यैत | विधि वेदमध्यापयत् । |
| पृथ्वी सलिले आस्त | पृथ्वी सलिले आसयत् । |

( i ) सूत्र मे अकर्मक धातुओ का तात्पर्य उन्ही धातुओ से है जिनका देश, काल इत्यादि से भिन्न कर्म सम्भव नही है, उन धातुओ से नही जो कर्म के अविवक्षित होने के कारण अकर्मक रूप मे प्रयुक्त होती है। अतएव 'मासम् आस्ते देवदत्त' का प्रेरणार्थक प्रयोग होने पर 'देवदत्त' कर्म हो जायगा जैसे, 'मासमासयति देवदत्तम्' परन्तु 'पचति देवदत्त' का 'पाचयति देवदत्तेन' ही होगा, 'पाचयति देवदत्तम्' नही।

( ii ) सूत्र मे 'अणि' अर्थात् अणिजन्त का ग्रहण करने का तात्पर्य यह है कि यदि णिजन्त का कर्त्ता भी किसी अन्य से प्रेरित होकर प्रेरित करता है तो वह कर्म अर्थात् द्वितीयान्त नही होगा, अपितु तृतीयान्त ही प्रयुक्त होगा, जसे, 'गच्छति यज्ञदत्त' यदि इस वाक्य का कर्त्ता 'यज्ञदत्त' देवदत्त से प्रेरित होता है तो वह कर्म होकर द्वितीया मे रखा जायगा—गमयति यज्ञदत्त देवदत्त। अब यदि 'देवदत्त' स्वय विष्णुदत्त से प्रेरित होकर यज्ञदत्त को जाने के लिए प्रेरित करता है तो 'देवदत्त' कर्म नही होगा क्योकि यह अणिजन्त अर्थात् साधारण क्रिया का कर्त्ता नही अपितु णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता है। उस दशा मे वाक्य-रचना इस प्रकार होगी—गमयति यज्ञदत्त देवदत्तेन विष्णुदत्त।

## (न) हृक्रोरन्यतरस्याम् ।१।४।५३।

हृ एव कृ धातुओ के अणिजन्त रूपो का कर्त्ता णिजन्त रुपो मे विकल्प से कर्म होता है, जैसे, 'हरति कट भृत्य' का णिजन्त मे 'हारयति कट भृत्य भृत्येन वा' हो जायगा।

## (प) अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम् (वार्त्तिक)

इस वार्त्तिक के अनुसार अभिपूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु जब प्रेरणार्थक होने पर आत्मनेपद मे प्रयुक्त होती है, तब उनका भी प्रकृत दशा का कर्त्ता विकल्प

मे कर्म होता है, जैसे 'अभिवदति देव भक्त ' या 'पश्यति देव भक्त ' के प्रेरणार्थक रूप 'अभिवादयते देव भक्त भक्तेन वा' एव 'दर्शयते देव भक्त भक्तेन वा' होगे। आत्मनेपद मे न होने पर 'दृशेश्च' वार्त्तिक के अनुसार 'दर्शयति देव भक्तम्'— ऐसा ही प्रयोग मे होगा। 'अभिवद्' के आत्मनेपदी न होने पर 'अभिवादयति देव भक्तेन' ही प्रयोग होगा।

## (फ) जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

इस वार्त्तिक के अनुसार जल्प्, भाष् इत्यादि के भी प्रकृत दशा के कर्त्ता प्रेरणार्थक मे कर्म हो जाते हैं, जैसे, 'पुत्रो धर्म जल्पति भाषते वा' का 'पुत्र धर्म जल्पयति भाषयति वा' होगा।

### अपवाद

( i ) **नीवह्योर्न**—इस वार्त्तिक के अनुसार 'नी' और 'वह्' धातुओ के प्रेरणार्थक रूपो के प्रयोग मे प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म न होकर करण ही होता है, जैसे, 'भृत्यो भार नयति वहति वा' का 'भृत्येन भार नाययति वाहयति वा' ही होगा, 'भृत्य भार नाययति वाहयति वा' नही। किन्तु यदि प्रेरणार्थक 'वह्' का कर्त्ता नियन्ता अर्थात् हॉकने वाला हो तो 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेध ' वार्त्तिक के अनुसार प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म ही होगा, जैसे, 'वाहा रथ वहन्ति' का (सूत ) 'वाहान् रथ वाहयति' ही होगा।

( ii ) **आदिखाद्योर्न**—इस वार्त्तिक के अनुसार अद् और खाद् धातुओ के कर्त्ता उनके प्रेरणार्थक रूपो मे कर्म न होकर करण ही होगे, जैसे 'बटुरन्नमत्ति खादति' का प्रेरणार्थक प्रयोग 'बटुनान्नमादयति खादयति' होगा।

( iii ) **भक्षेरहिंसार्थस्य न**—इस वार्त्तिक के अनुसार अहिंसार्थक भक्ष् धातु का प्रकृत दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक मे कर्म न होकर करण ही होगा, जैसे 'भक्षयति अन्न बटु ' का प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति अन्न बटुना (देवदत्त )' होगा। परन्तु हिंसार्थक—'भक्षयति सस्य बलीवर्दा '—होने पर प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति सस्य बलीवर्दान् (देवदत्त )' ही होगा।[1]

१ यहाँ हिंसा का विचार दो प्रकार से किया जा सकता है—

(१) खेत मे खडे जौ के पौदो का खाना उनकी हिंसा है—क्षेत्रस्थानां यवानां भक्ष्यमाणाना हिंसा ज्ञेया तस्यामवस्थाया तेषा चेतनत्वात्—त० बो०।

(२) दूसरे की खेती चरी जाने से उसकी हिंसा होती है—परकीयसस्यभक्षणे परो हिंसितो भवति इति तत्स्वामिनो हिंसा द्रष्टव्या।—टिप्पणी

(iv) 'दृशेश्च'—वार्त्तिक के व्याख्यान मे भट्टोजि ने लिखा है कि 'सूत्रे ज्ञानसामान्यानामेव ग्रहण नतु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते, तेन स्मरति-जिघ्रतीत्यादीना न'। अर्थात् 'गतिबुद्धि०' सूत्र मे ज्ञानसामान्य की वाचक बुध् आदि धातुओ का ग्रहण होना है, अत ज्ञानविशेष(स्मरण, घ्राण आदि) की वाचक स्मृ, घ्रा इत्यादि धातुओ के कर्त्ता प्रेरणाथक मे कर्म नही होगे, जैसे, स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

## (ब) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ।२।३।८।

**कर्मप्रवचनीय**—कर्मप्रवचनीय सज्ञा उन पदो को दी जाती है, जो यद्यपि न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक हो, न किसी षष्ठीसदृश सम्बन्ध के वाचक हो और न अन्य किसी क्रियापद को लक्षित करने वाले हो तथापि विभक्ति के विधायक हो जाते हो—

क्रियाया द्योतको नाय, सम्बन्धस्य न वाचक ।
नापि क्रियापदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु भेदक ॥ —वाक्यपदीय

इन कर्मप्रवचनीयो को कुछ-कुछ अँग्रेजी के (Prepositions—प्रव्ययो) के तुल्य समझना चाहिए। उन्ही की भाँति ये भी शासन करते हुए बहुत विशेष अर्थ लक्षित करते हैं। इनके योग मे भी प्राय कर्म कारक का ही विधान होता है। इनमे से कुछ दिये जाते हैं—

### १—अनुर्लक्षणे ।१।४।८४।

जब किसी विशेष हेतु को लक्षित करना होता है, तब 'अनु' कर्मप्रवचनीय बन जाता है और 'जपमनु प्रावर्षत्' इस प्रकार के प्रयोग मे हेतु को शासित करता हुआ द्वितीया विभक्ति का विधायक बन जाता है।

'जपमनु प्रावर्षत्' का अभिप्राय यह है कि जप समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी (वृष्टि जप के ही कारण हुई क्योकि जब तक जप नही किया था, तब तक वृष्टि नही हुई थी)।

### २—तृतीयार्थे ।१।४।८५।

जब 'अनु' से तृतीया का अर्थ द्योतित हो, तब उसकी कर्मप्रवचनीय सज्ञा होती है, 'नदीमन्ववसिता सेना' (नद्या सह सम्बद्धा इत्यर्थ ।)

## ३—हीने ।१।४।८६।

'अनु' से जब 'हीन' अर्थ द्योतित हो तब भी वह कर्मप्रवचनीय कहलाता है, जैसे, 'अनु हरिं सुरा'=देवता हरि के बाद ही आते हैं। (हरि से और सभी देवता कुछ उन्नीस हीं पडते है।)

## ४—उपोऽधिके च ।१।४।८७।

'अधिक' तथा 'हीन' अर्थ का वाचक होने पर 'उप' भी कर्मप्रवचनीय कहलाता है। किन्तु जब वह 'हीन' अर्थ का द्योतक होता है, तब द्वितीया होगी और जब अधिक अर्थ का द्योतक होगा तो सप्तमी होगी[1], जैसे— हरिं सुरा' अर्थात् देवता हरि से उन्नीस पडते है और अधिक अर्थ मे 'उप र्धे हरेर्गुणा'—ऐसा प्रयोग होगा, न कि 'उप परार्धम्।' इसका अर्थ होगा—परार्ध से अधिक (ऊपर) ही हरि के गुण होगे।

## ५—लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ।१।४।९०।

जब किसी ओर अंगुलि-निर्देश करना हो अथवा जब 'ये इस प्रकार के हैं' यह बतलाना हो अथवा जब 'यह उनके हिस्से मे पड़ा या पडता है' यह प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिखलानी हो, तब प्रति, परि और अनु कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं और द्वितीया विभक्ति का विधान करते है, यथा—

(१) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (पेड पर बिजली चमक रही है)।
(२) भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा (विष्णु के ये भक्त हैं)।
(३) लक्ष्मीः हरिं प्रति (लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पडी)।
(४) वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष सींचता है)।

## ६—अभिरभागे ।१।४।९१।

भाग को छोडकर अन्य सभी उपर्युक्त अर्थों मे 'अभि' कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे, १—हरिमभिवर्तते। २—भक्तो हरिमभि। ३—देवं देवमभि-षिञ्चति।

---

१ यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २।३।९। इस नियम से यहाँ सप्तमी होगी।

### ७—अतिरतिक्रमणे च ।१।४।६५।

अतिक्रमण तथा पूजा अर्थ मे अति कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे—अति देवान् कृष्ण ।

## १००—तृतीया

### (क) साधकतम करणम् ।१।४।४२।

अपने कार्य की सिद्धि मे कर्त्ता जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है, उसे करण कहते है, जैसे, 'राम पानी से मुँह धोता है'—यहाँ पर साधारण रूप से तो मुह धोने मे राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनो की सहायता लेता है, यदि हाथ न लगावेगा तो मुह किस प्रकार धो सकेगा और यदि जलपात्र न होगा तो जल किसमे रक्खेगा। अस्तु, यह सिद्ध हो गया कि राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनो की सहायता लेता है, किन्तु देखना यह है कि मुँह धोने मे सबसे अधिक आवश्यकता किसकी पडती है। इस वाक्य म जितने शब्द का प्रयोग किया गया है, उनके देखने से यह स्पष्ट है कि मुँह धोने मे सबसे अधिक सहायता "पानी" की है, इसलिए "पानी" करण कारक है और "से" करण कारक का चिह्न है।

**नोट**—किसी वाक्य मे जो सबसे अधिक आवश्यक या सहायक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक भी सहायक हो सकते हैं, किन्तु उनका विचार नही किया जाता, जैसे—राम "हाथ से" मुँह धोता है। यहाँ "हाथ से" करण कारक है। यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु यह वाक्य मे न होने के कारण कारक नही है।

### (ख) कर्तृकरणयोस्तृतीया ।२।३।१८।

अनुक्त कर्त्ता (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य मे कर्त्ता अनुक्त होता है) तथा करण कारक मे तृतीया विभक्ति होती है।

'अनुक्ते कर्तरि तृतीया' का उदाहरण—

**रामेण** रावण अहन्यत हतो वा—कर्मवाच्य

**रामेण** सुप्यते, **मया** जीव्यते—भाववाच्य

'करणे तृतीया' का उदाहरण—

राम अलेन मुख प्रक्षालयति ।
राम रावण बाणेन हतवान् ।

## (ग) दिवः कर्म च ।१।४।४३।

दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्मसंज्ञा भी होती है, जैसे—अक्ष अक्षान् वा दीव्यति ।

## (घ) संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।२।३।२२।

सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म को विकल्प से करण संज्ञा होती है, जैसे—पित्रा पितर वा सजानीते=पिता के मेल मे रहता है ।

## (ङ) प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

प्रकृति आदि (स्वाभावादि) शब्दो के योग मे तृतीया होती है, जैसे—प्रकृत्या दयालु—स्वभाव से दयालु,

नाम्ना सुतीक्ष्ण चरितेन शान्त—नाम से सुतीक्ष्ण (सुतीक्ष्ण नाम वाले) किन्तु चरित से शान्त ।

सुखेन जीवति—सुख से अर्थात् सुखपूर्वक जीता है,
शिशु क्लेशेन स्थातु शक्नोति—बच्चा कठिनता से खडा हो पाता है,
अर्जुन सरलतया पठति—अर्जुन आसानी से पढ लेता है ।

इसी प्रकार 'गोत्रेण गार्ग्य' 'समेनैति', 'विषमेणैति', 'द्विद्रोणेन धान्य क्रीणाति इत्यादि प्रयोग भी होगे ।

नोट—इन सब उदाहरणो के देखने से यह स्पष्ट है कि यह सूत्र प्राय उन स्थलो मे लगता है, जो अंग्रेजी मे क्रियाविशेषण या क्रियाविशेषणवाक्याश कहलाते हैं । उदाहरणार्थ, ऊपर के वाक्यो मे आये तृतीयान्त प्रकृत्या—Naturally (adverb) या By nature (adverbial phrase) से, नाम्ना—By name (adverbial phrase) से, सुखेन—Happily अथवा In happiness (adverbial phrase) से, क्लेशेन—With difficulty (adverbial phrase) से, सरलता—Easily (adv.) या With ease (adverbial phrase) से अनूदित होते हैं ।

**(च) अपवर्गे तृतीया ।२।३।६।**—इस सूत्र का पूर्ण अर्थ वस्तुत **कालाध्वनो०** के साथ पढने से निकलता है।

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को "अपवर्ग" कहते है, और अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए काल-सातत्यवाची तथा मार्ग-सातत्यवाची शब्दो मे तृतीया होती है, अर्थात् जितने "समय" मे या जितना "मार्ग" चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस "समय" और "मार्ग" मे तृतीया होती है, जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर मे व्याकरण पढ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढा और व्याकरण उसको भली भाँति आ गया एव पढने का कार्य महीने मे सिद्ध हो गया। यदि मास भर पढने पर भी व्याकरण का अध्ययन समाप्त न होता तो 'मास' व्याकरणमधीतवान् (किन्तु नायात)—ऐसा ही प्रयोग होता क्योकि उस अवस्था मे 'मास' मे 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे द्वितीया' के अनुसार द्वितीया ही होती। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

क्रोशेन पुस्तक पठितवान्—कोस भर मे पुस्तक पढ डाली, अर्थात् एक कोस चलते-चलते पुस्तक पढ डाली। इसी प्रकार 'चतुर्भि वर्षैर्गृह निर्मापितवान्'—चार वर्ष मे घर बनवा लिया। 'पञ्चविंशत्या दिवसै अयमिम ग्रन्थ लिखितवान्'—पचीस दिन मे इसने यह ग्रन्थ लिख डाला।

सप्तभि दिनै नीरोगो जात—सात दिन मे नीरोग हो गया।

योजनाभ्या कथा समाप्तवान्—दो योजन भर मे कहानी खतम कर दी।

**(छ) सहयुक्तेऽप्रधाने ।२।३।१९।**

सह के योग मे अप्रधान [अर्थात् जो प्रधान (क्रिया के कर्त्ता) का साथ देता है] मे तृतीया होती है, जैसे—पुत्रेण सह पिता गच्छति। यहाँ 'पुत्रेण' मे तृतीया इसलिए लगी है कि गमन क्रिया के साथ पिता का ही मुख्य सम्बन्ध है। इसी प्रकार 'पित्रा सह पुत्र गच्छति' मे पुत्र प्रधान है और पिता अप्रधान रूप से उसका साथ देता है अत उसमे तृतीया हुई? इसी[1] प्रकार 'साथ' अर्थवाले साकम्, सार्धम् और समम् के योग मे भी अप्रधान मे तृतीया होती है, जैसे—

---

१ एव साकसार्धसमयोगेऽपि।—पा० सू० ।२।३।१९। पर सि० कौ०

राम जानक्या साक गच्छति—राम जानकी के साथ जाते है।

हनुमान् वानरै सार्धं जानकी मार्गयामास—हनुमान् ने बन्दरो के साथ जानकी को खोजा।

उपाध्याय छात्रै सम स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियो के साथ नहाता है।

**नोट**—'साथ', 'सङ्ग' आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमे हिन्दी मे 'का'—जो षष्ठी का स्थानीय है—लगाया जाता हे, किन्तु सस्कृत मे तृतीया लगाई जाती है।

## (ज) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।३२।

पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दो के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियो मे से कोई एक हो सकती है जैसे—

उर्मिला चतुर्दश वर्षाणि लक्ष्मण लक्ष्मणेन लक्ष्मणाद् वा पृथगुवास—उर्मिला चौदह वर्ष तक लक्ष्मण से अलग रही।

रामेण, राम, रामाद्, विना दशरथो नाजीवत्—राम के विना दशरथ नही जिये।

जल, जलेन, जलाद् विना कमल स्थातु न शक्नोति—जल के बिना कमल ठहर नही सकता।

कौरवा पाण्डवेभ्य पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवो से अलग रहते थे।

विना या वर्जन अर्थ का वाचक होने पर ही 'नाना' के योग मे द्वितीया, तृतीया या पञ्चमी होती है, जैसे—'नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा' अर्थात् स्त्री के बिना लोकयात्रा या जीवन निष्फल है।

## (झ) येनाङ्गविकारः ।२।३।२०।

जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार लक्षित हो, उस (अङ्ग) में तृतीया विभक्ति होती है, जैसे—

अक्ष्णा काण—एक आँख का काना।

देवदत्त शिरसा खल्वाटोऽस्ति—देवदत्त सिर का गजा है।

गिरिधर कर्णेन बधिर—गिरिधर कान का बहरा है।

रमेश पादेन खञ्ज—रमेश पैर का लँगडा है।

सुरेश कटया कुब्ज—सुरेश कमर का कुबडा है।

यहाँ भी हिन्दी के 'का' के स्थान में संस्कृत में तृतीया का प्रयोग होता है।

नोट—विकार का आरोप होने पर ही तृतीया होगी अन्यथा नहीं, जैसे, यदि साधारणतः उसकी आँख काली है—ऐसा अर्थ अभीष्ट हो तो 'अक्षि काणमस्य' —ऐसा ही प्रयोग होगा।

## (ञ) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।७२।

"तुला" तथा "उपमा" इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्यः सदृशः समो वा—कृष्ण के बराबर या समान।

दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा तुल्यो बलवान् नासीत्—दुर्योधन भीम के बराबर बली नहीं थे।

नायं मया मम वा पराक्रमं बिभर्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता।

मा लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य।

किन्तु तुला और उपमा के साथ षष्ठी होती है—"तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति"।

## (ट) हेतौ ।२।३।२३।

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, या होता है, उसमें तृतीया होती है, जैसे—

पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

धनं परिश्रमेण भवति—धन परिश्रम से होता है।

तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो।

बुद्धिः विद्यया वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है।

हेतु में पञ्चमी भी होती है, यथा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

सर्वद्रव्येषु विद्येव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ।।
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्र प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ।।

**टिप्पणी**—'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' अर्थात् वाक्य मे प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थ-मात्र से क्रिया समझ ली जाय तो भी वह कारक-विधान मे प्रयोजिका बन जाती है, जैसे—

(१) 'अल (कृत वा) श्रमेण'। इसका अर्थ होगा—'श्रमेण साध्य नास्ति'। यहाँ पर 'साधन' क्रिया गम्यमान है, श्रूयमाण नही। उस 'साधन' क्रिया के प्रति 'श्रम' करण कारक है। अतएव 'श्रम' मे तृतीया हुई।

(२) शतेन शतेन वत्सान्पाययति—अर्थात् शतेन परिच्छिद्य। इसका अर्थ होगा—सौ-सौ करके बछडो को दूध पिलाता है। 'परिच्छिद्य' (या करके) गम्यमान क्रिया है।

## (ठ) इत्थंभूतलक्षणे ।२।३।२१।

जब कोई किसी विशेष चिह्न से ज्ञापित हो, तब जिस चिह्न से वह ज्ञापित हो उसमे तृतीया विभक्ति लगती है, जैसे, जटाभिस्तापस —जटाओ से तपस्वी जान पडता है।

(ज) 'बढ जाना', 'सदृश होना' अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली क्रियाओ मे जिस गुण मे बढ जाने या सदृश होने की बात कही जाती है, उसमे तृतीया होती है, जैसे—

(१) राम स्वाग्रज गुणै अतिशेते—राम अपने बडे भाई से गुणो मे बढ़कर है।

(२) स्वरेण रामभद्रमनुहरति—स्वर मे राम के सदृश है। पर कही-कही इसी अर्थ मे सप्तमी भी होती है, जैसे—

धनदेन समस्त्यागे—त्याग मे कुबेर के समान है।

(ढ) कार्य, अर्थ, प्रयोजन, गुण तथा इसी प्रकार उपयोग या प्रयोजन प्रकट करने वाले अन्य शब्दो के भी योग मे उपयोज्य या आवश्यक वस्तु तृतीया मे रखी जाती है, जैसे—देवपादाना सेवकैर्न प्रयोजनम्, तृणेन कार्यं भवती-

श्वराणाम्, सानुरागेणापि मूढेन भृत्येन को गुण । कोऽर्थ पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्।

**(ङ) यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वार्त्तिक)** यज् धातु के कर्म की करण सज्ञा होती है और सम्प्रदान की कर्मसज्ञा होती है, जैसे—

पशुना रुद्र यजते—रुद्र को पशु देता या चढ़ाता है।

## १०१—चतुर्थी

**(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।१।४।३२।**

दान के कर्म के द्वारा जिसे कर्त्ता सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहा जाता है।

जैसे 'विप्राय गा ददाति'। यहाँ गोदान कर्म के द्वारा विप्र को ही सन्तुष्ट करना कर्त्ता को अभिप्रेत है, अत वह सम्प्रदान है।

**(ख) क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वार्त्तिक)**

न केवल दान के कर्म के द्वारा जो अभिप्रेत हो वह सम्प्रदान कहा जाय बल्कि किसी विशेष क्रिया के द्वारा भी जो अभिप्रेत हो वह भी सम्प्रदान समझा जाय, जैसे, 'पत्ये-शेते'। यहाँ पति को अनुकूल बनाने के लिए की गयी शयन-क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतएव 'पति' सम्प्रदान होगा।

**(ग) चतुर्थी सम्प्रदाने ।२।३।३१।**

अर्थात् सम्प्रदान मे चतुर्थी होती है। इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण मे "ब्राह्मण" चतुर्थी मे होगा, जैसे—"ब्राह्मणाय गा ददाति।" इसी प्रकार, मह्य पुस्तक देहि—मुझे पुस्तक दो।

परन्तु 'अशिष्टव्यवहारे दाण प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' (वार्त्तिक) के अनुसार अशिष्ट व्यवहार मे दान का पात्र सम्प्रदान नही होगा। उसमे चतुर्थी का अर्थ होने पर भी तृतीया होगी, जैसे—'दास्या सयच्छते कामुक'। शिष्ट व्यवहार मे 'भार्यायै सयच्छति' ऐसा ही प्रयोग होगा।

**(घ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।१।४।३३।**

रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओ के योग मे प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है, जैसे—

(१) विष्णवे रोचते भक्ति —विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है।

(२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लडके को लड्डू अच्छे लगते है।

(३) सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजन न स्वदते—अच्छी तरह खाये हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ठ नही लगता।

यहाँ पर उदाहरण न० १ मे भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" है, उदाहरण न० २ मे लड्डुओ से प्रसन्न होने वाला "बालक" है और उदाहरण न० ३ मे भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है, इसलिए विष्णवे, बालकाय और पुरुषाय मे चतुर्थी हुई।

## (ङ) धारेरुत्तमर्ण ।१।४।६५।

णिजन्त धृ (उधार लेना, कर्ज लेना) धातु के योग मे महाजन र्ज देने वाले' की सम्प्रदान सज्ञा होती है, जैसे—

श्याम अश्वपतये शत धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज लिया है।

गोविन्दो रामाय लक्ष धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

## (च) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थाना य प्रति कोप ।१ ४।३७।

क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य तथा असूय् धातुओ के योग मे तथा इन धातुओ के समान अर्थ रखने वाली धातुओ के योग मे जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, वह सम्प्रदान समझा जाता है, जैसे—

स्वामी भृत्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है।

शठा सर्वेभ्यो द्रुह्यन्ति—शठ लोग सबसे द्रोह करते है।

दुर्योधन पाण्डवेभ्य ईर्ष्यति स्म—दुर्योधन पाण्डवो से ईर्ष्या करता था।

खला सज्जनेभ्य असूयन्ति—दुष्ट लोग सज्जनो मे ऐब निकाला करते है।

इसी प्रकार सीता रावणाय अकुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया।

### (छ) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ।१।४।३८।

इस सूत्र के अनुसार जब क्रुध् तथा द्रुह् सोपसर्ग (उपसर्ग-सहित) होती हैं तब जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जाता है, वह कर्मसंज्ञा वाला होता है, सम्प्रदान नही, जैसे—क्रूरमभिक्रुध्यति—सद्रुह्यति। पिता पुत्र सक्रुध्यति।

### (ज) प्रत्याङ्भ्या श्रुव· पूर्वस्य कर्त्ता ।१।४।४०।

प्रति और आ पूर्वक श्रु धातु के योग मे प्रतिज्ञा को प्रवर्त्तित करने वाले याचन इत्यादि व्यापार के कर्त्ता की सम्प्रदान सज्ञा होती है, जैसे—

कृष्णो विप्राय गा प्रतिशृणोति आशृणोति वा (इसमे यह अर्थ लक्षित होता है कि ब्राह्मण ने ही पहिले 'मुझे गाय दो' यह कहा होगा, तब कृष्ण ने प्रतिज्ञा की होगी। इस प्रकार प्रतिज्ञा को प्रवर्त्तित करने वाले याचना व्यापार का कर्त्ता होने के कारण ब्राह्मण सम्प्रदान होगा।)

### (झ) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् ।१।४।४४।

निश्चित काल के लिए वेतन इत्यादि पर किसी को रखना या लगाना उसका 'परिक्रयण' कहलाता है। उस 'परिक्रयण' मे जो करण होता है, वह विकल्प से सम्प्रदान होता है, जैसे—शतेन शताय वा परिक्रीत।

### (ञ) तुमर्थाच्च भाववचनात् ।२।३।१६।

किसी धातु मे तुमुन् प्रत्यय जोडने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अत्तुम्—खाने के लिए, पातुम्—पीने के लिए आदि), उसका प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक सज्ञा का प्रयोग करने पर उसम चतुर्थी होती है, जैसे—

यागाय याति (यष्टु याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है।

इसमे "याग", "यज्" धातु से बना हुआ भाववाचक शब्द है। यज् धातु मे तुमुन् जोडने से "यष्टु" बनता है जिसका अथ "यज्ञ करन के लिए" होता है। इसी अर्थ (यज्ञ करने के लिए) को प्रकट करने के लिए इस भाववाचक 'याग' शब्द मे चतुर्थी कर दी गयी है। इसी प्रकार—

शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति)—सोना चाहता है।

उत्थानाय यतते (उत्थातु यतते)—उठने की कोशिश करता है।

मरणाय गङ्गातट गच्छति (मर्तुं गङ्गातट गच्छति)—मरने के लिए गङ्गातट को जाता है।

दानाय धनमर्जयति (दातु धनमर्जयति)—देने के लिए धन कमाता है।

## (ट) स्पृहेरीप्सितः ।१।४।३६।

स्पृह् धातु के प्रयोग मे जिसे चाहा जाय, वह सम्प्रदानसज्ञक होता है, जैसे—

पुष्पेभ्य स्पृहयति=फूलो को चाहना करता है।

टिप्पणी—स्पृह् धातु से बने हुए शब्दो के योग मे भी 'ईप्सित' का कभी-कभी सम्प्रदान-रूप से प्रयोग देखा जाता है जैसे भोगेभ्य स्पृहयालव (वैराग्य-शतक, ६४) अर्थात् भोगो के इच्छुक, कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्य पुत्रिण स्पृहाम (वेणी स० अ० ३) अर्थात् फिर दूसरे गृहस्थ पुत्रो की इच्छा कैसे करेगे? परन्तु प्राय सप्तमी मे ही होता है, जैसे स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ३, श्लो० ५)।

## (ठ) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्त्तिक)

(१) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उस (प्रयोजन) मे चतुर्थी होती है, जैसे—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

शिशु मोदकाय रोदिति—बच्चा लड्डू के लिए रोता है।

काव्य यशसे (भवति)—काव्य यश के लिए (होता है।)

(२) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमे चतुर्थी होती है, जैसे—

शकटाय दारु—गाडी (बनाने) के लिए लकडी।

आभूषणाय सुवर्णम्—जेवर (बनाने) के लिए सोना।

## (ड) क्लृपिसंपद्यमाने च (वार्त्तिक)

यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम मे चतुर्थी होती है, जैसे—

भक्ति ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते=भक्ति ज्ञान के लिए होती है अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है।

### (ढ) उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्त्तिक)

भौतिक उत्पातो से सूचित वस्तु मे चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—
वाताय कपिला विद्युत्=रक्ताभ विद्युत् आँधी की सूचना देती है।

### (ण) हितयोगे च (वार्त्तिक)

हित और सुख के योग मे भी चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—
ब्राह्मणाय हित सुख वा।

### (त) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ।२।३।१४।

जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे, तो उसके "कर्म" मे चतुर्थी होती है, जैसे—

फलेभ्यो याति (फलानि आनेतु याति)—फलो को लाने के लिए जाता है।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ "फलानि आनेतु याति" है, किन्तु "फलेभ्यो याति" मे तुमुनन्त 'आनेतुम्" का प्रयोग परोक्ष है और "आनेतुम्" का कर्म "फलानि" है सलिए "फल" शब्द मे चतुर्थी हुई। इसी प्रकार—

स्कुर्मो नृसिहाय (नृसिहमनुकूलयितु नमस्कुर्म )—नृसिह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य (स्वयम्भुव प्रीणयितु नमस्कृत्य)—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गा मुमोच (वन गन्तु)—वन जाने के लिए गाय छोड दी।

### (थ) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च ।२।३।१६।

नम , स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अल तथा वषट् शब्दो के योग मे चतुर्थी होती है, जैसे—

तस्मै श्रीगुरुवे नम —उन गुरु जी को नमस्कार।
रामाय नम , तुभ्य नम ।
स्वस्ति भवते—आपका कल्याण हो।

प्रजाभ्य स्वस्ति—प्रजाओ का कल्याण हो।
अग्नये स्वाहा—अग्नि को यह आहुति है।
पितृभ्य स्वधा।
इन्द्राय वषट्।
दैत्येभ्यो हरि अलम्—हरि दैत्यो के लिए काफी हैं।
अल मल्लो मल्लाय—पहलवान पहलवान के लिए काफी है।
यहाँ अलम् का अर्थ पर्याप्त है, निषेध नही।

**टिप्पणी**—(1) **'उपपदविभक्ते कारकविभक्तिर्बलीयसी'** अर्थात् पद के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति से क्रिया के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति बलवती होती है—इस नियम से 'नमस्करोति' इत्यादि क्रियापदो के योग मे चतुर्थी न होकर द्वितीया विभक्ति ही होती है, जैसे—गुरु, देव, परमेश्वर वा नमस्करोति। 'गणेशाय नमस्कुरु' इत्यादि प्रयोग "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन" ।२।३।१४। नियम के भीतर आ जाते है। परन्तु नमस्कार अर्थ वाली प्रणिपत्, प्रणम् इत्यादि धातुओ के साथ नमस्कार्य का द्वितीया या चतुर्थी दोनो मे प्रयोग करते हैं, जैसे—

**धातार** प्रणिपत्य (कुमार० द्वि०, श्लो० ३)
**तस्मै** प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० तृ०, श्लोक ६०)
तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (कादम्बरी)
**प्रणम्य त्रिलोचनाय** (कादम्बरी)

**इन धातुओ से बने हुए प्रणाम इत्यादि शब्दो के योग मे चतुर्थी का ही प्रयोग** होता है, जैसे—अस्मै प्रणाममकरवम् (कादम्बरी)।

(ii) अल[1] से पर्याप्त अर्थ के वाचक प्रभु (प्रपूर्वक भू धातु से बने क्रियापद भी), समर्थ, शक्त इत्यादि पदो का भी ग्रहण होता है। इसलिए इनके

१ अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरल प्रभु, समर्थ, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधु। 'तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्य' ।५।१।१०१। 'स एषा ग्रामणी' ।५।२।७८। इति निर्देशात्। 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येति' सिद्धम्—नम स्वस्ति० सूत्र पर सि० कौ०।

योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः, शक्तः, समर्थो वा। विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (नीतिशतक, श्लो० ९४)। 'प्रभो' इत्यादि शब्दों के योग में षष्ठी का भी प्रयोग होता है, जैसे—

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (माघ० प्रथम०, श्लो० ४९)

(द) कथन अर्थ वाली कथ्, ख्या, शस् एवं चक्ष् धातुओं के अकथित कारक तथा निपूर्वक प्रेरणार्थक विद् धातु के प्रकृत दशा के कर्ता का कर्मरूप में प्रयोग न होकर सम्प्रदान-रूप में प्रयोग होता है, जैसे—

आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शाकु०, अंक १)—देवि ! तुमसे सत्य कहता हूँ।

यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ (उत्तररामचरित)—जिसे वेद पढ़ाया।

एहि, इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावहे (शाकु० अंक ४)—आओ, वृक्षों की यह सेवा कण्व ऋषि को निवेदित कर दें।

(ध) 'भेजना' अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है, वह चतुर्थी में तथा जिस स्थान पर भेजा जाता है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है, जैसे—

भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु०, सर्ग ५, श्लो० ३९)—महाराज भोज ने रघु के पास दूत भेजा।

माधवं पद्मावतीं प्राहिण्वता (मालतीमा०, अंक १)

## (द) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।२।३।१७।

जब अनादर दिखाया जाता है तो 'मन्' (समझना, दिवादिगणी) धातु के कर्म में, यदि वह प्राणी न हो तो, विकल्प से चतुर्थी भी होती है, जैसे—

न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता। जहाँ अनादर न दिखाकर समता या तुलना-मात्र प्रकट की जाती है, वहाँ केवल द्वितीया ही होती है, जैसे—

त्वां तृणं मन्ये—मैं तुम्हें तृणवत् समझता हूँ।

## (ध) राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ।१।४।३९।

"शुभाशुभकथन' अर्थ में विद्यमान राध् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है,

जैसे—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः।

१०२—५८८

## (क) ध्रुवमपायेऽपादानम् ।१।४।२४।

अपाय विश्लेष (अलग होना) को कहते हैं। उसमे जो ध्रुव या अवधिभूत (अर्थात् जहाँ से विश्लेष हो) होता है, वह अपादान कहलाता है। जैसे—"वह कोठे से गिर पडा"। यहा पर वह कोठे से अलग हो रहा है, इसलिए "कोठे से" अपादान है, इसी प्रकार "पेड से पत्ते गिरते हैं" मे "पेड" और "राम गॉव से चला गया" मे "गाँव" अपादान है।

## (ख) अपादाने पञ्चमी ।२।३।२८।

अपादान मे पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के वाक्यो का स्वरूप इस प्रकार होगा—

स प्रासादात् अपतत्,<br>
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,<br>
रामो ग्रामाद् जगाम।

## (ग) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड देना, हटना), प्रमाद (भूल या असावधानी करना) के समानार्थक शब्दो के साथ पञ्चमी होती है (अर्थात् जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे या जिसे दूर कर दे, जिस काम मे भूल करे, इन सब मे पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है)। धैर्यवान् पुरुष अपने **निश्चय** से नही हटते, राजा **कर्म** से नही टला, **पाप** से घृणा करता है, **धर्म** मे भूल करता है, अपना **कर्तव्य** भूल गया। इन वाक्यो मे निश्चय आदि शब्दो मे संस्कृत मे पञ्चमी होगी, जैसे—न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीरा।

न नव प्रभुराफलयोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मण—वह नया राजा तब तक कर्म मे न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया।

वत्सैतस्माद्विरम विरमात पर न क्षमोऽस्मि।

प्रत्यावृत्त पुनरिव स मे जानकीविप्रयोग ।। (उत्तररामचरित, अक १)

पापाज्जुगुप्सते । धर्मात्प्रमाद्यति ।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त । (मेघदूत, श्लो० १)

**टिप्पणी**—जिसके विषय मे भूल या असावधानी होती है, उसमे सप्तमी का प्रयोग भी होता है, जैसे—

न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित (मनु०-२-२१३)

## (घ) भीत्रार्थाना भयहेतुः ।१।४।२५।

जिससे डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो, उस कारक को अपादान कहते हैं, जैसे—

चौराद् बिभेति—चोर से डरता है।

सर्पाद् भयम्—साँप से डर है।

इनमे भय के कारण "चोर" और "साँप" हैं, इसलिए ये अपादान हैं।

रक्ष मा नरकपातात—नरक मे गिरने से मुझे बचाओ।

भीमाद् दु शासन त्रातुम्—भीम से दु शासन को बचाने के लिए।

यहाँ भी "नरकपात" तथा "भीम" भय के कारण हैं, इसलिए अपादान है।

## (ङ) पराजेरसोढ. ।१।४।२६।

परा पूर्वक जि धातु के प्रयोग मे जो असह्य होता है, उसकी अपादान सज्ञा होती है। जैसे—

अध्ययनात् पराजयते—वह अध्ययन से भागता है (अध्ययन उसके लिए असह्य या कष्टप्रद है)। परन्तु हराने के अर्थ मे द्वितीया ही होती है, जैसे—'शत्रून् पराज्यते' अर्थात् शत्रुओ को पराजित करता है।

## (च) वारणार्थानामीप्सितः ।१।४।२७।

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह अपादान होता है, जैसे—

यवेभ्यो गा वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्र पापात निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।

यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने की है, गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से इसलिए 'जौ' और 'पाप' में अपादान कारक होने के कारण पञ्चमी का प्रयोग हुआ।

## (छ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८।

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है वह अपादान होता है, जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्ण —कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

यहाँ पर कृष्ण अपने को "माता से" छिपाता है, इसलिए "माता से" अपादान कारक हुआ।

## (ज) आख्यातोपयोगे ।१।४।२८।

(नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्सञ्ज्ञ स्यात्)।

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान करके उसने।

मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता—मैंने अध्यापक से अभिनय-कला सीखी (मालविका०)।

अध्यापकाद् गणित पठति—अध्यापक से गणित पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्तविद्या वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि (उत्तर०)—उन लोगो से वेदान्त पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस स्थान पर चली आई हूँ।

'नियमपूर्वक' न होने पर षष्ठी होगी, जैसे—'नटस्य गाथा शृणोति'।

## (झ) जनकर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०।

जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है, जैसे—

कामात्क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।

यहाँ "अभिजायते" का कर्ता "क्रोध" है, और इस कर्ता (क्रोध) का "आदि कारण" "काम" है, इसलिए 'काम' अपादान कारक है। इसी प्रकार ब्रह्मण प्रजा प्रजायन्ते—ब्रह्मा जी से सारी प्रजा उत्पन्न होती है।

**टिप्पणी**—जिससे कोई उत्पन्न होता है, उसमे प्राय सप्तमी भी होती है, जैसे—परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० अ० ३-१७४ श्लो०), शुकनासस्यापि रेणुकाया तनयो जात (कादम्बरी), स स्वभार्याया कन्यारत्नमजीजनत।

## (ञ) भुवः प्रभवश्च ।१।४।३१।

उत्पन्न होने वाले का जो 'प्रभव' अर्थात् उत्पत्तिस्थान होता है, वह अपादान कहलाता है, जैसे—हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

## (ट) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वार्त्तिक)

जब ल्यप् (प्रेक्ष्य, आनीय आदि) अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त (दृष्ट्वा, गत्वा आदि) क्रिया वाक्य मे प्रकट नही की जाती किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी मे होते हैं, जैसे—

श्वशुराज्जिह्रेति—ससुर से लज्जा करती है।

वास्तव मे इस वाक्य को पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप यो होगा—

"श्वशुर वीक्ष्य दृष्ट्वा वा जिह्रेति," अर्थात् ससुर को देखकर लज्जा करती है, 'श्वशुराज्जिह्रेति' मे 'दृष्ट्वा' या 'वीक्ष्य' प्रकट नही किया गया है, इसलिए 'दृष्ट्वा' का कर्म 'श्वशुर' पञ्चमी मे हो गया।

आसनात्प्रेक्षते—आसन से देखता है।

इसका वास्तविक आकार पूर्णरूप से प्रकट करने पर यो होगा—

"आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते" अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है। "आसनात्प्रेक्षते" मे "उपविश्य" या 'स्थित्वा' प्रकट नही किया गया है, इसलिए "उपविश्य" का आधार 'आसन' सप्तमी मे न होकर पञ्चमी मे हो गया।

## (ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वार्त्तिक)

जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी दिखलाई जाती है, वह स्थान या समय पञ्चमी विभक्ति मे रक्खा जाता है।

## तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वार्त्तिक)

(१) और जो स्थान की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति मे रक्खा जाता है, जैसे—

मम गृहात् प्रयाग योजनत्रयमस्ति, अथवा मम गृहात् प्रयाग योजनत्रये अस्ति।

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह "घर" है, इसलिए घर पञ्चमी विभक्ति मे रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "तीन योजन" है, इसलिए 'तीन योजन' प्रथमा मे अथवा सप्तमी मे रखा गया है। इसी प्रकार उदाहरण हो सकते हैं—

कर्णपुरात् प्रयाग अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा।
भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायमुनयो सङ्गम क्रोश क्रोशे वा इत्यादि।

## कालात् सप्तमी वक्तव्या (वार्त्तिक)

(२) और जो समय की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति मे रखा जाता है, जैसे—

कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्त्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है।

यहाँ कार्त्तिकी पूर्णिमा से समय की दूरी दिखाई गई है, इसलिए उसमें पञ्चमी हुई और एक महीने की दूरी दिखाई गई है, इसलिए "महीने" मे सप्तमी हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मात् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु, इत्यादि।

## (ड) पञ्चमी विभक्ते।२।३।४२। (विभक्त का अर्थ इस स्थल में विभाग या भेद है।)

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण (देखिए न० ९६) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक तारतम्य दिखाया जाता है, उसमे पञ्चमी होती है, किन्तु वे दोनो वस्तुएँ भिन्न जाति, गुण, क्रिया तथा सज्ञा वाली होनी चाहिए, जैसे—

प्रजा सरक्षति नृप सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।
**वर्धनाद्रक्षण** श्रेय तदभावे सदप्यसत् ॥
माता गुरुतरा **भूमे** **खात्पितोच्चरस्तथा** ।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुण **परधर्मात्स्वनुष्ठितात्** ॥
एकाक्षर पर ब्रह्म, प्राणायाम पर तप ।
**सावित्र्यास्तु** पर नास्ति, **मौनात्** सत्य विशिष्यते ॥

यहाँ वर्धन रक्षण, माता भूमि, स्वधर्म परधर्म आदि उदाहरणो मे दो विभिन्न वस्तुओ मे तारतम्य बताया गया है।

## (ढ) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिग्वाचक[1] पूर्व दक्षिण आदि तथा अञ्च् धातु से युक्त दिग्वाचक प्रत्यक्, उदक् प्रभृति दक्षिणा, उत्तरा प्रभृति एव दक्षिणाहि, उत्तराहि प्रभृति शब्दो के योग्य मे पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् ।
(२) आराद्वनात् ।
(३) ऋते कृष्णात् ।
(४) चैत्रात् पूर्व फाल्गुन ।
(५) प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् ।
(६) दक्षिणा ग्रामात् ।
(७) दक्षिणाहि ग्रामात् ।

**टिप्पणी**—( 1 ) यद्यपि सूत्र के 'अन्य'[1] शब्द से उस अर्थ के बोधक भिन्न इतर, पर, अपर इत्यादि समस्त शब्दो का ग्रहण होता है तथापि दिग्दर्शन के लिए 'इतर' का पृथक् ग्रहण हुआ है।

---

१ अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहण प्रपञ्चार्थम् ।—सि० कौ०

(ii) यद्यपि[1] सूत्र मे आया हुआ 'अञ्चूत्तरपद' भी 'दिक्शब्द' ही है और इसी से उसका भी ग्रहण हो जाता है, तथापि उसका पृथक् ग्रहण 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' ।२।३।३०। सूत्र से दिग्वाची शब्दो के योग मे होने वाली षष्ठी का बोध करने के लिए किया गया है, अन्यथा 'ग्रामस्य पुर ' की तरह 'ग्रामस्य प्राक्' प्रयोग होता, 'ग्रामात् प्राक्' न होता।

(iii)[2] 'अपादाने पञ्चमी' सूत्र पर व्याख्यान लिखते हुए महाभाष्यकार ने 'कार्त्तिक्या प्रभृति' प्रयोग किया है। इससे सूचित होता है कि 'प्रभृति' तथा इसके अर्थ मे प्रयुक्त होने वाले 'आरभ्य' इत्यादि अन्य शब्दो के योग मे भी पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) शैशवात् प्रभृति पोषिता प्रियाम् (उत्तररामचरित)।

(२) भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरि (सि० कौ०)।

इसी प्रकार 'अपपरिबहिरञ्चव पञ्चम्या' ।२।१।१२। सूत्र मे आये हुए 'बहि ' के योग मे पञ्चमी समास होने के कारण बहि के योग मे पञ्चमी विभक्ति ज्ञापक सिद्ध होती है,—'ग्रामाद् बहि ' अर्थात् गाँव से बाहर।

इसी प्रकार (iv) ऊर्ध्वं, पर, अनन्तर के योग मे भी पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) तस्मात् परम् अनन्तर वा।

(२) मुहूर्त्तादूर्ध्वं म्रिये।

## (ण) पञ्चम्यपाङ्परिभिः ।२।३।१०।

कर्मप्रवचनीय-सज्ञक अप, आङ और परि के योग मे पञ्चमी होती है, (अपपरी वर्जने। आङ मर्यादावचने ।१।४।८८,८९। अर्थात् वर्जन अर्थ मे

---

१ अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठी बाधितु पृथग्ग्रहणम्।

२ 'अपादाने पञ्चमी' इति सूत्रे 'कार्त्तिक्या प्रभृति' इति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी। 'अपपरिबहि०' इति समासविधानाज्ज्ञापकात् बहिर्योगे पञ्चमी।—सि० कौ०

'अप' तथा 'परि' और मर्यादा तथा अभिविधि अर्थ मे 'आङ' कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं), जैसे—

(१) अप परि वा हरे ससार—भगवान् को छोड कर अन्यत्र ससार रहता है।

(२) आ जन्मन आ मरणात् स्वकर्त्तव्य पालयेन्नर—मनुष्य को जन्म से लेकर (अभिविधि अर्थ मे) मृत्यु तक (मर्यादा अर्थ मे) अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

## (त) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ।२।३।११।

प्रतिनिधि एव प्रतिदान (विनिमय) के अथ मे कर्मप्रवचनीय सज्ञा प्राप्त करने वाले 'प्रति' के योग मे पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

(२) तिलेभ्य प्रति यच्छति माषान्—तिलो के बदले मे उडद देता है (अर्थात् तिल से उडद बदलता है)।

## (थ) विभाषागुणेऽस्त्रियाम् ।२।३।२५।

हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक अस्त्रीलिङ्ग शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी मे रक्खे जाते हैं, जैसे—

जाड्येन जाड्यात् वा बद्ध (सि० कौ०)—वह अपनी मूर्खता के कारण पकडा गया।

गुणवाचक के होने पर अस्त्रीलिङ्ग होते हुए भी तृतीया ही होगी, जैसे, धनेन कुलम्।

इसी प्रकार गुणवाचक होते हुए भी स्त्रीलिङ्ग होने पर तृतीया ही होगी, जैसे—

बुद्ध्या मुक्त—वह अपनी बुद्धि के कारण छोड दिया गया।

**टिप्पणी**—प्रस्तुत सूत्र मे विभाषा न केवल विभक्ति (तृतीया और पञ्चमी) के सम्बन्ध मे ही गृहीत है अपितु गुण और अस्त्रियाम् के विषय मे भी। अतएव 'धूम' के गुणवाचक न होने पर भी 'धूमात् वह्निमान्' तथा 'अनुपलब्धि' के स्त्रीलिङ्ग होने पर भी 'नास्ति घटोऽनुपलब्धे' प्रयोग सही हैं।

# १०३—सप्तमी

## (क) आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५। सप्तम्यधिकरणे च ।२।३।३६।

कर्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार 'अधिकरण' कहलाता है। 'अधिकरण' मे सप्तमी का प्रयोग होता है।

औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक रूप से आधार तीन प्रकार का होता है—

(१) औपश्लेषिक आधार—जिसके साथ आधेय का भौतिक सश्लेष हो, जैसे, 'कटे आस्ते'—यहाँ 'चटाई' से बैठने वाले का भौतिक सश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है।

(२) वैषयिक आधार—जिसके साथ आधेय का बौद्धिक सश्लेष हो, जैसे, 'मोक्षे इच्छास्ति'—इसमे इच्छा का 'मोक्ष' मे अधिष्ठित होना पाया जाता है।

(३) अभिव्यापक आधार—जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, जैसे, 'तिलेषु तैलम्'—यहाँ तेल तिल मे एक जगह अलग नही दिखाई पड सकता पर निश्चयात्मक रूप से वह सभी तिलो में व्याप्त है, इसमे तनिक भी सन्देह नही। **ये त्रिविध आधार अधिकरण कहलाते हैं और इनमे सप्तमी का विधान होता है।**

दूर एव अन्तिक अर्थ वाले शब्दों मे भी सप्तमी का प्रयोग होता है—जैसे—

(४) ग्रामस्य दूरे अन्तिके वा—गाँव से दूर या समीप।

**टिप्पणी**—क्रिया के आधार की भाँति उसका समय भी सप्तमी मे रक्खा जाता है, जैसे—

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ०) आषाढ़ के पहले ही दिन।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् (रघु०)—बाल्यकाल मे विद्याभ्यास करने वाले रघुवशियो का।

## (ख) क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

क्त प्रत्ययान्त शब्द मे इन् प्रत्यय लगकर बने हुए शब्द के योग मे उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे, अधीती व्याकरणे।

## (ग) साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्त्तिक)

साधु और असाधु के प्रयोग मे भी सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे—'साधुः कृष्णो मातरि' (कृष्ण अपनी माँ के लिए बहुत अच्छे थे), 'असाधुर्मातुले' (पर अपने मामा के लिए बहुत बुरे)।

## (घ) निमित्तात्कर्मयोगे (वार्त्तिक)

जिस निमित्त से अर्थात् जिस फल की प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त अथवा समवेत हो तो उसमे सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे,

'चर्मणि द्वीपिन हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्कलको हत'॥

यहाँ पर 'द्वीपी' कर्म के साथ उसका चर्म समवेत है और फलभूत चर्म की प्राप्ति के लिए ही वध-व्यापार होता है। इसलिए 'चर्म' मे सप्तमी हुई है। इसी प्रकार दन्तयो, केशेषु तथा सीम्नि मे भी सप्तमी हुई है।

**टिप्पणी**—'हेतौ' इस सूत्र के द्वारा 'अध्ययनेन वसति' इत्यादि प्रयोगो की भाँति यहाँ भी तृतीया होनी चाहिए थी, परन्तु 'निमित्तात् कर्मयोगे' के द्वारा उसका निवारण हो जाता है और तृतीया के स्थान मे सप्तमी होती है।

## (ङ) यतश्चनिर्धारणम् ।२।३।४१।

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओ से किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्थात् विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी मे रखा जाता है, जैसे—

कविषु कालिदास श्रेष्ठ
या
कवीनां कालिदास श्रेष्ठः } कवियो मे कालिदास सबसे बडे हैं।

| | |
|---|---|
| गोषु कृष्णा बहुक्षीरा<br>या<br>गवा कृष्णा बहुक्षीरा | गायो मे काली गाय बहुत दूध देनेवाली होती है। |
| छात्रेषु मैत्र पटु,<br>या<br>छात्राणा मैत्र पटु, | विद्यार्थियो मे मैत्र तेज है। |

इन उदाहरणो मे यह दिखाया गया है काली गाय मे कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र मे कुछ विशिष्टता है। ये तीनो विशेष कारण से अपने-अपने समुदाय मे (गायो, कवियो और छात्रो मे) विशिष्ट है।

## (च) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ।२।३।७।

दो कारक शक्तियो के बीच के काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति मे रक्खे जाते है, जैसे—

अद्य भुक्त्वाऽय त्र्यहे त्र्यहाद्वा भोक्ता—आज खाकर फिर तीन दिन मे (या तीन दिनो के बाद) खाएगा।

इहस्थोऽय क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्य विध्येत्—यहाँ स्थित होकर यह एक कोश स्थित लक्ष्य को वेध देगा।

## (छ) प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ।२।३।४४।

प्रसित (इच्छुक या अभिलाषुक) तथा उत्सुक शब्दो के योग मे सप्तमी या तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—

निद्राया निद्रया वा प्रसित उत्सुको वा—नीद का इच्छुक।

(ज) कोषग्रन्थो मे 'के अर्थ मे'—इस अर्थ को प्रकट करने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे, वाणी बलिसुते शरे (अमरकोष)—बलि के पुत्र तथा शर के अर्थ मे 'बाण' शब्द प्रयुक्त होता है।

(झ) 'व्यवहार' या 'आचरण' अर्थ वाले शब्दो के योग मे भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—

आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्—श्रीमान् इसके साथ विनयपूर्वक व्यवहार करें।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शकुन्तला)—सपत्नियो (सौतो) के साथ प्रिय सखी का व्यवहार करना।

गुरुषु शिष्टो व्यवहारस्तस्य—गुरुजनो के साथ उसका व्यवहार बडा शिष्ट है।

(ञ) स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देने वाले अन्य शब्दो के योग मे सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे—

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकुन्तला)—इन पर मेरा सगे भाई का सा स्नेह भी है।

स्वयोषिति रति—अपनी स्त्री पर प्रेम।

देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ता प्रकृतय (मुद्राराक्षस)—महाराज चन्द्रगुप्त मे प्रजा का बडा अनुराग है।

दण्डनीत्या नात्यादृतोऽभूत् (दशकुमार)—दण्डनीति के प्रति उसका बहुत आदरभाव नही था।

न तापसकन्यकाया ममाभिलाष (शकुन्तला)—तपस्वी कण्व की कन्या पर मेरा प्रेम नही है।

**टिप्पणी**—परन्तु अनुपूर्वक रञ्ज् धातु से बने हुए शब्दो का द्वितीयान्त के साथ भी प्रयोग पाया जाता है, जैसे एषा भवन्तमनुरक्ता (शकुन्तला), अपि वृषलमनुरक्ता प्रकृतय (मुद्राराक्षस)। किन्तु ऐसे प्रयोगो मे 'अनु' को 'कर्मप्रवचनीय' तथा उसके योग मे द्वितीया का प्रयोग समझना चाहिए।

(ट) 'कारण' अर्थ के वाचक शब्दो के प्रयोग मे 'कार्य' के वाचक शब्द मे प्राय सप्तमी आती है, जैसे—

दैवमेव हि नृणा वृद्धौ क्षये कारणम् (नीति०, ८४)—मनुष्य की वृद्धि और उसके विनाश मे भाग्य ही एक-मात्र कारण है।

(ठ) युज् धातु तथा उससे बने हुए अन्य शब्दो के योग मे सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे—

असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य **इमामाश्रमधर्मे** नियुङ्क्ते (शकु०)—पूज्य काश्यप (कण्व) ने जो इसे आश्रम के कर्मों मे लगा रक्खा है, यह ठीक नही किया।

**त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व तस्मिन्** युज्यते—त्रिभुवन का भी राज्य उसके लिए उचित ही है।

**टिप्पणी**—युज् धातु के बाद वाले 'उचित' अर्थ मे विद्यमान उपपूर्वक 'पद्' इत्यादि धातुओ तथा उनसे बने शब्दो के योग मे भी सप्तमी आती है, षष्ठी भी प्राय प्रयुक्त होती है जैसे—

अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पे**ऽस्मिन् राजनि** (शकु०, द्वि० अ०)—अथवा इस ऋषिकल्प महाराज के लिए यह उचित ही है।

उपपन्नमिद विशेषण **वायो**—वायु के लिए यह विशेषण ठीक (उचित) ही है।

(डे) क्षिप्, मुच्, अस्, पत् (णिजन्त) इत्यादि धातुओ तथा इनसे बने हुए शब्दो के प्रयोग मे जिस पर कोई वस्तु रखी या छोडी जाती है, उसमे सप्तमी होती है, जैसे—

**मृगेषु** शरान् मुमुक्षु—हिरणो पर बाण छोडने को इच्छुक।

**योग्यसचिवे** न्यस्त समस्तो भर (रत्नावली)—समस्त राज्यभार योग्य मन्त्री पर छोड दिया गया है।

न खलु न खलु बाण सन्निपात्यो**ऽयमस्मिन्** (शकु०)—इस (सुकुमार हिरणशरीर) पर बाण न छोडो न छोडो।

शुकनासनाम्नि **मन्त्रिणि** राज्यभारमारोप्य—शुकनास नामक मन्त्री पर राज्यभार सौंप (छोड) कर।

(ढ) व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, शौण्ड, पर, प्रवीण इत्यादि शब्दो के योग मे भी सप्तमी प्रयुक्त होती है, जैसे—

**गृहकर्मणि** व्यापृता, व्यग्रा, तत्परा वा—घर के कामो मे तत्पर।

अक्षेषु निपुण, शौण्ड, प्रवीण वा—जुए मे दक्ष।

(ण) अप पूर्वक राध् तथा उससे बने शब्दो के प्रयोग मे जिसके प्रति अपराध होता है, उसमे चतुर्थी ('क्रुधद्रुहे०' सूत्र के अनुसार) के अतिरिक्त प्राय सप्तमी और कभी-कभी षष्ठी भी होती है, जैसे, कस्मिन्नपि **पूजार्हे**ऽपराद्धा शकुन्तला (शकु०, अ० ६)—किसी गुरुजन के प्रति शकुन्तला अपराध कर बैठी है।

अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत **कण्वस्य** (शकु०, ७)—मैंने पूज्य कण्व के प्रति अपराध किया है।

## (त) यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।२।२।३७।

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुकता है उसको सप्तमी मे रखते है, जैसे—

सूर्ये अस्त गते गोपा गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्वाले अपने घर चले गये।

रामे वन गते दशरथ प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सुरेशे गायति सर्वे जहसु—सुरेश के गाने पर सब हँस पडे।

सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है।

यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्वालो का घर जाना, राम के वन जाने पर दशरथ का प्राण त्याग करना, सुरेश के गाने पर सब का हँसना तथा सबके सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है, इसलिए सूर्ये, रामे, सुरेशे, सर्वेषु—ये सब के सब सप्तमी मे हैं।

**टिप्पणी**—अँग्रेजी मे जिसे Nominative absolute कहते है, वही सस्कृत मे यह 'सतिसप्तमी' अथवा 'भावे सप्तमी' (Locative absolute) है।

१०४—ऊपर के सूत्रो से यह विदित हुआ कि—

| | |
|---|---|
| प्रथमा विभक्ति | कर्तृवाच्य के कर्त्ता तथा सम्बोधन के लिए, |
| द्वितीया विभक्ति | कर्म के लिए, |
| तृतीया विभक्ति | करण के लिए, |
| चतुर्थी विभक्ति | सम्प्रदान के लिए, |
| पञ्चमी विभक्ति | अपादान के लिए, |

सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग मे आती है। अर्थात् ये छ विभक्तियाँ एक-एक करके छहो कारको का बोध कराती हैं। शेष रही षष्ठी विभक्ति, इसका क्या प्रयोग है? ऊपर (९७) मे कह आये हैं कि केवल ऐसे शब्द (सज्ञा अथवा सर्वनाम) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, कारक कहे जाते हैं। इन कारको का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए षष्ठी को छोडकर और सारी विभक्तियाँ आती हैं। वाक्य

की क्रिया से षष्ठी का कोई सम्बन्ध नही रहता, वह तो सज्ञा का सज्ञा से अथवा सज्ञा का सर्वनाम से सम्बन्ध स्थापित करती है, जैसे—

श्याम गोविन्दस्य पुत्र ताडितवान्।

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नही, सम्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का। हाँ, गोविन्द का पुत्र से सम्बन्ध है, किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनो सज्ञाएँ है। "श्याम मम पुत्र ताडितवान्' यहाँ 'मेरा' का 'पुत्र' से सम्बन्ध है, क्रिया से नही, और 'मेरा' सर्वनाम है और 'पुत्र' सज्ञा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि षष्ठी किसी कारक का बोध नही कराती। उसका क्या उपयोग है, यह नीचे के सूत्रो से प्रकट होगा।

## १०५—षष्ठी

### (क) षष्ठी शेषे।२।३।५०।

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विभक्तियो से नही बतलाई जा सकती, उनको बतलाने के लिए षष्ठी होती है। वे बाते सम्बन्धविशेष हैं। जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाये जाते हैं, वहाँ षष्ठी होती है, जैसे—

राज्ञ पुरुष—राजा का पुरुष।

यहाँ पर 'राजा' स्वामी है, 'पुरुष' भृत्य है। इस "स्वामी तथा भृत्य" का सम्बन्ध दिखाने के लिए "राज्ञ" मे षष्ठी हुई है।

बालकस्य माता—बालक की माँ।

यहाँ पर 'बालक' जन्य अर्थात् "पैदा होने वाला" है और 'माता' जननी अर्थात् "पैदा करने वाली" है, एव इसमे "जन्य-जनक" सम्बन्ध है और इसी को दिखलाने के लिए "बालकस्य" मे षष्ठी हुई है।

मृत्तिकाया घट—मिट्टी का घडा।

यहाँ पर 'मिट्टी' कारण है और 'घडा' कार्य है। एव इसमे "कार्यकारण" सम्बन्ध है और इसी को दिखाने के लिए 'मृत्तिकाया' मे षष्ठी हुई है।

### (ख) षष्ठी हेतुप्रयोगे।२।३।२६।

जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है, तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है, वह और 'हेतु' शब्द—दोनो षष्ठी मे रक्खे जाते हैं, जैसे—

अन्नस्य हेतो वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने के प्रयोजन से रहता है।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन "अन्न" है, इसलिए "अन्नस्य" और "हेतो" दोनो मे षष्ठी हुई है।

अध्ययनस्य हेतो काश्या तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी मे टिका है।

यहाँ पर टिकने का प्रयोजन या कारण "अध्ययन" है, इसलिए "अध्ययनस्य" और "हेतो" दोनो मे षष्ठी हुई है।

## (ग) सर्वनाम्नस्तृतीया च ।२।३।२७।

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है, तो सर्वनाम और हेतु शब्द—दोनो में तृतीया, पञ्चमी या षष्ठी होती है, जैसे—

"कस्य हेतो अत्र वसति<br>
या<br>
कस्मात् हेतो अत्र वसति<br>
या<br>
केन हेतुना अत्र वसति } —किस लिए यहाँ टिका है?

यहाँ पर "किम्" शब्द सर्वनाम है, इसलिए "कस्य" मे षष्ठी, "केन" मे तृतीया और "कस्मात्" मे पञ्चमी हुई है। इसी प्रकार—

तेन हेतुना<br>
तस्माद् हेतो<br>
तस्य हेतो } —उस कारण से।

येन हेतुना<br>
यस्मात् हेतो<br>
यस्य हेतो } —जिस कारण से।

## (घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासा प्रायदर्शनम् (वार्त्तिक)

"निमित्त" शब्द का अर्थ रखने वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन आदि) शब्दो का प्रयोग होने पर सर्वनाम मे तथा निमित्त का अर्थ रखने वाले शब्दो मे प्राय सभी विभक्तियाँ होती हैं, जैसे—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| किं | निमित्तम् | को | हेतु | तत् | प्रयोजनम् |
| " | " | क | हेतु | " | " |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| केन | निमित्तेन | केन | हेतुना | तेन | प्रयोजनेन |
| कस्मै | निमित्ताय | कस्मै | हेतवे | तस्मै | प्रयोजनाय |
| कस्मात् | निमित्तात् | कस्मात् | हेतो | तस्मात् | प्रयोजनात् |
| कस्य | निमित्तस्य | कस्य | हेतो | तस्य | प्रयोजनस्य |
| कस्मिन् | निमित्ते | कस्मिन् | हेतौ | तस्मिन् | प्रयोजने |

वार्त्तिक मे हुए 'प्राय' का तात्पर्य यह है कि जब सर्वनाम का प्रयोग नही रहता तब प्रथमा, द्वितीया नही होती, शेष सब विभक्तियाँ होती हैं, जैसे—

ज्ञानेन निमित्तेन<br>
ज्ञानाय निमित्ताय<br>
ज्ञानात् निमित्तात्<br>
ज्ञानस्य निमित्तस्य<br>
ज्ञाने निमित्ते

} —ज्ञान के वास्ते।

**टिप्पणी**—यद्यपि उपर्युक्त वार्त्तिक से सभी विभक्तियो का प्रयोग विहित है, तथापि प्राचीन काव्यकारो के काव्यग्रन्थो मे तृतीया, पञ्चमी तथा षष्ठी का ही प्रयोग पाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'किं निमित्त, प्रयोजन, कारणम्, अर्थम्' इत्यादि द्वितीयान्त प्रयोग भी कम नही पाये जाते।

## (ङ) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।२।३।३०।

अतसुच् (तस्) प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्दो (दक्षिणत, उत्तरत आदि) तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो (उपरि, अध, अग्रे, आदौ, पुर आदि) का जिस शब्द के साथ योग हो, उसमे षष्ठी होती है, जैसे—

ग्रामस्य दक्षिणत ।

रथस्योपरि, रथस्य उपरिष्टात्।

पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा।

वृक्षस्य अध, वृक्षस्य अधस्तात्।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुर कौतुकाधानहेतो ।

**टिप्पणी**—उपरि, अधि, अध जब दोहरा कर आते हैं, तब षष्ठी का प्रयोग नही होता किन्तु द्वितीया का (देखिये ९८ ट)।

## (च) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।२।३।३४।

दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दो का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है, जैसे—

वन ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है।

प्रत्यासन्नो माधवीमण्डपस्य—माधवी लता के कुञ्ज के समीप।

कर्णपुर प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—कानपुर प्रयाग से (के) समीप है।

**टिप्पणी**—जिससे दूरी दिखाई जाती है, उसमे षष्ठी या पञ्चमी होती है, किन्तु दूर-वाची या निकट-वाची शब्दो मे द्वितीया आदि (देखिए ६६ थ)।

## (छ) अधीगर्थदयेशां कर्मणि ।२।३।५२।

अधि पूर्वक "इ" धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन्ही अर्थ वाली अन्य [illegible] के कर्म मे षष्ठी होती है, जैसे—

मातु स्मरति—माता की य[illegible]ता है।

स्मरन् राघवबाणाना विव्यथे [illegible] वर—रामचन्द्रजी के बाणो की याद करता हुआ रावण दुखी हुआ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य [illegible] राज—महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि सवृत्त— [illegible] अपने अङ्गो का मालिक न रहा।

कथञ्चिदीशा मनसा बभूवु— [illegible] लोगो ने बडी कठिनाई से अपने मन को अपने वश मे रक्खा।

शौवस्तिकत्व विभवा न येषा [illegible]जन्ति तेषा दयसे न कस्मात्—जिनका धन प्रात काल तक भी नही टिकता, उनके ऊपर तू क्यो नही दया करता।

रामस्य दयमान—राम के [illegible] दया करता हुआ।

**टिप्पणी** (1)—सामान्यत [illegible] कर्म मे द्वितीया ही होती है, जैसे, स्मरसि गोदावरीम् (उत्तररामचरित)। [illegible] प्रकार अपूर्वक भू धातु तथा उससे बने शब्दो के योग मे चतुर्थी भी होती है (द्रष्टव्य पृ० २०५, टिप्पणी 11)।

(ii) उपर्युक्त वाक्यो मे षष्ठी का प्रयोग कर्म कारक को व्यक्त करने के लिए किया गया है। अगले सूत्र मे भी कर्ता और कर्म मे षष्ठी विभक्ति कही जायगी। यह षष्ठी 'षष्ठी शेषे' सूत्र मे 'शेष' अर्थात् सज्ञाओ और सर्वनामो के पारस्परिक सम्बन्ध-सामान्य को प्रकट करने के लिए बताई गई षष्ठी से भिन्न है। इसे कारक-षष्ठी कहते हैं। इस षष्ठी को नियम १०४ का अपवाद समझना चाहिए।

## (ज) कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६५।

जब कोई क्रिया कृदन्त रूप से प्रकट की जाती है (जैसे जाने की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से) तो उस क्रिया का जो कर्त्ता या कर्म होता है, वह कृदन्त शब्द के साथ षष्ठी मे रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ—

कृष्णस्य कृति —कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक 'कृति' शब्द है जो कि कृ धातु में कृत् क्तिन् प्रत्यय जोडने से बना है और इसका कर्त्ता 'कृष्ण' है इसलिए कृत्प्रत्ययान्त 'कृति' शब्द के साथ कर्ता 'कृष्ण' मे षष्ठी हुई है। इसी प्रकार—

रामस्य गति —राम की गति (चाल)।

बालकाना रोदनम्—बालको का रोना।

क्रतूनामाहर्ता—यज्ञो का करने वाला।

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

यहाँ पर "अध्येता" अधि उपसर्ग पूर्वक "इङ" धातु तथा तृच् प्रत्यय से बना है, इसका कर्म 'वेद' है। इसलिए कृदन्त "अध्येता" शब्द के साथ कर्म "वेद" मे षष्ठी हुई। इसी प्रकार 'क्रतूनाम्' मे भी तृजन्त 'आहर्ता' के योग मे षष्ठी हुई है।

इसी प्रकार—

विषस्य भोजनम्—विष का खाना।

राक्षसाना घात —राक्षसो का वध।

राज्यस्य प्राप्ति —राज्य की प्राप्ति।

**टिप्पणी—'गुणकर्मणि वेष्यते' (वार्तिक)**—कृदन्त के गौण कर्म मे विकल्प से षष्ठी होती है, जैसे—नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य वा।

## (अ) उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।६६।

जहाँ कर्त्ता और कर्म दोनो आये हो, वहाँ कृदन्त के योग मे कर्म मे ही षष्ठी होगी, कर्त्ता मे नही, जैसे—

आश्चर्यो गवा दोहोऽगोपेन ।

**टिप्पणी—स्त्री प्रत्यययोरकाकारयोर्नाय नियम (वार्त्तिक)**—किन्तु जब स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्यय 'अक' (ण्वुच्) या 'अ' हो तो कर्ता मे भी षष्ठी होती है, जैसे, 'भेदिका बिभित्वा वा रुद्रस्य जगत '—यहाँ भेदन क्रिया के कर्त्ता 'रुद्र' मे भी षष्ठी हुई है। 'शेषे विभाषा' वार्त्तिक से अन्य स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्ययो के प्रयोग मे कर्त्ता मे विकल्प से षष्ठी होती है, जैसे, 'विचित्रा जगत कृतिर्हरेर्हरिणा वा'—इस वाक्य मे कर्त्ता 'हरि' मे विकल्प से षष्ठी हुई है। किन्तु[1] कुछ लोगो के मतानुसार यह विकल्प स्त्रीलिङ्ग कृत्प्रत्ययो के ही कर्ता के विषय मे नही अपितु लिङ्गो के कृत्प्रत्ययो के कर्ता के विषय मे भी है, जैसे—शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा, आचार्य के द्वारा शब्दो का उपदेश।

## (आ) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ।२।२।६९।

'कर्तृकर्मणो कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययो के योग मे कर्ता तथा कर्म मे षष्ठी का विधान किया गया था, किन्तु 'नलोकाव्यय'—सूत्र 'कर्तृकर्मणो कृति' के क्षेत्र को छोटा कर देने वाला है। इसका अर्थ है—

लकार के अर्थ मे प्रयोग किये जाने वाले प्रयत्यो से अन्त होने वाले शब्दो के योग मे, उ, उक मे होने वाले कृदन्त शब्दो के योग मे, कृदन्त अव्यय के योग मे, निष्ठा (क्त, क्तवतु) मे अन्त होने वाले शब्दो के योग मे, खल् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो के योग मे तथा तृन्[2] प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो के योग मे षष्ठी नही होती।

जो प्रत्यय जिस लकार मे प्रयुक्त होता है, वह नीचे दिखाया जाता है—

---

१ स्त्रीप्रत्यय इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति—सि० कौ०।

२ तृन्निति प्रत्याहार। "शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्य आतृनो नकरात्" —सि० कौ०

शतृ तथा शानच्—लट् लकार के अर्थ मे।

क्वसु तथा कानच्—लिट् लकार के अर्थ मे।

शतृ (स्यत्) तथा शानच् (स्यमान)—लृट् लकार के अर्थ मे।

शतृ तथा शानच् 'तृन्' प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए उनका उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा, यहाँ पर क्वसु, कानच्, स्यत् स्यमान के उदाहरण दिये जायँगे—

क्वसु—काशी जग्मिवान् पुरुष स्वर्ग लभते=काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है।

कानच्—परोपकार चक्राणा जना ख्याति गच्छन्ति=परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं।

स्यत्—वन्यान् विनेष्यन् इव दुष्टसत्वान्=जङ्गल के दुष्ट जीवो को सिखाता हुआ-सा।

स्यमान्—अक्षयवट पूजयिष्यमाणा यात्रिण गङ्गातीरे एव स्थास्यन्ति=जो यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेगे, वे गङ्गा के तीर ही टिक जायँगे।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण—

उ—हरिं दिदृक्षु=हरि को देखने का इच्छुक।

उक—दैत्यान् घातुको हरि=हरि दैत्यो के हन्ता हैं।

कृदन्त अव्यय प्रधानतया णमुल्, क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् इत्यादि लगाकर बनाये जाते हैं; उनके उदाहरण—

णमुल्—स्मार स्वगृहचरित दारुभूतो मुरारि=अपने घर का चरित याद कर-कर के मुरारि काष्ठ हो गये।

क्त्वा—ससार सृष्ट्वा=ससार को रचकर।

ल्यप्—सीता परित्यज्य लक्ष्मणोऽयासीत्=सीता को त्याग कर लक्ष्मण जी चले गये।

तुमुन्—यशोऽधिगन्तु सुखमीहितु वा मनुष्यसख्यामतिवर्तितु वा=यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यो से बढ़ जाने के लिए।

क्त तथा क्तवतु 'निष्ठा' कहलाते हैं, उनके उदाहरण—

क्त—विष्णुना हता दैत्या =दैत्य लोग विष्णु से मार डाले गये।

क्तवतु—दैत्यान् हतवान् विष्णु =विष्णु ने दैत्यो को मार डाला।

खल्—सुकर प्रपञ्चो हरिणा=हरि ससार-प्रपञ्च आराम से कर डालते हैं।

तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं—शतृ, शानच्, शानन्, चानस्, तृन्। इनके उदाहरण ये है—

शतृ—बालक पश्यन्=लडके को देखता हुआ।

शानच्—क्लेश सहमान =दु ख सहता हुआ।

शानन्—सोम पवमान =सोमरस को छानता (परिष्कृत करता) हुआ।

चानस्—आत्मान मण्डयमान =अपने को अलकृत करता हुआ।

तृन्—कर्ता कटान्=चटाइयो को बनाने वाला।

**नोट**—इन सब प्रत्ययो का व्याख्यान "कृदन्त-विचार" मे आगे मिलेगा।

## (ट) क्तस्य च वर्त्तमाने ।२।३।६७।

जब क्तप्रत्ययान्त शब्द (जो कि भूतकाल का बोधक होता है, जैसे—स गत =वह गया) वर्त्तमान के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, तो षष्ठी होती है, जैसे—

अह राज्ञो मतो बुद्ध पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं।

यहाँ पर मत, बुद्ध तथा पूजित मे जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है, वह वर्तमान के अर्थ मे है, इस वाक्य की व्याख्या यो होगी—

मा राजा मन्यते, बुध्यते, पूजयति वा।

विदित तप्यमान च तेन मे भुवनत्रयम् (रघुवश, १०।३९)—मैं जानता हूँ कि उससे तीनो भुवन पीडित होते हैं।

यहाँ पर भी 'विदित' का क्त प्रत्यय वर्तमान के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। वर्त्तमानकाल के स्वरूप मे लाने पर इस वाक्य का आकार यो होगा—तेन तप्यमान भुवनत्रयम् अह वेद्मि।

**टिप्पणी**—( i ) यह सूत्र 'न लोकाव्यय०' सूत्र मे निष्ठा प्रत्ययो के योग मे निर्दिष्ट षष्ठी-निषेध का अपवाद है।

(ii) 'नपुसके भावे क्त ।३।३।११४।' सूत्र के अनुसार 'भाव' (क्रिया से सूचित होने वाला कार्य) के अर्थ मे 'क्त' प्रत्यय लगाकर बने हुए नपुसक-लिङ्ग शब्दो के योग मे भी 'कर्तृकर्मणो कृति' के अनुसार षष्ठी ही होती है, जैसे—

मयूरस्य नृत्तम्=मयूर का नर्तन।

छात्रस्य हसितम्=छात्र का हँसना।

## (ठ) कृत्यानां[1] कर्त्तरि वा ।२।३।७१।

जिन शब्दो के अन्त मे कृत्य प्रत्यय लगे रहते है, उनका प्रयोग होने पर कर्ता मे तृतीया या षष्ठी होती है, जैसे—

गुरु मया पूज्य<br>या<br>गुरु मम पूज्य } गुरुजी मेरे पूज्य हैं।

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि —भृत्यो को अपने स्वामियो को न ठगना चाहिए।

यहाँ स्पष्ट है कि "अह" तथा "अनुजीविन" जो कि यथार्थ कर्त्ता हैं, कृत्य-क्रियाओ के साथ तृतीया या षष्ठी मे हो जाते है।

## (ड) षष्ठी चानादरे ।२।३।३८।

जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, उसमे षष्ठी वा सप्तमी होती है, जैसे—

पश्यतोऽपि राज्ञ पश्यत्यपि राज्ञि वा द्विगुणमपहरन्ति धूर्ता—राजा के देखते रहने पर भी धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते है।

रुदत पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वन प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह सन्यासी हो गया।

निवारयतोऽपि पितु निवारत्यपि पितरि वा अध्ययन परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

---

१ कृत्य प्रत्यय ये हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत् क्यप् और केलिमर्।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्,
परिगलितलताना म्लायता भूरुहाणाम्।
अयि जलधर! शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोय
वितरति बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीन ॥

(ऐ बादल! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जगल की आग की ज्वालाओ से भस्म होते हुए, गलित लताओ वाले, मुरझाते हुए वृक्षो का अनादर करके तू पर्वतो के शिखरो पर तमाम पानी देता है।)

यहाँ पर 'वृक्षो' का अनादर किया गया है, इसीलिए 'भूरुहाणाम्' मे षष्ठी हुई है।

## (ढ) जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ।२।३।५६।

हिंसार्थक-जस् (णिजन्त), नि तथा प्र पूर्वक हन्, क्रथ (णिजन्त), नट (णिजन्त) तथा पिष्-धातुओ के कर्म मे षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—

निजौजसोज्जासयितु जगद्द्रुहाम् (माघ० १-३७),—जगत् के द्रोहियो को अपने तेज (बल) से मारने के लिए।

चौरस्य निहन्तु, प्रहन्तु प्रणिहन्तु वा—चोर को मारने के लिए।

अपराधिन नाटयितु क्राथयितु वा—अपराधियो का वध करने के लिए।

क्रमेण पेष्टु भुवनद्विषामपि (माघ० १-४०)—क्रमश लोक-द्रोहियो का विनाश करने के लिए।

## (ण) व्यवहृपणोः समर्थयोः ।२।३।५७।

समान अर्थ वाली व्यय (वि+अव) पूर्वक हृ तथा पण् धातुओ के कर्म मे षष्ठी विभक्ति होती है (जुआ तथा क्रय-विक्रय-व्यवहार अर्थ मे ये धातुयें समानार्थक होती हैं), जैसे—

शतस्य व्यवहारण वा—सौ का व्यवहार या जुआ।

**टिप्पणी**—परन्तु इसी अर्थ मे द्वितीया का भी प्रायेण प्रयोग दीख पडता है, जैसे—

पणस्य कृष्णां पाञ्चालीम् (महाभारत)—पचालराज की कन्या द्रौपदी को दाँव पर रख दो।

## (त) दिवस्तदर्थस्य ।२।३।५८।

'उसी' अर्थात् द्यूत एव क्रयविक्रय-व्यवहार अर्थ मे दिव् धातु के कर्म मे भी षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—

शतस्य दीव्यति—सौ का जुआ खेलता है।

परन्तु दिव् उपर्युक्त-अर्थ न होने पर कर्म मे द्वितीया ही होती है, जैसे—ब्राह्मण दीव्यति—ब्राह्मण की स्तुति करता है।

## (थ) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ।२।३।३७।

आशीर्वाद अभिप्रेत होने पर आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके अर्थ वाले अन्य शब्दो के योग मे चतुर्थी या षष्ठी होती है, जैसे—

आयुष्य चिरजीवित वा कृष्णाय कृष्णस्य वा स्यात्—कृष्ण चिरञ्जीवी हो।

वत्साय वत्सस्य वा भद्र, मद्र, कुशल, निरामय, सुख, श, हित, पथ्य वा स्यात्—पुत्र सुखी हो।

**टिप्पणी**—'हितयोगे च' वार्त्तिक मे हित के योग मे चतुर्थी ही बताई गई है, षष्ठी नही। आशीर्वाद अभिप्रेत न होने पर केवल चतुर्थी होगी—वार्त्तिक का यह अभिप्राय समझना चाहिए, जैसा कि उपर्युक्त सूत्र के व्याख्यान मे तत्त्व-बोधिनीकार ने स्पष्ट किया है—"हितयोगे च" इत्यनाशिषि चरितार्थमित्याशिष्यय विकल्प ।

(द) अनुकरण करने या सदृश होने के अर्थ मे अनु-पूर्वक कृ धातु के कर्म मे षष्ठी भी होती है, जैसे—

ततोऽनुकुर्यात्तस्या स्मितस्य (कुमार० १-४४)—तब शायद उसके स्मित (मुस्कान) की समता कर सके।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई।

द्वितीया जैसे—

सर्वाभिरन्याभि कलाभिरनुचकार त वैशम्पायन. (कादम्बरी)—वैशम्पायन भी सभी कलाओ मे उस (चन्द्रापीड) के समान हो गया।

(ध) अनुरूप, योग्य, सदृश तथा इसी अर्थ वाले अन्य शब्दो के योग मे सप्तमी के अतिरिक्त षष्ठी भी प्राय प्रयुक्त होती है, जैसे—

सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूप भवत (कादम्बरी)—मित्र पुण्डरीक! यह आपको उचित नही।

सदृशमेवैतत्स्नेहस्यानवलेपस्य (शकुन्तला)—यह अभिमान-विहीन प्रेम के सर्वथा उचित ही है।

(न) कृते, मध्ये, समक्ष आदि के योग मे भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है, जैसे—

एषा मध्ये केचिदेव विद्यार्थिन अपरे तु धनार्थिन एव—इनमे कुछ ही विद्या प्राप्त करना चाहते हैं, अन्य लोग तो धन ही चाहते हैं।

अमीषा प्राणाना कृते (भर्तृहरि का वैराग्य०)—इन प्राणो के लिए।

राज्ञ समक्षमेव—महाराज के समक्ष ही।

(प) अशाशिभाव या अवयवावयविभाव होने पर अशी या अवयवी मे षष्ठी विभक्ति होती है, जैमे—

जलस्य बिन्दु—जल की बूंद।

अयुत शरदा ययौ (रघु०, १०-१)—दस सहस्र वर्ष बीत गये।

रात्रे पूर्वम्—रात्रि का प्रथम भाग।

दिनस्य उत्तरम्—दिन का उत्तरवर्ती भाग।

(फ) प्रिय, वल्लभ तथा इसी अर्थ मे प्रयुक्त होने वाले अन्य शब्दो के योग मे षष्ठी होती है, जैसे—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तररामचरित, ६)—सीता स्वभावतया राम को प्रिय थी।

काय कस्य न वल्लभ—शरीर किसे प्रिय नही होता?

(ब) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दो के प्रयोग मे, जिनमे विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी मे होती हैं, जैसे—

एतावानेवायुष्मत शतक्रतोश्च विशेष (शकु०)—आयुष्मान् (आप) और इन्द्र मे इतना ही अन्तर है।

**भवतो मम च** समुद्रपल्लवलयोरिवान्तरम्—श्रीमान् और मुझ मे समुद्र और सरोवर का सा अन्तर है।

(भ) जब किसी कार्य या घटना के हुए कुछ काल बीता हुआ बताया जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचक शब्द षष्ठी मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा०, अ० ६)—पिता को मरे हुए आज दश महीने हो रहे हैं।

कतिपये सवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तररामचरित, ४)—तप करते हुए उन्हें कई वर्ष हो गये हैं।

---

# सप्तम सोपान

## १०६—समास-विचार

(क) छठे सोपान मे विभक्तियो का प्रयोग बताया गया है। किन्तु कही-कही शब्दो की विभक्तियो का लोप करके शब्द छोटे कर लिये जाते हैं। यह तब सम्भव होता है, जब दो से अधिक शब्द एक साथ जोड दिये जाते हैं। इस साथ मे जोडने को ही 'समास' कहते है।

'समास' शब्द 'सम्' (भली प्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका प्राय वही अर्थ है जो 'सक्षेप' शब्द का, अर्थात् दो या अधिक शब्दो को इस प्रकार साथ रख देना कि उनके आकार मे कुछ कमी भी हो जायें और अर्थ भी पूर्ण विदित हो, जैसे—

सभाया पति=सभापति ।

यहाँ 'सभापति' का वही अर्थ है जो 'सभाया पति' का, किन्तु दोनो को साथ कर देने से "सभाया" शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (—या) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'सभापति' 'सभाया पति' से छोटा हो गया।

जैसे दो शब्दो को जोड कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोडे जा सकते हैं, जैसे—

राज्ञ पुरुष=राजपुरुष, धनस्य वार्ता=धनवार्ता, इस प्रकार दो समस्त शब्द हुए। अब यदि ये दोनो जोड दिये जायँ तो राजपुरुषस्य धनवार्ता="राज-पुरुषधनवार्ता"—यह एक समस्त पद बना। इस प्रकार कितने ही शब्दो को जोडकर लम्बे-लम्बे समास बनाये जा सकते हैं। सस्कृत-साहित्य मे किसी-किसी ग्रन्थ मे ऐसे-ऐसे समास हैं जो कई पक्तियो के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और ग्रथ जटिल हो जाता है।

(ख) किसी समस्त शब्द को तोड कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना "विग्रह" कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकडे-टुकडे करना, समस्त शब्द

के टुकडे करके ही पूर्व रूप दिखाया जा सकता है, इसलिए वह विग्रह है। उदाहरणार्थ 'धनवार्ता' का विग्रह 'धनस्य वार्ता' हुआ।

किन शब्दो को कैसे और किन के साथ जोड सकते हैं, इसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम सस्कृतव्याकरणकारो ने नियत कर रक्खे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड दिया।

उदाहरणार्थ—

'रघुवश का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था' इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुवशस्य लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि आसीत्'। इसे सस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुवशलेखककालिदास प्रसिद्धकविः आसीत्'। "कवि" और "आसीत्" मे समास नही हुआ, "कालिदास" और "प्रसिद्ध" मे नही हुआ।

कब किन दशाओ मे समास हो सकता है, इसके मुख्य-मुख्य नियम इस सोपान मे दिये जाएँगे।

१०७ (क)—समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव।
(२) तत्पुरुष।
(३) द्वन्द्व और
(४) बहुव्रीहि।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास और हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु, इसलिए कभी-कभी समास के छ भेद पाये जाते हैं। इन छः भेदो के नाम इस श्लोक मे आते हैं —

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाह मद्गेहे नित्यमव्ययीभाव ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्याम्बहुव्रीहि ॥

(ख) समास के चार भेद समास मे आये हुए दोनो शब्दो की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किये गये हैं।

अव्ययीभाव समास मे समास का प्रथम शब्द प्राय प्रधान रहता है, तत्पुरुष मे प्राय दूसरा, द्वन्द्व मे प्राय दोनो प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से

एक भी प्रधान नही रहता, दोनो मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं।

## १०८—अव्ययीभाव समास

(क) 'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नही था, उसका अव्यय हो जाना। यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुजी है। अव्ययीभाव समास मे प्राय दो पद रहते है—इनमे से प्रथम प्राय अव्यय रहता है और दूसरा सज्ञा शब्द। दोनो मिलकर अव्यय हो जाते है। किसी अव्ययी-भाव शब्द के रूप नही चलते। अन्तिम शब्द का नपुसकलिङ्ग[1] के एकवचन मे जैसा रूप होता है, वही रूप अव्ययीभाव समास का हो जाता है और वही नित्य रहता है। जैसे—

यथाकामम्=काममनतिक्रम्य इति यथाकामम् (इच्छानुसार)।

"यथाकामम्" मे दो शब्द आये (१) यथा और (२) काम, इनमे 'यथा' शब्द प्रधान है, दोनो मिल कर एक अव्यय हुए (यथाकाम के रूप नही चलेंगे) और अन्तिम शब्द 'काम' ने पुल्लिङ्ग होते हुए भी, वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुसकलिङ्ग के एकवचन मे होता। इसी प्रकार 'यथा-शक्ति' (शक्तिमनतिक्रम्य इति), 'अन्तर्गिरि' (गिरिषु इति), उपगङ्गम् (गङ्गाया समीपे), प्रत्यहम् (अह अह)।

(ख) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमो को ध्यान मे रखना चाहिए।

(१) दूसरे[2] शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ रहे तो ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि अन्त मे "ए" अथवा "ऐ" हो तो उसके स्थान मे "इ" और यदि "ओ" अथवा "औ" हो तो उसके स्थान मे "उ" हो जाता है, जैसे—

उप+गङ्गा (गङ्गाया समीपे)=उपगङ्ग (और इसको नपु० एकवचन मे नित्य रखते हैं, इसलिए)=उपगङ्गम्।

---

१ अव्ययीभावश्च ।२।४।१८।—इस सूत्र के अनुसार अव्ययीभाव नपुसक-लिङ्ग में होता है।

२ ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य ।१।२।४७।

उप+नदी (नद्या समीपे)=उपनदि।

उप+वधू (वध्वा समीपे)=उपवधु।

उप+गो (गो समीपे)=उपगु।

उप+नौ (नाव समीपे)=उपनु।

(२) अन्[1] मे अन्त होने वाली सज्ञाओ मे समासान्त टच् प्रत्यय (पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग मे नित्य ही और नपुसकलिङ्ग[2] मे विकल्प से) जुडने से 'अन्' का लोप हो जाता है और टच् का 'अ' जुड जाता है, जैसे—

उप+राजन् (राज्ञ समीपे)+टच्=उपराज=उपराजम्, इसी प्रकार अध्यात्मन्।

उप+सीमन् (सीम्न समीपे)+टच्=उपसीम=उपसीमम्।

(नपु०) उप+चर्मन् (चर्मण समीपे)+टच्=उपचर्म अथवा उपचर्मम् (उपचर्मम् यदि अन् निकाल दिया जाय, अथवा उपचर्म यदि 'अन्' न निकाला जाये तो)।

(३) यदि अव्ययीभाव समास के अन्त मे झय्[3] प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे, तो विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुडता है, जैसे—

उप+समिध्+टच्=उपसमिधम्, टच् के अभाव मे, उपसमित्।

उप+सरित् (सरित समीपे)+टच्=उपसरितम्, टच् के अभाव में, उपसरित्।

१ अनश्च ।५।४।१०८।—अर्थात् अन्नन्त अव्ययीभाव समास मे टच् (तद्धित) प्रत्यय लगता है। 'नस्तद्धिते' ।६।४।१४४। के अनुसार 'टि' अर्थात् 'अन्' का लोप होगा और फिर टच् का अ आगे जुड जायगा।

२ नपुसकादन्यतरस्याम् ।५।४।१०९।—अन्नत नपुसकलिङ्ग शब्द अव्ययीभाव समास के अन्त मे आवे तो विकल्प से टच् प्रत्यय लगेगा। टच् लगने पर 'नस्तद्धिते' के अनुसार प्रथम तो अन् का लोप हो जायगा। फिर टच् का अ जुडने पर नपुसकलिङ्ग मे 'उपचर्मम्' बनेगा। टच् न लगने पर उपचर्मन् बन कर और 'नलोप प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न' का लोप होकर 'उपचर्म' बनेगा।

३ झय ।५।४।१११।

(४) शरद्[1], विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद्, कियत्, जरस्—इनमे अकार अवश्य जोड दिया जाता है, जैसे—

उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम्।

(५) नदी[2], पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्दो के अव्ययीभाव समास के अन्त मे आने पर विकल्प से टच् प्रत्यय लगता है। इस प्रकार के शब्दो के साथ अव्ययीभाव समास बनने पर दो-दो रूप सिद्ध होगे। उप+नदी=उपनदि, उपनदम्। उप+पौर्णमासी=उपपौर्णमासि, उपपौर्णमासम्। उप+आग्रहायणी= उपाग्रहायणि, उपाग्रहायणम्।

गिरि[3] शब्द के भी अव्ययीभाव के अन्त मे आने पर विकल्प से टच् लगता है। इस प्रकार, उप+गिरि =उपगिरि, उपगिरम्।

(ग) अव्ययीभाव[4] मे जो अव्यय आते हैं उनके प्राय ये अर्थ होते हैं :—

(१) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा—अधि+हरि (हरौ इति)=अधिहरि (हरि के विषय मे)।

(२) समीप का अर्थ, यथा—उप+गङ्गा अर्थात् (गङ्गाया समीपमिति)= उपगङ्गम् (गङ्गा के समीप)।

(३) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु+मद्र (मद्राणा समृद्धि )=सुमद्रम् (मद्र देश की समृद्धि)।

(४) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ, यथा—दुर्+यवन (यवनाना व्यृद्धि )=दुर्यवनम्।

---

१ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य ।५।४।१०७। जरायाजरश्च (वार्तिक) —अव्ययीभाव समास के अन्त मे आने पर शरद् इत्यादि शब्द 'टच्' प्रत्यय जुडने से अवश्य ही अकारान्त हो जाता है।

२ नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्य ।५।४।११०।

३ गिरेश्च सेनकस्य ।४।५।११२।

४ अव्यय विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चा-द्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६।

(५) अभाव, यथा—निर्+मशक (मशकानामभाव)=निर्मशकम् (मच्छरो से विमुक्त)।

(६) अत्यन्त (नाश), यथा—अति+हिम (हिमस्यात्यय)=अतिहिमम् (जाडे की समाप्ति)।

(७) असम्प्रति (अनौचित्य), यथा—अति+निद्रा (निद्रा सम्प्रति न युज्यते)—अतिनिद्रम् (निद्रा के अनुपयुक्त काल मे)।

(८) शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश), यथा—इति+हरि (हरि-शब्दस्य प्रकाश)=इतिहरि (हरि शब्द का उच्चारण)।

(९) पश्चात्, यथा—अनु+विष्णु (विष्णो पश्चात्)=अनुविष्णु (विष्णु के पीछे)।

(१०) 'यथा'[१] का भाव (योग्यता), यथा—अनु+रूप (रूपस्य योग्यम्)= अनुरूपम् (योग्य या उचित)।

,, (वीप्सा), यथा—प्रति+अर्थ (अर्थमर्थं प्रति)=प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ मे)।

,, (अनतिक्रम), यथा—यथा+शक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य) =यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)।

,, (सादृश्य), यथा—सह+हरि (हरे सादृश्यम्)=सहरि (हरि के सदृश)।

(११) आनुपूर्व्य (अर्थात् क्रम), यथा—अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानु-पूर्व्येण)=अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार)।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना), यथा—सह[२]+चक्र (चक्रेण युगपत्) =सचक्रम् अर्थात् चक्र के साथ ही (अव्ययीभाव समास मे काल से भिन्न अर्थ मे सह का 'स' हो जाता है।

(१३) सादृश्य का उदाहरण ऊपर (१०) के अन्तर्गत आ चुका है।

---

१ योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्था (भट्टोजिकृत वृत्ति से)

२ अव्ययीभावे चाकाले ।६।३।८१।

(१४) सम्पत्ति (योग्यतानुसार सम्पत्ति को 'सम्पत्ति' कहते हैं, योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त हो तो उसे 'समृद्धि' या ऋद्धि कहते हैं। इसी कारण ऊपर 'समृद्धि' के आ चुकने पर भी यहाँ 'सम्पत्ति' शब्द आया), यथा—स+क्षत्र ('क्षत्राणां सम्पत्ति )=सक्षत्रम् ।

(१५) साकल्य (सब को शामिल कर लेना), यथा—सह+तृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य)=सतृणम् (सब कुछ) ।

(१६) अन्त ('तक' के अर्थ मे), यथा—सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्य्यन्तम्)=साग्नि (अग्निकाण्डपर्यन्त) ।

काल[1] से अतिरिक्त अर्थ मे अव्ययीभाव समास मे 'सह' का स हो जाता है। कालवाचक शब्द के साथ समास किये जाने पर 'सह' ही रहता है, यथा—सह+पूर्वाह्ण=सहपूर्वाह्णम् होगा ।

अवधारण[2] अर्थ मे 'यावद्' के साथ भी अव्ययीभाव समास बनता है; जैसे 'यावन्त श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामा'—इस अर्थ मे यावच्छ्लोकम् समासपद बनेगा ।

मर्यादा[3] और अभिविधि के अर्थ मे आङ के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास बनते हैं। समास न करने पर पञ्चमी विभक्ति करनी पडती है, जैसे आ मुक्ते इति आमुक्ति अर्थात् मुक्ति-पर्यन्त । 'आमुक्ति (आ मुक्तेर्वा) ससार । इसी प्रकार अभिविधि मे 'आबालम् (आ बालेभ्यो वा) हरिभक्ति' ।

आभिमुख्यद्योतक[4] "अभि" और "प्रति" लक्षण अर्थात् चिह्नवाची पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते हैं, जैसे—अग्निमभि इति अभ्यग्नि, अग्नि प्रति इति प्रत्यग्नि। अभ्यग्नि प्रत्यग्नि (अग्नि की ओर) शलभा पतन्ति ।

---

१ द्रष्टव्य पिछले पृष्ठ का नोट न० २ ।

२ यावदवधारणे ।२।१।८।

३ आङ् मर्यादाभिविध्यो ।२।१।१३।

४ लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ।२।१।१४।

जिस[1] पदार्थ से किसी का सामीप्य दिखाया जाता है, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ सामीप्यसूचक "अनु" अव्ययीभाव बनता है, जैसे अनुवनमशनिर्गत (वनस्य समीपमित्यर्थ )।

"पारे"[2] और "मध्ये" (सप्तम्यन्त) शब्द षष्ठयन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते है, और विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष भी, जैसे गङ्गाया पारे इति पारेगङ्गम् गङ्गापारे। इसी प्रकार मध्येगङ्गम् या गङ्गामध्ये।

## १०९—तत्पुरुष समास

(क) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं, जिसमे प्रथम शब्द द्वितीय शब्द की विशेषता बताये।

चूँकि तत्पुरुष का प्रथमपद वैशिष्ट्यबोधक होता है अथवा विशेषण का कार्य करता है और उत्तर पद विशेष होता है, और चूँकि विशेष्य प्रधान होता है, इसीलिए तत्पुरुष को प्रायेण, 'उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष'—ऐसी व्याख्या की गई है।

जैसे—राज्ञ पुरुष =राजपुरुष —यहाँ "राज्ञ" एक प्रकार से "पुरुष" का विशेषण है, अथवा कृष्ण सर्प =कृष्णसर्प —"कृष्ण" शब्द "सर्प" शब्द का विशेषण है। (किन्तु नित्य-समास वाले कृष्णसर्प का विग्रह नही होगा)।

(ख) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) तस्य पुरुष = तत्पुरुष (२) स पुरुष =तत्पुरुष । इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं। (१) व्यधिकरण अर्थात् जिसमे समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति मे हो, (२) समानाधिकरण अर्थात् जिसमे प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो। ऊपर के उदाहरणो मे "राजपुरुष" व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और "कृष्णसर्प" समानाधिकरण का।

## ११०—व्यधिकरणतत्पुरुष समास

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छ भेद होते हैं—

(१) द्वितीया तत्पुरुष।

(२) तृतीया तत्पुरुष।

---

१ अनुर्यत्समया ।२।१।१५।

२ पारे मध्ये षष्ठ्या वा ।२।१।१८।

(३) चतुर्थी तत्पुरुष।
(४) पञ्चमी तत्पुरुष।
(५) षष्ठी तत्पुरुष।
(६) सप्तमी तत्पुरुष।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति मे रहा हो, तो वह "द्वितीया तत्पुरुष" होगा। इसी प्रकार जिस विभक्ति मे प्रथम शब्द रहेगा, उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा।

सात विभक्तियो मे केवल प्रथमा विभक्ति शेष रही। यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति मे रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नही सकता, समानाधिकरण हो जायगा। इस कारण ये छ ही भेद व्यधिकरण के होते है।

**(क) द्वितीया तत्पुरुष**—यह समास थोडे से ही शब्दो मे होता है। मुख्य ये हैं—

(१) द्वितीया[1] जब श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यन्त, प्राप्त, आपन्न शब्दो के सयोग मे आती है, तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है,
यथा—

कृष्ण श्रित =कृष्णाश्रित (कृष्ण पर आश्रित हुआ)।
दु खमतीत =दु खातीत (दु ख के पार गया हुआ)।
अग्नि पतित =अग्निपतित (अग्नि मे गिरा हुआ)।
प्रलय गत =प्रलयगत (विनाश को प्राप्त)।
मेघम् अत्यस्त =मेघात्यस्त (मेघ के पार पहुँचा हुआ)।
जीवन प्राप्त =जीवनप्राप्त (जीवन पाया हुआ)।
कष्टम् आपन्न =कष्टापन्न (कष्ट पाया हुआ) इत्यादि।

आपन्न[2] और प्राप्त शब्द द्वितीयान्त के साथ समास बनाने पर प्रथम भी प्रयुक्त होते हैं जैसे प्राप्तजीवन और आपन्नकष्ट।

---

१ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै ।२।१।२४।
२ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।२।२।४।

गमी[1] आदि शब्दो के साथ भी द्वितीया तत्पुरुष होता है, जैसे, ग्राम गमी इति ग्रामगमी। अन्न बुभुक्षु इति अन्नबुभुक्षु (अन्न का भूखा)।

कालवाची[2] द्वितीयान्त शब्द क्तान्त कृदन्त शब्दो के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं। जैसे मास प्रमित (परिच्छेत्तुमारब्धवानित्यर्थ) इति 'मास-प्रमित' प्रतिपच्चन्द्र ।

अत्यन्त सयोग[3] या सातत्य व्यक्त करने वाले कालवाची द्वितीयान्तशब्द भी द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं, जैसे, मुहूर्तम् सुखमिति मुहूर्तसुखम्। इसी प्रकार मुहूर्तव्यापि, क्षणस्थायि इत्यादि।

**टिप्पणी**—इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि पहिला नियम केवल कालवाचक शब्दो के विषय मे है और दूसरा अत्यन्तसयोग प्रकट करने वाले कृदन्तो के साथ द्वितीया तत्पुरुष बनाते हैं, परन्तु दूसरे मे उत्तरपद क्तान्त नही होता।

**(ख) तृतीया तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति मे हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते है। यह समास अधिकतर इन दशाओ मे होता है—

(१) जब[4] तृतीयान्त कर्त्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त हो, यथा—

हरिणा त्रात =हरित्रात (इस उदाहरण मे "हरिणा" तृतीयान्त है और कर्त्ता है, और "त्रात" कृदन्त है जो "क्त' प्रत्यय से बना है)।

नखैर्भिन्न =नखभिन्न (यहाँ "नखै" तृतीयान्त है और करण है और "भिन्न" कृदन्त है जो 'भिद्' धातु से क्त प्रत्यय जोडकर बना है)।

---

१ गम्यादीनामुपसख्यानम्।

२ काला ।२।१।२८।

३ अत्यन्तसयोगे च ।२।१।२९।

४ कर्तृकरणे कृता बहुलम् ।२।१।३२।

जब[1] तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम शब्दो मे से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह (लडाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दो मे से अथवा इनके समान अर्थ रखने वालो मे से कोई शब्द आवे, यथा—

मासेन पूर्व =मासपूर्व , मात्रा सदृश =मातृसदृश , पित्रा सम =पितृसम , धान्येन ऊनम्=धान्योनम्, धान्येन विकलम्=धान्यविकलम्, वाचा कलह = वाक्कलह , वाचा युद्ध=वाग्युद्ध, आचारेण निपुण =आचारनिपुण , आचारेण कुशल =आचारकुशल , गुडेन मिश्र=गुडमिश्रम्, गुडेन युक्तम्=गुडयुक्तम्, घर्षणेन श्लक्ष्णम्=घर्षणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्ष्णम्=कुट्टनश्लक्ष्णम् अर्थात् कूटने से चिकना ।

अवर[2] शब्द की भी गणना इन्ही शब्दो के साथ करनी चाहिए। अर्थात् अवर के साथ भी तृतीया तत्पुरुष समास बनेगा, जैसे मासेन अवर =मासावर , अर्थात् एक माह छोटा ।

सस्कार[3] करने वाले द्रव्य का वाचक तृतीयान्त शब्द अन्न-वाचक शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष समास बनाता है, जैसे दध्ना ओदन इति दध्योदन ।

**(घ) चतुर्थी तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का शब्द चतुर्थी विभक्ति मे रहे, तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्यतया यह तब होता है, जब कोई वस्तु (जो किसी से बनी हो या बनती हो) चतुर्थी मे आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके अनन्तर आवे, जैसे—

यूपाय दारु=यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका=कुम्भमृत्तिका ।

चतुर्थ्यन्त[4] शब्द तदर्थ, बलि, हित, सुख तथा रक्षित के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष बनाते हैं, जैसे, द्विजाय अयमिति द्विजार्थ । भूतेभ्यो बलि इति भूत-बलि । ब्राह्मणाय हितम् इति ब्राह्मणहितम् । इसी प्रकार गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम् इत्यादि ।

---

१ पूर्वसदृशसमानार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णै ।२।१।३१।

२ अवरस्योपसख्यानम् (वार्त्तिक) ।

३ अन्नेन व्यञ्जनम् ।२।१।३४।

४ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै ।२।१।३६।

**नोट**—अर्थ[1] शब्द के साथ जो समास बनते हैं, वे वस्तुत चतुर्थी तत्पुरुष होते हुए भी नित्य समास कहाते है, क्योकि उनका अपने पदो से विग्रह हो ही नही सकता। उन समस्त पदो के लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होते है।

(च) **पञ्चमी तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति मे आवे, तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं।

मुख्यरूप[2] से यह समास तब होता है, जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय, भीति और भी' के साथ आवे, जैसे—

चौराद् भय=चौरभय, स्तेनाद् भीत =स्तेनभीत, वृकाद् भीति =वृकभीति, अयशस भी =अयशोभी, इत्यादि।

(छ) स्तोक,[3] अन्तिक, दूर तथा इनके वाचक अन्य शब्द एव कृच्छ्र, शब्द पञ्चम्यन्त के साथ समास बनाते है परन्तु पञ्चमी का लोप नही होता, जैसे—

स्तोकात् मुक्त =स्तोकान्मुक्त,

अन्तिकात् आगत =अन्तिकादागत,

दूरात् आगत =दूरादागत,

कृच्छ्रात् आगत =कृच्छ्रादागत,

(ज) **षष्ठी तत्पुरुष**[4] समास उसे कहते हैं जिसमे प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति मे हो। यह समास प्राय सभी षष्ठ्यन्त शब्दो के साथ होता है। जैसे—राज्ञ. पुरुष =राजपुरुष।

इसके कुछ अपवाद है, उनमे से मुख्य-मुख्य यहाँ दिये जाते हैं—

(१) जब षष्ठी तृच् प्रत्यय मे अन्त होने वाले कर्त्ता, भर्त्ता, स्रष्टा

---

१ अर्थेन नित्यसमासो विशेषलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। (वार्त्तिक)

२ पञ्चमी भयेन ।२।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्। (वार्त्तिक)

३ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ।२।१।३९।

४ षष्ठी ।२।२।८।

५ तृजकाभ्या कर्तरि ।२।२।१५। (और जहाँ 'त्रिभुवनविधातु' आदि मे षष्ठी समास दिखाई पडे उसे शेषे षष्ठी वाली समझनी चाहिए, कर्त्तरि षष्ठी नही)।

आदि अथवा अक् प्रत्यय मे अन्त होने वाले पाचक, याजक, सेवक आदि कर्तृ-वाचक शब्दो के साथ आवे, जैसे—

घटस्य कर्त्ता, जगत स्रष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचक ।

किन्तु याजक[1] इत्यादि शब्दो के साथ षष्ठी समास होता है, जैसे—ब्राह्मणयाजक । "इत्यादि" शब्द से पूजक, परिचारक, परिवेषक, स्नातक, अध्यापक, उत्पादक, होतृ, पोतृ, भर्तृ (पति), रथगणक तथा पत्तिगणक शब्दो को समझना चाहिए। इनके साथ षष्ठी-समास बनता है।

(२) निर्धारण[2] (किसी वस्तु की दूसरो से विशिष्टता दिखाने) के अर्थ मे प्रयोग मे आई हुई षष्ठी का समास नही होता, जैसे—

'नृणा द्विज श्रेष्ठ', 'गवा कृष्णा बहुक्षीरा' इत्यादि मे समास नहीं होगा।

किन्तु[3] यदि तरप् प्रत्यय मे अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के साथ षष्ठी आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय का लोप भी हो जायगा, जैसे—

सर्वेषा श्वेततर सर्वश्वेत, सर्वेषा महत्तर सर्वमहान्।

पूरणार्थक[4] प्रत्ययो से बने हुए शब्दो के साथ, गुणवाचक शब्दो के साथ, सुहित अर्थात् तृप्ति अर्थ वाले शब्दो के साथ, शतृ एव शानच् प्रत्ययान्त शब्दो के साथ, कृदन्त अव्ययो के साथ, तव्य प्रत्यय से बने शब्दो के साथ तथा समानाधिकरण शब्दो के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास नही होता। जैसे—सता षष्ठ, काकस्य कार्ष्ण्यम्, फलाना सुहित, द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्, तक्षकस्य, सर्पस्य।

**टिप्पणी**—तव्यत् से बने शब्दो के साथ षष्ठी समास होता है । वस्तुत तव्य और तव्यत् मे कोई अन्तर नही। तत् से केवल इतना सूचित होता है कि

१ याजकादिभिश्च ।२।२।९।

२ न निर्धारणे ।२।२।१०।

३ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्। (वार्त्तिक)

४ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ।२।२।११।

तव्यत् से बने शब्द स्वरित स्वर वाले होते हैं। 'स्वकर्त्तव्यम्' समस्त पद तो बनेगा ही और उसमे अन्तस्वरित होगा। समानाधिकरण के भी सम्बन्ध मे इतना जानना आवश्यक है कि विशेषणपूर्वपदकर्मधारय (जो समानाधिकरण तत्पुरुष का एक भेद है और जिसमे दोनो पद समानाधिकरण अर्थात् समान लिङ्ग और विभक्ति वाले होते हैं) के अतिरिक्त समानाधिकरण शब्दो मे ही समास का निषेध इस स्थल मे किया गया है।

पूजार्थवाची[1] क्त प्रत्ययान्त शब्दो के साथ भी षष्ठी तत्पुरुष समास नही होता, जैसे राज्ञा मतो बुद्ध पूजितो वा। 'राजमत' इत्यादि पद नही बन सकते।

**सप्तमी तत्पुरुष** समास उसे कहते हैं, जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति मे रहा हो। यह समास भी विशेष दशाओ मे ही होता है। कुछ ये हैं—

(१) जब[2] सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, सवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पट, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध[3], शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दो मे से किसी के साथ आवे, जैसे—

अक्षेषु शौण्ड =अक्षशौण्ड, प्रेम्णि धूर्त =प्रेमधूर्त, द्यूते कितव =द्यूतकितव, सभाया पण्डित =सभापण्डित, आतपे शुष्क =आतपशुष्क, कटाहे पक्व = कटाहपक्व, चक्रे बन्ध =चक्रबन्ध।

(२) जब[4] ध्वाङ्क्ष (कौवा) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दो के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे, जैसे—

तीर्थे ध्वाङ्क्ष =तीर्थध्वाङ्क्ष (तीर्थ का कौवा अर्थात् लोलुप), श्राद्धे काक =श्राद्धकाक इत्यादि।

## समानाधिकरण तत्पुरुष समास

१११ (क)—समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे

---

१ क्तेन च पूजायाम् ।२।२।१२।

२ सप्तमी शौण्डै ।२।१।४०।

३ शिद्धशष्कपक्वबन्धैश्च ।२।१।४१।

४ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ।२।१।४२। ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थं ग्रहणम् (वार्त्तिक)।

हो तो वह आसन उन दानो का समानाधिकरण हुआ, किन्तु यदि दोनो अलग-अलग आसनो पर बैठे हो तो अलग-अलग अधिकरण हुआ, अर्थात् "व्यधिकरण" हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय मे दो मनुष्य उपस्थित हो तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न-भिन्न समय मे हो तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दो के विषय मे भी, जैसे—

राज्ञ +पुरुष—इसमे यह आवश्यक नही कि राजा और उसका पुरुष दोनो एक स्थान और एक समय मे हो, इसलिए यहाँ समानाधिकरण नही है, किन्तु कृष्ण +सर्प यहाँ कालापन साँप के साथ-साथ है, वह साँप जहाँ-जहाँ और जिस-जिस समय मे रहेगा, कालापन भी उसके साथ-साथ रहेगा, नही तो उसको कृष्ण सर्प नही कह सकेगे, इसलिए इस उदाहरण मे समानाधिकरण है।

(ख) तत्पुरुष[1] समास का लक्षण ऊपर बता आये है कि ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण-स्वरूप हो। ऐसा तत्पुरुष समास जिसमे (समास मे आये हुए) दोनो शब्दो का समानाधिकरण हो, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनो शब्दो को धारण कर सकती है, इसलिए यह नाम पडा है, जैसे—'कृष्णसर्प अपसर्पति' इस वाक्य मे सर्प जब-जब क्रिया करता है, तो कृष्णत्व उसके साथ रहता है। "राज्ञ पुरुष अपसर्पति" मे राजा पुरुष के साथ नही है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष मे मोटे तौर से यह भेद है कि पहले मे समास शब्द प्रथमा को छोडकर और किसी विभक्ति मे होता है, दूसरे मे प्रथमा मे होता है।

(घ) कर्मधारय समास मे प्रथम शब्द या तो द्वितीया का विशेषण होना चाहिए और द्वितीया शब्द सज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनो सज्ञा हो, किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हो अथवा दोनो विशेषण हो जिसमे समय पडने पर किसी तीसरे शब्द का सयुक्त विशेषण रहे। नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समास दिये जाते हैं।

११२ (क)—जब[2] प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य, तो उस कर्मधारय समास को 'विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' कहते है, जैसे—कृष्ण

---

१ तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय ।१।२।४२।

२ विशेषण विशेष्येण बहुलम् ।२।१।५७।

सर्प=कृष्णसर्प । नीलम् उत्पलम्=नीलोत्पलम् । रक्त कमलम्=रक्त-कमलम् ।

(१) 'किम्' शब्द[1] का अर्थ जब 'खराब', 'बुरा' होता है, तब इस पद का समास किसी सञ्ज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है, जैसे—

कुत्सित पुरुष=किम्पुरुष, कुत्सित देश=किंदेश, कुत्सित सखा=किंसखा, कुत्सित प्रभु=किम्प्रभु ।

## (ख) उपमानपूर्वपदकर्मधारय

जब[2] किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्वपद' कर्मधारय होगा। जैसे घन इव श्याम=घनश्याम । चन्द्र इव आह्लादक=चन्द्राह्लादक ।

प्रथम उदाहरण मे किसी वस्तु की बादल से उपमा दी गई है और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल। यहाँ 'बादल' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण मे 'चन्द्र' उपमान और 'आह्लादक' सामान्य गुण है। इस समास मे उपमान प्रथम आता है, इसीलिए इसको 'उपमानपूर्वपद' कहते है।

## (ग) उपमानोत्तरपदकर्मधारय

जब[3] उपमित (जिस वस्तु की उपमा दी जाय) और उपमान (जिससे उपमा दी जाये)—दोनो साथ-साथ आवे, तब उस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं, क्योकि यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है, जैसे—मुख कमलमिव=मुखकमलम् । पुरुष व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्र ।

**नोट**—(ख) के अन्तर्गत समासो मे वह गुण कर दिया गया है जिसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासो मे वह गुण प्रकट नही किया जाता, केवल यह बता दिया जाता है कि उपमेय और उपमान समान है।

---

१ किं क्षेपे ।२।१।६४।

२ उपमानानि सामान्यवचनै ।२।१।५५।

३ उपमित व्याघ्रादिभि सामान्याप्रयोगे ।२।१।५६।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्र आदि इस श्रेणी के समासो का दो प्रकार से विग्रह कर सकते हैं। (१) मुखमेव कमलम् और पुरुष एव व्याघ्र और (२) मुख कमलमिव और पुरुष व्याघ्र इव।

पहले को रूपक समास कहेंगे क्योकि एक पर दूसरे को आरोप किया गया है। (काव्यो के प्राचीन टीकाकारो ने ऐसे रूपक समास के स्थलो पर मयूर व्यसकादि समास माना है।) और दूसरे को उपमितसमास कहेंगे, क्योकि इसमे उपमा है।

## (घ) विशेषणोभयपदकर्मधारय

दो समानाधिकरण विशेषणो के समास को 'विशेषणोभयपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च=कृष्णश्वेत (अश्व)।

इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुत विशेषण ही होते हैं, इसी प्रकार समास बनाते हैं, जैसे—स्नातश्च अनुलिप्तश्च=स्नातानुलिप्त ।

दो विशेषणो मे से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है, जैसे—चरञ्च अचरञ्च=चराचरम् (जगत)। कृतञ्च अकृतञ्च=कृताकृतम् (कर्म)।

---

# द्विगु समास

११३—जब[1] कर्मधारय समास मे प्रथम शब्द सख्यावाची हो और दूसरा कोई सज्ञा, तो उस समास को 'द्विगु समास' कहते हैं।

'द्विगु' शब्द मे स्वय प्रथम शब्द 'द्वि' सख्यावाची और दूसरा 'गु' (गो) सज्ञा है।

(क) द्विगु[2] समास तभी होता है, जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो, जैसे—

१ सख्यापूर्वो द्विगु ।२।१।३२।

२ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ।२।१।५१।

(१) षष्+मातृ=षण्मातृ+अ (तद्धित प्रत्यय)=षाण्मातुर (षण्णा मातृणामपत्य पुमान्),

या उसको किसी और शब्द के समास मे आना हो, जैसे—

(२) पञ्चगाव धन यस्य स =पञ्चगवधन ।

यहाँ 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको 'धन' के साथ फिर समास मे न आना होता। उपर्युक्त समास साधारण द्विगु (सामान्य द्विगु) के उदाहरण समझे जाने चाहिए।

(ख) या द्विगु[1] समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस दशा मे वह सदा नपुसकलिङ्ग[2] एक वचन मे रहेगा, जैसे—

पञ्चाना गवा समाहार =पञ्चगवम् ।

पञ्चाना ग्रामाणा समाहार =पञ्चग्रामम् ।

पञ्चाना पात्राणाम् समाहार =पञ्चपात्रम् ।

चतुर्णां युगाना समाहार =चतुर्युगम् ।

त्रयाणा भुवनाना समाहार =त्रिभुवनम् इत्यादि ।

(३) वट, लोक तथा मूल इत्यादि अकारान्त शब्दो के साथ समाहार द्विगु समास होने पर समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। परन्तु पात्र, भुवन, युग इत्यादि मे अन्त होने वाले द्विगु समास नही ।

पञ्चाना मूलाना समाहार =पञ्चमूली ।[3]

पञ्चाना वटाना समाहार =पञ्चवटी ।

त्रयाणा लोकाना समाहार =त्रिलोकी ।

(४) यदि[4] समाहार द्विगु का उत्तरपद आकारान्त हो तो समस्तपद विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होता है।

पञ्चाना खट्वाना समाहार =पञ्चखट्वा ।

---

१ द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१।

२ स नपुसकम् ।२।४।१७। अर्थात् समाहार मे द्विगु आर द्वन्द्व नपुसकलिङ्ग मे होते हैं।

३ अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट । पात्रान्तस्य न । (वार्त्तिक)

४ आबन्तो वा (वार्त्तिक)

## ११४—अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिकरण और समानाधिकरण हैं, उनका विचार किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासो का विचार किया जायगा जो वस्तुत तत्पुरुष होते हुए भी कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं।

### (क) नञ् तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष मे प्रथम शब्द 'न' (नञ्) रहे और दूसरा कोई सज्ञा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है।[1] यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' मे और स्वर के पूर्व 'अन्' मे बदल जाता है[2] यथा—

न ब्राह्मण=अब्राह्मण (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो), न गर्दभ= अगर्दभ (ऐसा जानवर जो गदहा न हो), न अब्जम्=अनब्जम् (जो कमल न हो), न सत्यम्=असत्यम्, न चरम्=अचरम्, न कृतम्=अकृतम्, न आगतम्=अनागतम्।

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि 'न' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाव कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए, विद्यमान है।

### (ख) प्रादि तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष मे प्रथम शब्द कु शब्द हो अथवा 'प्र' आदि उपसर्गों मे से कोई हो, अथवा गतिसज्ञक कोई पद हो, तब उसे 'प्रादि' तत्पुरुष कहते हैं।[3]

इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषण का अर्थ निकलता है, इसीलिये यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है। उदाहरणार्थ—

कुत्सित पुरुष=कुपुरुष।
प्रगत[4] (बहुत विद्वान्) आचार्य=प्राचार्य,

---

१ नञ् ।२।२।६।

२ नलोपो नञ ।६।३।३। तस्मान्नुडचि ।६।३।७४।

३ कुगतिप्रादय ।२।२।१८।

४ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया।

प्रगत (बडे) पितामह=प्रपितामह,

अतिक्रान्त[1] मर्यादाम्=अतिमर्याद (जिसने हद पार कर दी हो),

उद्गत (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलाम् (किनारा)=उद्वेल,

अवक्रुष्ट[2] कोकिलया=अवकोकिल (कोकिला से उच्चारण किया हुआ—मुग्ध)

परिग्लानोऽध्ययनाय[3]=पर्यध्ययन (पढ़ने से थका हुआ),

निर्गत[4] गृहात्=निर्गृह (घर से निकला हुआ) इत्यादि।

## (ग) गति तत्पुरुष समास

कुछ कृत् प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो के साथ कुछ विशेष शब्दो (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं।

ऊरी[5] आदि निपात क्रिया के योग मे गति कहलाते हैं। इसी से यह समास गति-समास कहलाता है। च्वि तथा डाच् प्रत्ययो से युक्त शब्द भी गति कहलाते हैं। दो एक उदाहरण ये हैं—

ऊरी कृत्वा=ऊरीकृत्य। शुक्लीभूय (सफेद होकर)। नीलीकृत्य (नीला करके)। इसी प्रकार स्वीकृत्य, पटपटाकृत्य।

'भूषण'[6] अर्थवाची होने पर 'अलम्' की भी गति सज्ञा होती है। अल (भूषित) कृत्वा—अलकृत्य (भूषित करके)।

आदर[7] तथा अनादर अर्थ मे 'सत्' और 'असत्' भी क्रमश गति कहलाते हैं, जैसे, सत्कृत्य (आदर करके)।

---

१ अत्यादय क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया।

२ अवादय क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया।

३ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या।

४ निरादय क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या।

५ ऊर्यादिच्विडाचश्च।१।४।६१।

६ भूषणेऽलम्।१।४।६४।

७ आदरानादरयो सदसती।१।४।६३।

अपरिग्रह[1] से भिन्न (अर्थात् मध्य) अर्थ मे "अन्तर्" भी गति कहलाता है, जैसे, अन्तर्हत्य—मध्ये हत्वा इत्यर्थ ।

साक्षात्[2] इत्यादि भी कृधातु के साथ विकल्प से गति कहलाते हैं। गति-सज्ञक होने पर 'साक्षात्कृत्य' बनेगा, अन्यथा 'साक्षात्कृत्वा'।

पुर[3] नित्य गति कहलाता है। समास होने पर "पुरस्कृत्य" बनेगा।

"अस्तम्"[4] शब्द मान्त अव्यय है और गति-सज्ञक होता है। समास होने पर "अस्तगत्य" रूप होगा।

"तिर"[5] शब्द अन्तर्धान के अर्थ मे नित्य गति-सज्ञक होता है—तिरोभूय।

तिर[6] कृ के साथ विकल्प से गति होता है—तिरस्कृत्य और तिर कृत्य या तिर कृत्वा।

## (घ) उपपद तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसा पद हो जिसके कर्म आदि रूप से रहने पर ही उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप सिद्ध हो सकता है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया न होना चाहिए बल्कि कृदन्त का होना चाहिए, किन्तु ऐसा हो जो प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए[7]। प्रथम शब्द को उपपद[8] कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पडा। उदाहरणार्थ—

कुम्भ करोति इति=कुम्भकार ।

---

१ अन्तर परिग्रहे ।२।४।६५।
२ साक्षात्प्रभृतीनि च ।१।४।७४।
३ पुरोऽव्ययम् ।१।४।६७।
४ अस्त च ।१।४।६८।
५ तिरोऽन्तर्धौ ।१।४।७१।
६ विभाषा कृञि ।१।४।७२।
७ उपपदमतिङ् ।२।२।१९।
८ तत्रोपपद सप्तमीस्थम ।३।१।९२।

यहाँ समास मे 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' कर्म रूप से उपपद है। 'कार' क्रिया का रूप नही, कृदन्त का है, किन्तु यदि पूर्व मे उपपद न हो तो 'कार' अपने आप नही ठहर सकता। 'कार' उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नही है, हम 'कार' का प्रयोग अकेले नही कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते है, जैसे—चर्मकार, स्वर्णकार। इसी प्रकार—सामगायतीति सामग। यहाँ 'साम' उपपद रहने के कारण 'ग' शब्द है, 'ग' का प्रयोग अकेले नही हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार—धन ददातीति धनद, कम्बल ददातीति कम्बलद, गा ददातीति गोद आदि होगा।

जिन तृतीयान्त[1] आदि पदो के रहने पर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययो का विधान किया जाता है, वे विकल्प से समास बनाते हैं, जैसे उच्चै कृत्य, एकधाभूय आदि। समास न होने पर उच्चै कृत्वा होगा।

## (च) अलुक् तत्पुरुष समास

समास मे प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाता है यह ऊपर बता चुके हैं, जैसे—कुम्भ+कार=कुम्भकार। चरणयो+सेवक=चरण-सेवक। किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिनमें पूर्व पद की विभक्ति का लोप नही होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। अलुक् समास के केवल ऐसे उदाहरण हैं जो साहित्य मे पूर्व ग्रन्थकारो के ग्रथो मे मिलते हैं। उनके अतिरिक्त किसी समास मे विभक्ति (प्रत्यय) का लोप न करने का हम लोगो को अधिकार नही है। अलुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैं—

मनसागप्ता (किसी स्त्री का नाम), जनुषान्ध (जन्मान्ध), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागत, देवानाप्रिय (मूर्ख), [देवप्रिय (देवताओ को प्रिय) षष्ठी तत्पुरुष समास भी बनता है, पर भिन्न अर्थ मे] पश्यतोहर (देखते-देखते चुराने वाला, अर्थात् सुनार या डाकू), युधिष्ठिर, (युद्ध मे डटा रहने वाला), अन्तेवासी (शिष्य), सरसिजम् (कमल), खेचर (पक्षी, देव, सिद्ध आदि आकाश मे चलने वाले) इत्यादि।

---

[1] क्त्वा च।२।२।२२'

## (छ) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमे पूर्वपद का उत्तर भाग गायब हो गया हो, जिसे साधारण दशा मे रहना चाहिए था, "मध्यमपदलोपी समास" के नाम से बोले जाते हैं। ऐसे 'शाकपार्थिव' आदि समस्त शब्द प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ—

शाकप्रिय पार्थिव =शाकपार्थिव । देवपूजक ब्राह्मण =देवब्राह्मण ।

इन उदहारणो मे 'प्रिय' और 'पूजक' शब्द जो मध्य मे आते हैं, रहने चाहिए थे, किन्तु नही रहे।

**टिप्पणी**—इसका नाम वार्तिककार के 'शाकपार्थिवादीना सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसख्यानम्' वार्त्तिक के अनुसार शाकपार्थिव समास या उत्तरपदलोपी समास रखना ही ठीक है। पर प्राचीन टीकाकारो की टीकाओ मे इन समासो का मध्यमपदलोपी नाम भी मिलता है। इसी से ऊपर मध्यमपदलोपी शीर्षक दिया गया।

## (ज) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमे नियमो का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन है, उनको पाणिनि ने मयूरव्यसकादि नाम देकर अलग कर दिया है, जैसे—

व्यसक मयूर =मयूरव्यसक (चालाक मोर)।

यहाँ व्यसक शब्द विशेषण होने के कारण, प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा।

अन्यो राजा=राजान्तरम्। अन्यो ग्राम =ग्रामान्तरम्। इसी प्रकार अन्य 'अन्तर' शब्द वाले उदाहरण होते हैं।

उदक् च अवाक् चेति उच्चावचम्। निश्चित च प्रचित चेति निश्चप्रचम्। चिदेव इति चिन्मात्रम्।

**टिप्पणी**—राजान्तरम्, चिदेव इत्यादि समास "द्विजार्थ" की भाँति ही नित्य-समास हैं, क्योकि इनका अपने पदो से विग्रह नही होता। इन्हें सस्कृत वैयाकरणो ने मयूरव्यसकादि समास के अन्तर्गत रक्खा है। इनके अतिरिक्त जिनका विग्रह होना ही नहीं, वे भी नित्य समास कहलाते हैं, जैसे, जीमूतस्येव[1]।

---

१ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वा०)

## द्वन्द्व समास

**११५**—जब[1] ऐसे दो या अधिक पद रक्खे जाते हैं, जो 'च' शब्द से जुडे हुए थे, तब उस समास को द्वन्द्व समास कहते है।

इस[2] समास मे दोनो पद प्रधान रहते हैं अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास तीन प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर द्वन्द्व।
(२) समाहार द्वन्द्व।
(३) एकशेष द्वन्द्व।

**टिप्पणी**—एकशेष वस्तुत समास है ही नही, द्वन्द्व समास की तो बात ही क्या? सिद्धान्तकौमुदी के 'सर्वसमासशेष' प्रकरण (२२) मे भट्टोजिदीक्षित ने एक शेष को एक पृथक् वृत्ति ही मानी है। वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

'कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपा पञ्च वृत्तय। परार्थाभिधान वृत्ति। अर्थात् कृत् तद्धित, समास, एकशेष तथा सन् इत्यादि प्रत्ययो से बने धातुरूप—ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं। 'वृत्ति' परार्थाभिधान को कहते हैं अर्थात् दूसरे पद के अर्थ मे अन्तर्भूत जो विशेष अर्थ होता है, उसे परार्थ कहते हैं और उस परार्थ का कथन जिसके द्वारा हो, उसे वृत्ति कहते हैं। इस प्रकार एक शेष तो समास की ही भाँति एक स्वतन्त्र 'वृत्ति' है—दूसरे पद के अर्थ मे अन्तर्भूत किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने का स्वतन्त्र ढग है। परन्तु आधुनिक व्याकरण-पुस्तको के लेखक सरलता के लिए उसे द्वन्द्व के अन्तर्गत ही रखते हैं और उसी का एक प्रकार मानते हैं। हाँ, इन आधुनिक वैयाकरणों के मत के पक्ष मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इतरेतर द्वन्द्व समास और एकशेष और वृत्ति के विग्रह मे कुछ साम्य अवश्य है और वह यह कि दोनो प्राय एक ही प्रकार से किये जाते हैं।

### (क) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास मे आये हुए दोनो पद अपना प्रधानत्व और व्यक्तित्व रखते हैं, तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं, जैसे—रामश्च कृष्णश्च=रामकृष्णौ।

---

१ चार्थे द्वन्द्व।२।२।२१।
२ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व (सि० कौ०)।

यदि दोनो मिलकर दो हो, तो द्विवचन मे समास रखा जाता है और यदि दो से अधिक हों, तो बहुवचन मे, जैसे—

रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ। रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च=रामभरतलक्ष्मणा, रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च=रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्ना'।

ऋकार[1] मे अन्त होने वाले (विद्या-सम्बन्ध तथा योनि-सम्बन्ध के वाचक) पद या पदों के साथ जब द्वन्द्व समास होता है, तब अन्तिम पद के पूर्व स्थित ऋकारान्त पद के स्थान मे आकार हो जाता है, उदाहरणार्थ—होता च पोता चेति होतापोतारौ, माता च पिता च=मातापितरौ, होता च पोता च उद्गाता च=होतृपोतोद्गातार ।

इसी[2] प्रकार देवतावाचक पदो के द्वन्द्व मे वायु को छोडकर किसी भी शब्द के आगे रहने पर पूर्व पद के अन्त मे आकार आदेश हो जाता है। जैसे—मित्रश्च वरुणश्च=मित्रावरुणौ, किन्तु वायु शब्द के रहने पर अग्निवायु ही होगा न कि अग्नावायू। किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति केवल उन्ही देवताओ के द्वन्द्व मे होती है जिनका साहचर्य प्रसिद्ध है।

इस द्वन्द्व समास मे (और तत्पुरुष) मे भी जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है, जैसे—

मयूरी च कुक्कुटश्च=मयूरीकुक्कुटौ। कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कुटमयूर्यौ।

## (ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास मे ऐसी सज्ञाएँ आवें जो 'च' से जुडी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती हैं, पर प्रधानतया एक समाहार (समूह) का बोध कराती हैं, तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुसकलिङ्ग एकवचन मे ही रखते हैं, उदाहरणार्थ—आहारश्च निद्रा च भयञ्च=आहारनिद्राभयम्।

इस समाहार मे आहार, निद्रा और भय का अर्थ है, पर प्रधानतया जीवो के लक्षण का बोध होता है। जीवो मे खाना, पीना, सोना और डर ये ही मुख्य

१ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ।६।३।२५।

२ देवता द्वन्द्वे च ।६।३।२६। वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेध (वा०)

बातें होती हैं। इसी प्रकार—पाणी च पादौ च=पाणिपादम् (हाथ और पैर के अतिरिक्त प्रधानतया अङ्ग-मात्र का बोध होता है), अहिनकुलम् (साँप और नेवले के अतिरिक्त प्रधानतया ये दोनो जन्मवैरी हैं, यह बोध होता है)।

समाहार[1] द्वन्द्व बहुधा उन दशाओ मे होता है, जब उसमे आये हुए शब्द—

(१) मनुष्य अथवा पशु के शरीर के अङ्ग के वाचक हो—पाणी च पादौ च पाणिपादम् (हाथ और पैर)।

(२) गाने-बजाने वालो के (सघ के) अग के वाचक हो—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च=मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

(३) सेना के अङ्ग के वाचक हो—अश्वारोहाश्च पदातयश्च=पदात्यश्वारोहम् (पैदल और घुडसवार), इसी प्रकार रथिकाश्वारोहम्।

(४) अचेतन पदार्थ के वाचक हो (द्रव्य हो, गुण नही)—गोधूमश्च चणकश्च=गोधूमचणकम्।

(५) नदियो के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हो—गङ्गा च शोणश्च=गङ्गाशोणम्, (किन्तु गगा च यमुना च=गङ्गायमुने होगा क्योकि ये एक ही लिङ्ग के हैं)।

(६) देशो के भिन्न लिङ्गो वाले नाम हो—कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च=कुरुकुरुक्षेत्रम्। किन्तु यदि ग्रामो के नाम हो तो समाहार द्वन्द्व नही बनता, जैसे—

जाम्बव (नगर) च शालूकिनी (ग्राम) च=जाम्बवशालूकिन्यौ। परन्तु यदि दोनो नगर[2] के नाम हो तो समाहार ही होता है, जैसे—मथुरा च पाटलिपुत्र च=मथुरापाटलिपुत्रम्।

(७) क्षुद्र जीवो के नाम हो—यूका च लिक्षा च यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

---

१ परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयो।२।४।२६।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ।२।४।२। जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६। विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामा। २।४।७। क्षुद्रजन्तव २।४।८। येषा च विरोध शाश्वतिक ।२।४।६।

२ आग्रामा इत्यत्र नगरप्रतिषेधो वक्तव्य।

(८) जन्मवैरी जीवो के नाम हों—सर्पश्च नकुलश्च=सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च=मूषकमार्जारम्।

वृक्ष[1], मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि (वृक्ष[2] इत्यादि से वृक्षविशेष इत्यादि का ग्रहण करना चाहिए) के वाचक शब्दो के समास तथा अश्ववडवे, पूर्वापरे तथा अधरोत्तरे समास भी विकल्प से समाहार द्वन्द्व समास होते हैं जैसे—प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधा, रुरुपृषतम्, रूरुपृषता, कुशकाशम्, कुशकाशा, व्रीहियवन्, व्रीहियवा, दधिघृतम्, दधिघृते, गोमहिषम्, गोमहिषा, शुकबकम्, शुकबका, अश्वडम्, अश्ववडवे, पूर्वापरम्, पूर्वापरे, अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे।

## (ग) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दो मे से द्वन्द्व समास मे केवल एक ही शेष रह जाय, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं, जैसे—माता च पिता च=पितरौ। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ।

एकशेष[3] द्वन्द्व मे केवल समान रूप वाले शब्द (जैसे रामश्च रामश्चेति रामौ, इसी प्रकार रामश्च रामश्च रामश्चेति रामा) अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द भी आ सकते हैं। समास का वचन समास के अङ्गभूत शब्दो की सख्या के अनुसार होगा। यदि समास मे पुल्लिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनो मिले हो तो समास पुल्लिङ्ग मे रहेगा। उदाहरणार्थ—

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ। शूद्री च शूद्रश्च=शूद्रौ। अजश्च अजा च=अजौ। चटकश्च चटका च=चटकौ।

विरूप—वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च=वक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ। घटश्च कलशश्च=घटौ या कलशौ।

११६—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमो का ध्यान रखना चाहिए—

---

१ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्चनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्।२।४।१२।

२ वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम्। (वार्त्तिक)

३ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ।१।२६।४। विरूपाणामपि समानार्थानाम्। (वार्त्तिक)

(१) घिसंज्ञक (ह्रस्व इकारान्त[1] उकारान्त) शब्द प्रथम रखना चाहिए, जैसे—हरिश्च हरश्च=हरिहरौ।

यदि[2] कई घिसंज्ञक हो तो एक को प्रथम रखना चाहिए, बाकी बचे हुओ को चाहे जहाँ रख सकते हैं, जैसे—

हरिश्च हरश्च गुरुश्च=हरिहरगुरव या हरिगुरुहरा ।

(२) स्वर[3] से आरम्भ होने वाले और 'अ' मे अन्त होने वाले शब्द प्रथम आने चाहिए, जैसे—इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी। ईश्वरश्च प्रकृतिश्च ईश्वर-प्रकृती।

(३) वर्णों[4] के तथा भाइयो के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिए, जैसे—ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च=ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रियब्राह्मणौ नही), रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ (लक्ष्मणरामौ नही), इसी प्रकार युधिष्ठिरार्जुनौ।

(४) जिस[5] शब्द मे कम अक्षर हो, वह पहिले आना चाहिए, जैसे, शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ (केशवशिवौ नही, क्योकि शिव मे दो अक्षर हैं, केशव मे तीन)।

## बहुव्रीहि समास

११७(क)—जब[6] समास मे आये हुए दोनो (या अधिक हो तो सब) शब्द मिलकर किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं, तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहु व्रीहि (धान्य) यस्य अस्ति स बहुव्रीहि (जिसके पास बहुत चावल हो)। इसमे दो शब्द हैं—"बहु" और "व्रीहि"। प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनो मिलकर

---

१ द्वन्द्वे घि ।२।२।३२।

२ अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियम शेषे। (वार्त्तिक)

३ अजाद्यदन्तम् ।२।२।३३।

४ वर्णानामानुपूर्व्येण। भ्रातुर्ज्यायस । (वार्त्तिक)

५ अल्पाच्तरम् ।२।२।३४।

६ अनेकमन्यपदार्थे ।२।२।२४। अनेक प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमान वा समस्यते स बहुव्रीहि ।

किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इस प्रकार के समासो का नाम 'बहुव्रीहि' पडा।

(ख) बहुव्रीहि और तत्पुरुष मे यह भेद है कि तत्पुरुष मे प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है, जैसे—पीतम् अम्बरम्=पीताम्बरम् (पीला कपडा)—कर्मधारय तत्पुरुष। बहुव्रीहि मे इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनो मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं, जैसे—पीताम्बर =पीतम् अम्बर यस्य स (जिसका कपडा पीला हो, अर्थात् श्रीकृष्ण)।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक मनोरञ्जक आख्यायिका है।

एक बार एक याचक फटे-फटाये कपडे पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि'। ('हे राजश्रेष्ठ! मैं भी लोक-नाथ हूँ और आप भी' अर्थात् हम दोनो लोकनाथ हैं)।

याचक की यह उक्ति सुनकर सभा के राजकर्मचारी धृष्टता पर बिगड कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, निकालो। तब तक याचक श्लोक का दूसरा अश भी बोल उठा—

'बहुव्रीहिरह राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्'॥ हे नृप! मै बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठीतत्पुरुष,—अर्थात् मेरी दशा मे "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोका प्रजा नाथा पालका यस्य स"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी दशा मे "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथ"—ससार भर के स्वामी। यह सुनकर सब लोग हँस पडे और याचक को उचित पारि-तोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया।

बहुव्रीहि[1] समास मे समास के दोनो शब्दो मे से किसी मे प्रधानत्व नही रहता, दोनो मिल कर तीसरे का (जिसके वह विशेषण स्वरूप होते हैं) ही प्राधान्य सूचित करते हैं।

---

१ अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि—सि० कौ०।

## (ग) इस समास के मुख्य दो भेद हैं

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि ।

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दोनो या सभी शब्दो का एक ही अधिकरण (विभक्ति) हो, अर्थात् वे प्रथमान्त हो, जैसे—पीताम्बर ।

व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दोनो शब्द प्रथमान्त न हो, केवल एक ही शब्द प्रथमान्त हो, दूसरा षष्ठी या सप्तमी मे हो, जैसे—

चन्द्रशेखर—चन्द्र शेखरे यस्य स=(शिव) ।

चक्रपाणि—चक्र पाणौ यस्य स=(विष्णु) ।

चन्द्रकान्ति—चन्द्रस्य कान्ति इव कान्ति यस्य स ।

बहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए विग्रह मे 'यत्' शब्द के किसी रूप का आना आवश्यक है। इस 'यत्' से प्रकट किया जाता है कि समास मे आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्बन्ध रखते हैं।

११८ (क)—समानाधिकरण बहुव्रीहि के छ भेद होते हैं—

द्वितीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

तृतीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

चतुर्थीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

पञ्चमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

षष्ठीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि और

सप्तमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

यह भेद विग्रह मे आये हुए 'यत्' शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि 'यत्' द्वितीया मे हो तो समास द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि होगा और इसी प्रकार अन्य भेद होगे, उदाहरणार्थ—

**द्वि० स० ब०**—प्राप्तमुदक य स प्राप्तोदक (ग्राम)—ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो। आरूढो वानरो य स आरुढवानर (वृक्ष) ।

**तृ० स० ब०**—जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेन्द्रिय (पुरुष)—जिसने इन्द्रियो को वश मे कर रक्खा हो। ऊढ रथ येन स ऊढरथ

(अनड्वान्)—ऐसा बैल जिसने रथ खीचा हो। दत्त चित्त येन स दत्तचित्त (पुरुष)—ऐसा पुरुष जो चित्त दिये हो, लगाये हो।

च० स० ब०—उपहृत पशु यस्मै स उपहृतपशु (रुद्र)—जिसके लिए पशु (बल्यर्थ) लाया गया हो। दत्तधन (पुरुष)।

प० स० ब०—उद्धृतम् ओदन यस्या सा उद्धृतौदना (थाली)—ऐसी बटलोई जिससे भात निकाल लिया गया हो। निर्गत धन यस्मात् स निर्धनः (पुरुष)। निर्गत बल यस्मात् स निर्बल (पुरुष)।

ष० स० ब०—पीतम् अम्बर यस्य स पीताम्बर (हरि)। महान्तौ बाहू यस्य स महाबाहु, इसी प्रकार लम्बकर्ण, चित्रगु।

स० स० ब०—वीरा पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुष (ग्राम)—ऐसा गाँव जिसमे वीर पुरुष हो।

(ख) व्यधिकरण बहुव्रीहि के दोनो शब्द प्रथमा विभक्ति मे नही रहते, केवल एक रहता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी मे रहता है, जैसे—

चक्र पाणौ यस्य स चक्रपाणि। इसी प्रकार चन्द्रशेखर, चन्द्रकान्ति इत्यादि।

(ग) नीचे लिखे बहुव्रीहि भी कभी-कभी पाये जाते हैं—

(१) नञ्[1] के साथ अस् अथवा अस् के समान अर्थ वाली[2] धातुओ से बने शब्द का तथा प्रादि उपसर्गों के साथ किसी धातु से बने शब्द का विकल्प से लोप हो जाता है और उनके इस प्रकार रूप बनते हैं—अविद्यमान पुत्र यस्य स अपुत्र (अथवा अविद्यमानपुत्र), उत्कन्धर (अथवा उद्गतकन्धरा), विजीवित (अथवा विगतजीवित)।

(२) सह[3] और तृतीयान्त सज्ञा—सीतया सह इति ससीत (राम)।

११६—बहुव्रीहि बनाते समय नीचे लिखे नियमो का ध्यान रखना चाहिए—

---

१ नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप। (वार्त्तिक)

२ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप (वार्त्तिक)

३ तेन सहेति तुल्ययोगे।२।२।२८।

(१) समानाधिकरण[1] बहुव्रीहि मे यदि प्रथम शब्द पुल्लिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवद्—रूपवती, सुन्दर—सुन्दरी आदि) हो किन्तु ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग हो, तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदिम रूप (पुल्लिङ्ग) रक्खा जाता है, जैसे—

रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्य (रूपवतीभार्य नही)।

इस उदाहरण मे समास का प्रथम शब्द "रूपवती" था और द्वितीय "भार्या"। प्रथम शब्द "रूपवद्" (पु०) से बना था और ऊकारान्त न था ईकारान्त था तथा द्वितीय शब्द 'भार्या' स्त्रीलिङ्ग मे था। इसलिए प्रथम शब्द का पुल्लिङ्ग रूप आ गया। इसी प्रकार—

चित्रा गाव यस्य स चित्रगु (चित्रागु नही), इसी प्रकार जरद्भार्य.।

परन्तु गङ्गा भार्या यस्य स गङ्गाभार्य (गङ्गभार्य नही) क्योकि गङ्गा शब्द किसी पुल्लिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नही है।

वामोरूभार्य —वामोरू भार्या यस्य स (क्योकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नही)।

किन्तु यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी सख्या हो, उसमे अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि, अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रियादिगण मे पठित कोई शब्द या क्रमसख्या हो, तो पूर्वपद का पुवद्भाव नही होता। क्रमानुसार जैसे—

दत्ताभार्य (जिसकी दत्ता नाम वाली स्त्री है),

पञ्चमीभार्य (जिसकी पाँचवी स्त्री है),

सुकेशीभार्य (जिसकी अच्छे केशो वाली स्त्री है),

शूद्राभार्य (जिसकी स्त्री शूद्रा है), कल्याणी प्रिया यस्य स कल्याणीप्रिय, कल्याणी पञ्चमी यासा ता कल्याणीपञ्चमा।

(२) यदि[2] समास के अन्त मे इन् मे अन्त होने वाले शब्द आवें और

---

१ स्त्रिया पुवद्भाषितस्कादनूङ समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु ।६।३।३४।

२ इन स्त्रियाम् ।५।४।१५२।

यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड दिया जाता है, जैसे—

बहव दण्डिन यस्या सा बहुदण्डिका (नगरी)।

किन्तु यदि पुल्लिङ्ग बनाना हो तो कप् जोडना या न जोडना इच्छा पर है, जैसे—

बहुदण्डिको ग्राम, बहुदण्डी ग्राम वा।

यदि[1] नदीसञ्ज्ञक पद अथवा ह्रस्व ऋकारान्त पद उत्तर पद रूप मे हो तो समासान्त कप् प्रत्यय जुट जाता है, जैसे कल्याणी पञ्चमी यस्य स कल्याण-पञ्चमीक पक्ष।

ईश्वर कर्ता यस्य स ईश्वरकर्तृक (ससार)।

अन्न धातृ यस्य स अन्नधातृक (पुरुष)।

सुशीला माता यस्य स सुशीलमातृक (मनुष्य)।

रूपवती स्त्री यस्य स रूपवत्स्त्रीक (मनुष्य)।

सुन्दरी वधू यस्य स सुन्दरवधूक (पुरुष)।

(३) [2]उरस्, सर्पिस् इत्यादि शब्दो के अन्त मे आने पर अनिवार्य रूप से कप् प्रत्यय लगता है, जैसे—

व्यूढम् उरो यस्य स व्यूढोरस्क (चौडी छाती वाला)। प्रिय सर्पि यस्य स प्रियसर्पिष्क (जिसे घृत प्रिय हो)।

(४) जब[3] बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द मे अन्य नियमो के अनुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमे इच्छानुसार कप् (क) जोड सकते हैं, जैसे—

उदात्त मन यस्य स उदात्तमनस्क अथवा उदात्तमना। इसी प्रकार महायशस्क अथवा महायशा यदि विकल्पसिद्ध रूप है।

किन्तु व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् (यहाँ व्याघ्रपात्क नही हुआ, क्योकि समास का अन्तिम शब्द 'पाद' दूसरे नियम से पाद् हो गया और इस प्रकार शब्द मे विकार उत्पन्न हो गया)।

---

१ नद्यृतश्च ।५।४।१५३।

२ उर प्रभृतिभ्य कप् ।५।४।१५१।

३ शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४।

(५) यदि[1] अन्तिम शब्द आकारान्त (टाबन्त) हो, तो कप् के बाद मे होने पर इच्छानुसार आकार को अकार भी कर सकते हैं। जैसे—पुष्पमालाक, पुष्पमालक। कप् के अभाव मे पुष्पमाल होगा।

## १२०—समासान्त प्रकरण

(क) यदि[2] तत्पुरुष समास के अन्त मे राजन्, अहन् या सखि शब्द आवे तो इनमे समासान्त टच् प्रत्यय जुडता है और इनका रूप राज, अह् और सख हो जाता है, जैसे—

महान् राजा=महाराज, इसी प्रकार सिन्धुराज इत्यादि।

उत्तमम् अह =उत्तमाह (अच्छा दिन)।

कृष्णस्य सखा=कृष्णसख।

कही-कही अहन् शब्द का 'अह्न' हो जाता है, जैसे—सर्वाह्न (सारे दिन), सायाह्न (सायकाल)।

किन्तु ऊपर उदाहृत नियम नञ् तत्पुरुष मे नही लगता, जैसे—न राजा=अराजा, न सखा=असखा।

इसी प्रकार[3] पूजनार्थक (श्रेष्ठतावाचक) शब्द के पूर्व पद रूप मे रहने पर भी समासान्त प्रत्यय नही लगता, जैसे—शोभन राजा=सुराजा।

**टिप्पणी**—ऊपर 'महाराज' मे महान् के मूल शब्द 'महत्' के स्थान मे 'महा' हो गया है। इसका नियम यह है कि 'महत्'[4] शब्द यदि समानाधिकरण कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है; जैसे—महाराज, महायशा। किन्तु महता सेवा=महत्सेवा क्योकि महत् और सेवा समानाधिकरण नही हैं।

(ख) ऋक्[5], पुर, अप्, धुर् तथा पथिन् शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं, तो समास के अन्त मे 'अ' प्रत्यय जुड जाता है, जैसे—

---

१ आपोऽन्यतरस्याम् ।७।४।१५।

२ राजाह सखिभ्यष्टच् ।५।४।९१।

३ न पूजनात् ।५।४।६९।

४ आन्महत समानाधिकरणजातीययो. ।६।३।४६।

५ ऋक्पूरब्धू पथामानक्षे ।५।४।७४।

ऋच अर्धम्=अर्धर्च ,

विष्णो पू =विष्णुपुरम्,

विमला आप यस्य तत् विमलाप (सर)।

राजस्य धू =राज्यधुरा। किन्तु अक्ष (गाडी) की धुरी का अभिप्राय हो तो नही, जैसे—अक्षधू ।

(ग) अह[1], सर्व, एकदेश (भाग) सूचक शब्द, सख्यात एव पुण्य के साथ रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय लगता है और समस्त पद त्रान्त हो जाता है। सख्या और अव्यय के साथ भी ऐसा ही होता है। जैसे—अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्र । सर्वा रात्रि सर्वरात्र । पूर्वं रात्रे पूर्वरात्र । इसी प्रकार सख्यातरात्र, पुण्यरात्र । नवाना रात्रीणा समाहारो नवरात्रम्। अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र ।

इन समासो के लिङ्ग के सम्बन्ध मे इतना ज्ञातव्य है कि 'सख्यापूर्वं रात्र क्लीबम्' (वार्त्तिक) के अनुसार सख्यापूर्व रात्रान्त समास जैसे—द्विरात्रम्, नवरात्रम्, इत्यादि नपुसकलिङ्ग मे होगें, शेष पुल्लिङ्ग मे।

उपरि[2] लिखित 'सर्व' इत्यादि के साथ 'अहन्' शब्द का समास होने पर 'अह्न' हो जाता है। फिर अह्नोऽदन्तात् ।८।४।७। के अनुसार अकारान्त पूर्वपद के रकार के बाद 'अह्न' के 'न' को 'ण' हो जाता है, जैसे सर्वाह्ण, पूर्वाह्ण, सख्याताह्न ।

परन्तु[3] सख्यावाची शब्द के साथ 'अहन्' का समाहार अर्थ मे समास होने पर 'अह्न' आदेश नही होता, जैसे—

सप्तानामह्ना समाहार सप्ताह । इसी प्रकार द्वयह, त्र्यह इत्यादि।

**नोट**—अह्न[4] और अह मे अन्त होने वाले समास पुल्लिङ्ग होते हैं किन्तु पुण्य[5] और सुदिन पूर्वपद वाले तथा अह अन्त वाले समास नही।

---

१ अह सर्वैकदेशसख्यातपुण्याच्च रात्रे ।५।४।८७।

२ अह्नोऽह्न एतेभ्य ।५।४।८८।

३ न सख्यादे समाहारे ।५।४।८९।

४ रात्राह्नाहा पुसि ।२।४।२९।

५ पुण्यसुदिनाभ्यामह्न क्लीबतेष्टा । (वार्त्तिक)

(घ) समस्त पद का जाति या सज्ञा (नाम) अर्थ होने पर अनस्[1], अश्मन्, अयस् और सरस् उत्तर पद वाले समास पदो मे टच् प्रत्यय जुडता है, जैसे, जाति अर्थ मे—उपानसम्, अमृताश्म , कालावसम्, मण्डूकसरसम्। सज्ञा अर्थ मे—महानसम् (रसोई घर), पिण्डाश्म , लोहितायसम्, जलसरसम्।

(ङ) नञ्[2], दु और सु के साथ प्रजा और मेधा का बहुव्रीहि समास होने पर असिच प्रत्यय लगता है, जसे, अप्रजा , दुष्प्रजा , सुप्रजा । अमेधा , दुर्मेधा , सुमेधा । ये सब 'अस्' मे अन्त होते हैं। इनके रूप इस प्रकार होगे—अप्रजा , अप्रजसौ, अप्रजस इत्यादि।

(च) धर्म[3] के पूर्व यदि केवल एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास मे धर्म के बाद अनिच् जुडता है—जैसे कल्याणधर्मा (धर्मन्) 'उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।' (भवभूति)।

(छ)[4] प्र और सम् के साथ 'जानु' का बहुव्रीहि समास होने पर 'जान' का 'ज्ञु' आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—प्रगते जानुनी यस्य स प्रज्ञु , इसी प्रकार सज्ञु ।

ऊर्ध्व[5] के साथ विकल्प से ज्ञु होता है, जैसे, ऊर्ध्वज्ञु या ऊर्ध्वजानु ।

(ज) धनुष् मे अन्त होने वाले बहुव्रीहि[6] समास मे अनङ आदेश हो जाता है, जैसे, पुष्प धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा। इसी प्रकार शार्ङ्गधन्वा। किन्तु समस्त पद के नामवाची होने पर विकल्प से अनङ होगा। जैसे, शतधन्वा, शतधनु.।

(झ) जायान्त[7] बहुव्रीहि मे निङ आदेश हो जाता है, जैसे, युवती जाया

---

१ अनोऽश्माय सरसा जातिसज्ञयो ।५।४।९४।
२ नित्यमसिच् प्रजामेधयो ।५।४।१२२।
३ धर्मादनिच् केवलात् ।५।४।१२४।
४ प्रसम्भ्या जानुनोर्ज्ञु ।५।४।१२९।
५ ऊर्ध्वाद्विभाषा ।५।४।१३०।
६ धनुषश्च ।५।४।१३२। वा सज्ञायाम् ।५।४।१३३।
७ जायाया निङ ।५।४।१३४।

यस्य स युवजानि । इसी प्रकार भूजानि (राजा), महीजानि (राजा) इत्यादि बनेंगे ।

(ञ) 'उन्'[1], पूति, सु तथा सुरभि पूर्वपद वाले तथा 'गन्ध' शब्द मे अन्त होन वाले बहुव्रीहि समास मे इकार जुड जाता है, जैसे, उद्गतो गन्धो यस्य स उद्गन्धि । इसी प्रकार पूतिगन्धि, सुगन्धि, सुरभिगन्धि ।

(ट) बहुव्रीहि समास मे हस्ति[2] इत्यादि शब्दो को छोडकर यदि कोई उपमान शब्द पूर्व मे हो और बाद मे पाद शब्द हो तो पाद के अन्तिम वर्ण 'अ' का लोप हो जाता है, जैसे, व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात्। हस्ति इत्यादि पूर्वपद होने पर हस्तिपाद, कुसूलपाद इत्यादि समास बनेगे।

(ठ) कुम्भपदी[3] इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दो मे भी 'पाद' के अकार का लोप हो जाता है। फिर पाद[4] के स्थान मे पत् होकर ङीप् जुडता है, जैसे—कुम्भपदी, एकपदी। स्त्रीलिङ्ग न होने पर कुम्भपाद समास बनेगा।

---

१ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य ।५।४।१३५।

२ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य ।५।४।१३८।

३ कुम्भपदीषु च ।५।४।१३९।

४ पाद पत् ।६।४।१३०।

# अष्टम सोपान

## तद्धित-विचार

**१२१**—प्रातिपदिको (सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) मे जिन प्रत्ययो को जोड कर कुछ और भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययो को तद्धित प्रत्यय कहते हैं—

दिते अपत्यम्=दैत्य (दिति+ण्य)। इसमे ण्य (तद्धित प्रत्यय) जोडकर दिति के लडके का बोध कराया गया है। कषायेण रक्तम्=काषायम् (वस्त्रम्)—'कषाय रग मे रँगा हुआ'। यहाँ 'कषायेण' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय कर 'कषाय से रँगे हुए' का अर्थ निकाला गया।

कुशाम्बेन निर्वृता=कोशाम्बी (एक नगरी का नाम)।

'यहाँ 'कुशाम्ब' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगाकर 'कुशाम्ब की बनाई हुई' का अर्थ निकाला गया है। इसी प्रकार और भी कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोडे जाते हैं।

'तद्धित' शब्द का अर्थ है—'तेभ्य प्रयोगेभ्य हिता इति तद्धिता'—ऐसे प्रत्यय जो भिन्न-भिन्न प्रयोगो के काम मे आ सके। किन किन प्रयोगो मे तद्धित प्रत्यय जोडे जाते हैं, यह नीचे दिखाया जायगा।

**१२२**—तद्धित प्रत्यय लगाते समय नीचे लिखे नियमो का ध्यान रखना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने इन प्रत्ययो के नामो मे ऐसे अक्षर रख दिये हैं, जिनसे कुछ और बातो का भी बोध होता है, जैसे—यदि किसी प्रत्यय मे ञ् अथवा ण् हो तो उस शब्द के (जिसमे यह प्रत्यय जुडेंगे) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि। ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि मे और कभी अन्त मे रहते हैं और वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिए रक्खे जाते हैं।

(१) तद्धित[1] प्रत्यय मे यदि ञ् अथवा ण् इत् हो तो जिस शब्द मे ऐसा प्रत्यय जोडा जायगा, उस शब्द मे जो भी प्रथम स्वर आवेगा उसको वृद्धि रूप ग्रहण करना होगा।

---

१ तद्धितेष्वचामादे ।७।२।११७।

जैसे—दिति+ण्य (य) =द्+इ+ति+य=द्+ऐ+त्य=दैत्य इत्यादि।

यदि[1] ऐसा प्रत्यय हो जिसमे क् इत् हो, तब भी यही विधि होगी, जैसे, वर्षा+ठक् (इक)=व्+अ+र्षा+इक=व्+आ+र्ष्+इक=वार्षिक ।

**नोट**—दैत्य मे दूसरी 'इ' का और वर्षा मे 'आ' का कैसे लोप हो गया, इसके लिए नीचे के नियम देखिए।

(२) किसी स्वर अथवा य से आरम्भ होने वाले प्रत्ययो के पूर्व, शब्दो के अन्तिम स्वर मे विकार उत्पन्न होते हैं—अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है[2], उ और ऊ के स्थान मे गुण रूप (ओ) हो जाता है[3] और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते हैं, जैसे—

अकारान्त—कृष्ण+अण्=कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप),
आकारान्त—वर्षा+ठक् (इक)=वार्षिक (वर्षा के आ का लोप),
इकारान्त—गणपति+गण्=गाणपतम् (गणपति की इ का लोप),
ईकारान्त—गर्भिणी+अण्=गार्भिणम् (गर्भिणी की ई का लोप),
उकारान्त—शिशु+अण्=शैशवम् (शिशु के उ के स्थान मे गुण रूप ओ),
ऊकारान्त—वधू+अण्=वाधवम् (वधू के ऊ के साथ मे गुण रूप ओ),
ओकारान्त—गो+यत्=ग्+अव्+य=गव्यम्[4],
औकारान्त—नौ+ठक्=न्+आव+इक=नाविक[5]।

(३) शब्दो के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययो के सामने जो किसी व्यञ्जन से आरम्भ होते हैं, बहुधा लोप हो जाता है, जैसे—राजन्+मतुप् (वत्), राज+वत्—राजवान्। यदि प्रत्यय स्वर से अथवा य् से आरम्भ होते हो तो न्

---

१ किति च ।७।२।११८।
२ यस्येति च ।६।४।१४८।
३ ओर्गुण ।६।४।१४६।
४ वान्तो यिप्रत्यये ।६।१।७९।
५ एचोऽयवायाव ।६।१।७८।

के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी-कभी लोप हो जाता है[1], जैसे—आत्मन्+(ईय)=आत्म+ईय=आत्मीय।

(४) प्रत्यय के अन्त मे आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण आदि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नही जुडता, जैसे—अण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल अ जोडा जायगा।

(५) प्रत्यय[2] मे आये हुए ठ् के स्थान मे इक हो जाता है, जैसे—ठक्=इक।

(६) प्रत्यय[3] के यु, वु के स्थान मे क्रम से 'अन' और 'अक' हो जाते हैं, जैसे—युट्=यु=अन, वुञ्=वु=अक।

(७) प्रत्यय[4] के आदि मे आये हुए फ्, ढ्, ख्, छ, घ् के स्थान में क्रम से आयन्, एय्, ईन्, इय् हो जाते हैं, अर्थात्

फ्=आयन्

ढ्=एय्

ख्=ईन्

छ=ईय्

घ्=इय्

## अपत्यार्थ

१२३—अपत्य[5] शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अथवा पुत्री'। अपत्याधिकार मे ऐसे प्रत्ययो का विचार होगा, जिनको सज्ञाओ मे जोडने से किसी पुरुष या स्त्री की सन्तान का बोध होता है।

इन[6] प्रत्ययो मे गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ मे आया है। नीचे मुख्य-मुख्य नियम दिये जाते हैं।

---

१ नस्तद्धिते ।६।४।१४४।

२ ठस्येक ।७।३।५०।

३ युवोरनाकौ ।७।१।१।

४ आयनयीनीयिय फढखछघा प्रत्ययादीनाम् ।७।१।२।

५ तस्यापत्यम् ।४।१।९२।

६ आपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम् ।४।१।१६२।

(क) अपत्य[1] का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इञ्=दाशरथि (दशरथ का लडका)। दक्षस्य अपत्यं=दाक्षि (दक्ष्+इञ्), इत्यादि।

(ख) जिन[2] प्रातिपदिको मे स्त्री प्रत्यय लगा हो, उनमे अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (एय्) लगाना चाहिए, जैसे—विनता+ढक्=वैनतेय (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक्=भागिनेय (भाञ्जा) इत्यादि।

जिन[3] प्रातिपदिको मे केवल दो स्वर हो और स्त्रीप्रत्ययान्त हो, और जो[4] प्रातिपदिक दो स्वर वाले तथा इकारान्त हो (इञ् मे अन्त होने वाले न हो), उनमें अपत्यार्थ सूचित करने के लिए ढक् प्रत्यय जुडता है, जैसे—दत्ताया अपत्य पुमान=दात्तेय (दत्ता+ढक्), अत्रेरपत्य पुमान्=आत्रेय (अत्रि+ढक्)।

(ग) अश्वपति[5] आदि (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों मे अण् प्रत्यय लगाकर अपत्यार्थ सूचित किया जाता है, जैसे—गणपति+अण्=गाणपतम् इत्यादि।

(घ) राजन्[6] और श्वशुर शब्दो के अनन्तर अपत्यार्थ मे यत् (य) प्रत्यय लगता है, राजन्+यत्=राजन्य[7] (राजवश वाले क्षत्रिय), श्वशुर+यत= श्वशुर्य (साला)।

राजन्[8] शब्द में यत् प्रत्यय जाति के ही अर्थ मे जोडा जाता है।

---

१ अत इञ् ।४।१।९५।
२ स्त्रीभ्यो ढक् ।४।१।१२०।
३ द्व्यचः ।४।१।१२१।
४ इतश्चानिञ ।४।१।१२२।
५ अश्वपत्यादिभ्यश्च ।४।१।८४।
६ राजश्वशुराद्यत् ।४।२।१३७।
७ ये चाभावकर्मणो ।६।४।१६८।
८ राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् । (वार्त्तिक)

## मत्वर्थीय

१२४—हिन्दी मे जो अर्थ 'वान', 'वाला' आदि प्रत्ययो से सूचित होता है (जैसे गाडीवान, इक्कावान आदि) उसी अर्थ का बोध कराने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थवाले) कहते हैं। उनमे से मुख्य दो-चार का ही यहाँ विचार किया जायगा।

(क) किसी[1] वस्तु का किसी दूसरी वस्तु मे होना सूचित करने के लिए—जिस वस्तु को सूचित करना हो उसके अनन्तर—मतुप् (मत्) प्रत्यय लगता है, जैसे—

गाव अस्य सन्ति इति=गोमान् (गो+मतुप्)।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो प्राय मत्वर्थीय प्रत्यय लगते हैं, जैसे—

गोमान् (बहुत गायो वाला)।
ककुदावर्तिनी कन्या (कुबडी लडकी)। ( मत्वर्थीय इनि )
रूपवान् (अच्छे रूप वाला)।
क्षीरी वृक्ष (जिसमे नित्य दूध रहता हो)। ( ,, ,, )
उदरिणी कन्या (बडे पेट वाली लडकी)। ( ,, ,, )
दण्डी (दण्ड के साथ रहने वाला साधु)। ( ,, ,, )

मतुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दो (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है, जैसे—गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

**नोट**—यदि[2] मतुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हो जो म् अथवा अवर्ण अथवा पाँचो वर्गों के प्रथम चार वर्णों मे अन्त होते हैं, अथवा जिनको उपधा (अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है) म् अथवा अवर्ण हो, तो मतुप् के म् स्थानो मे व् हो जाता है, जैसे विद्यावान्, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, विद्युत्वान्,

---

१ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।५।२।९४। भूमनिन्दाप्रशसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्तिविवक्षाया भवन्ति मतुबादय । (वार्तिक)।

२ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ।८।२।९। क्षय ।८।२।१०।

तडित्वान् इत्यादि। कुछ (यव आदि) शब्दो मे यह नियम नही लगता है, जैसे, यवमान्।

(ख) अकारान्त[1] शब्दो के अनन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक) भी लगते हैं, जैसे—

दण्डी (दण्ड+इनि), दण्डिक (दण्ड+ठन्)।

(ग) तारक[2] आदि (तारका, पुष्प, मञ्जरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दु ख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुल, शृङ्गार, अङ्कुर, बकुल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गज ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दो के अनन्तर यह उत्पन्न (प्रकट) हो गया है जिसमे—इस अर्थ को बोध कराने के लिए इतच् (इत्) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

तारका+इतच्=तारकित (तारे निकल आये हैं जिसमे)।
पिपासित (प्यास है जिसमे—प्यासा)।
पुष्पित, कुसुमित आदि इसी प्रकार बनाते हैं।

## भावार्थ तथा कर्मार्थ

**१२५**—किसी[3] शब्द से भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए उस शब्द मे त्व अथवा तल् (ता) जोड देते हैं। त्व मे अन्त होने वाले शब्द सदा नपुसकलिङ्ग मे होते हैं और तल् मे अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग मे, जैसे—

गो+त्व=गोत्वम्, गो+तल्=गोता, शिशु+त्व=शिशुत्वम्, शिशु+तल्=शिशुता इत्यादि।

---

१ अत इनिठनौ।५।२।११५।
२ तदस्य सञ्जात तारकादिभ्य इतच्।५।२।३६।
३ तस्य भावस्त्वतलौ।५।१।११९।

(क) पृथु[1] आदि (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु) शब्दो के अनन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द मे यह प्रत्यय लगाते है, वह यदि व्यजन से आरम्भ हो और उसके अनन्तर ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवे तो उस ऋकार के स्थान मे र हो जाता है। इमनिच् प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द सभी पुल्लिङ्ग मे होते हैं, जैसे—

पृथु+इमनिच्=प्रथिमन् (महिमन् के अनुसार रूप चलेगे), पृथुत्वम्, पृथुता, म्रदिमन्, महिमन्, पटिमन्, तनिमन्, लघिमन्, भूमन् आदि।

(ख) वर्णवाची[2] शब्दो (नील, शुक्ल आदि) के अनन्तर तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, स्थिर) के अनन्तर इमनिच् अथवा ष्यञ् (य) भाव के अर्थ मे लगाते है, जैसे—

शुक्लस्य भाव शुक्लिमा, शौक्ल्यम् (अथवा शुक्लत्व, शुक्लता)। इसी प्रकार—

माधुर्य्यम्, मधुरिमा, दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि।

ष्यञ् मे अन्त होने वाले शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते हैं।

(ग) गुणवाची[3] शब्दो के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्य-भाव, सवादिन्, सवेशिन्, सभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, बालिश, अलस, दुष्पुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाद, विषम, विपात, निपात—ये सब इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दो के अनन्तर कर्म या भाव अर्थ सूचित करने के लिए ष्यञ् (य) प्रत्यय लगता है, जैसे—

ब्राह्मणस्य भाव कर्म वा=ब्राह्मण्यम्। इसी प्रकार—

---

१ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।५।१।१२२। र ऋतो हलादेर्लघो ।६।४।१६१।

२ वर्णदृढादिभ्य ष्यञ् च। ५।१।१२३।

३ गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च ।५।१।१२४।

चौर्यम्, धौर्त्यम्, अपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, सामस्य्यम्, कौशल्यम्, चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतुहल्यम्, बालिश्यम्, आलस्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि।

(घ) इ[1], उ, ऋ अथवा लृ मे अन्त होने वाले शब्दो के अनन्तर (यदि पूर्व वर्ण मे लघु अक्षर हो, जैसे, शुचि, मुनि आदि—पाण्डु नही) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिखाने के लिए अण् (अ) प्रत्यय जोडते हैं, जैसे—

शुचेर्भाव कर्म वा शौचम्, मुनेर्भाव कर्म वा मौनम्।

(च) यदि[2] किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके अनन्तर वति (वत्) प्रत्यय जोड देते हैं, जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते=ब्राह्मणवत् अधीते।

(छ) यदि[3] किसी मे अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो, तब भी वति प्रत्यय जोडते हैं, जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्ग =इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्ग (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ मे है, वैसा ही प्रयाग मे है)।

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गाव =चैत्रवन्मैत्रस्य गाव (जैसी गाऐं चैत्र की है, वैसी ही मैत्र की हैं)।

(ज) यदि[4] किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर कोई रख लिया जाय तो उस शब्द के अनन्तर कन् (क), प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का बोध कराते हैं, जैसे—

अश्व इव प्रतिकृति =अश्वक (अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र है जिसका)।

पुत्रक (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र मान लें)।

---

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ।५।१।१३१।

२ तेन तुल्य क्रिया चेद्वति ।५।१।११५।

३ तत्र तस्येव ।५।१।११६।

४ इवे प्रतिकृतौ ।५।३।९६।

## समूहार्थ

१२६—किसी[1] वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—

बकानां समूह =बाकम्।

काकाना समूह =काकम्।

वृकाना समूह =वार्कम् (भेडियो का समूह)।

(मायूरम्, कापोतम्, भैक्षम्, गार्भिणम्।)

(क) ग्राम[2], जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दो के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है—

ग्रामता (ग्रामो का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

## सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१२७—"यह[3] इसका है" इस अर्थ को बताने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो, उसके अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

उपगोरिदम् (उपगु+अण्)=औपगवम्।

देवस्य अयम्=दैव।

ग्रीष्म+अण्=ग्रैष्मम्, नैशम् आदि।

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है।

(क) सम्बन्ध[4] अर्थ दिखाने के लिए हल और सीर शब्द के अनन्तर ठक् (इक्) लगता है, जैसे—हालिकम्, सैरिकम्।

(ख) जिस[5] वस्तु से बनी हुई (विकारस्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

---

१ तस्य समूह ।४।२।३७। भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२।३८।

२ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३। गजसहायाभ्या चेति वक्तव्यम् ।(वा०)

३ तस्येदम् ।४।३।१२०।

४ हलसीराट् ठक् ।४।३।१२४।

५ तस्य विकार ।४।३।१३४।

भस्मनो विकार =भास्मन (भस्म से बना हुआ)।

मार्त्तिक (मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार)।

(ग) प्राणिवाचक[1], ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दो के अनन्तर यही प्रत्यय 'अवयव' का भी अर्थ बतलाता है, विकार तो बताता ही है, जैसे—

मयूरस्य विकार अवयवो वा=मायूर ।

मर्कटस्य विकार अवयवो वा=मार्कट ।

मूर्वाया विकार अवयवो वा=मौर्वं काण्डम् भस्म वा।

पिप्पलस्य विकार अवयवो वा=पैप्पल ।

(घ) उ[2], ऊ मे अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है, जैसे—

देवदारु+अञ्=दैवदारवम्, माद्रदारवम्।

(च) विकार[3] अथवा अवयव का अर्थ बताने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने-पहनने की वस्तुओ के अनन्तर नही, जैसे—

अश्मन विकारो अवयवो वा=आश्मनम् अश्ममयम् वा। इसी प्रकार भास्मनम्, भस्ममयम्, सौवर्णम्, सुवर्णमयम् इत्यादि।

किन्तु 'मौद्ग सूप' (मूँग की दाल) के लिए 'मुद्गमय सूप' नही होगा। इसी प्रकार 'कार्पासमाच्छादनम्' के लिए 'कर्पासमयमाच्छादनम्' नही होगा।

## परिमाणार्थ तथा संख्यार्थ

**१२८**—जो प्रत्यय परिमाण (कितना आदि) बताने के लिए लगाये जाते है, उन्हे परिमाणार्थ प्रत्यय कहते है।

(क) यत्[4], तत्, एतत् के अनन्तर वतुप् प्रत्यय लगता है और वतुप् का व 'घ' (य) मे परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार कियत् और इयत् शब्द बनेंगे, किवत् या इवत् नही।

१ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य ।४।३।१३५।

२ ओरञ् ।४।३।१३६।

३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो ।४।३।१४३।

४ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप्। किमिदम्भ्या वो घ ।५।२।६३,४०।

इनका विस्तृत रूप विशेषण विचार मे दिखाया जा चुका है।

(ख) मात्रच्[1] प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण और सख्या का सशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है, जैसे—

शम प्रमाणम्=शममात्रम् (निश्चय ही शम प्रमाण है)।

सेरमात्रम् (सेर ही भर)।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही।)

(ग) पुरुष[2] और हस्तिन् के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाकर प्रमाण बताया जाता है, जैसे—

पौरुषम् (जलमस्या सरिति)=इस नदी मे आदमी भर (आदमी के डूबने भर) पानी है। इसी प्रकार हास्तिनम् (जलम्)।

(घ) किम्[3] शब्द के अनन्तर डति (अति) लगाकर सख्या का और परिमाण का भी बोध कराते हैं, जैसे, किम्+डति=कति—कितने।

(च) सख्या[4] शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर सख्यासमूह का बोध कराते हैं, जैसे द्वितयम्, त्रितयम् आदि।

द्वि और त्रि के अनन्तर इसी अर्थ मे अयच् प्रत्यय भी लगता है—द्वयम्, त्रयम्।

## हितार्थ

१२६—जिसके[5] हित की कोई वस्तु हो, उसके अनन्तर छ (ईय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

वत्सेभ्य हित दुग्धम्=वत्सीयम् दुग्धम् (बछडो के लिए दूध)।

इसी[6] अर्थ मे शरीर के अवयववाची शब्दो के अनन्तर तथा उकारान्त[7]

---

१ प्रमाणपरिमाणाभ्या सख्यायाश्चापि सशये मात्रज्वक्तव्य। वा०।

२ पुरुषहस्तिभ्यामण् च।५।२।३८।

३ किम सख्यापरिमाणे डति च।५।२।४१।

४ सख्याया अवयवे तयप्।५।२।४२। द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा।५।२।४३।

५ तस्मै हितम्।५।१।५।

६ शरीरावयवाच्च।५।१।६।

७ उगवादिभ्यो यत्।५।१।२।

शब्दो और गो आदि (गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, युग, मेधा, नाभि, नश्वन् का शून् वा शुन् हो जाता है, कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर 'यत्' प्रत्यय लगता है, जैसे—

दन्तेभ्य हिता (ओषधि)=दन्त्या (दन्त+यत्)। इसी प्रकार कर्ण्या, गोभ्य हित=गव्यम् (गो=यत्), शरवे हित=शरव्यम् (शरु+यत्), शून्यम्, शुन्यम्, असुर्यम्, वेद्यम्, बीज्यम् आदि।

## क्रियाविशेषणार्थ

१३०—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे हैं, जिनके जोडने से वह प्रयोजन सिद्ध होता है जो हिन्दी मे दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणो से होता है।

(क) पञ्चमी[1] विभक्ति के अर्थ मे सज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर तथा परि (सर्वार्थक) और अभि (उभयार्थक) उपसर्गों के अनन्तर तसिल् (तस्) लगता है। इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययो के पूर्व सर्वनाम के रूप मे कुछ हेर-फेर हो जाता है जैसे—

त्वत, मत्त, युष्मत्त, अस्मत्त, अत, यत तत, मध्यत, परत, कुत, सर्वत, इत, अमृत, उभयत, परित, अभित।

(ख) सप्तमी[2] विभक्ति के अर्थ मे सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर त्रल् प्रत्यय लगता है, जैसे—तत्र, यत्र, बहुत्र, सर्वत्र, एकत्र इत्यादि। परन्तु इदम्[3] मे त्रल् न लगकर 'ह' लगता है और 'इह' रूप बनता है।

(ग) कब[4], जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् तथा तद् शब्दो के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा।

---

१ पञ्चम्यास्तसिल् ।५।३।७। पर्यभिभ्या च ।५।३।९। सर्वोभयार्थाभ्यामेव (वा०)।

२ सप्तम्यास्त्रल् ।५।३।१०।

३ इदमो ह ।५।३।११।

४ सर्वैकान्यकियत्तद काले दा ।५।३।१५।

इसी[1] अर्थ मे 'दानीम्' प्रत्यय भी लगता है—कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि ।

(घ) ऐसे[2] वैसे आदि शब्दो के द्वारा 'प्रकार' अर्थ को बताने के लिए थाल् (था) प्रत्यय लगाते हैं—यथा, तथा इत्यादि। परन्तु इदम्[3], एतद् तथा किम् में 'थमु' लगता है—कथम्, इत्थम् ।

(च) आगे[4] पीछे आदि शब्दो का अर्थ बताने के लिए पूर्व आदि दिशावाची शब्दो के अनन्तर प्रथमा, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ मे अस्ताति (अस्तात्) प्रत्यय लगता है, उदाहरणार्थ—

पूर्व+अस्ताति=पुरस्तात्। इसी प्रकार अधस्तात्, अवस्तात् अवरस्तात्, उपरिष्टात् ।

इसी[5] प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने के लिए दक्षिणेन, उत्तरेण, अधरेण, पश्चिमेन तथा 'आति' लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् शब्द बनाते हैं।

(छ)[6] 'दो बार', 'तीन बार' आदि की तरह 'बार' शब्द का अर्थ लाने के लिए सख्यावाची शब्दो के अनन्तर कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

पञ्चकृत्व भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है)।

इसी प्रकार—षट्कृत्व , सप्तकृत्व आदि।

इसी अर्थ मे द्वि,[7] त्रि, चतुर् के अनन्तर सुच् (स्) लगता है, जैसे—

---

१ दानी च ।५।३।१८।

२ प्रकारवचने थाल् ।५।३।२३।

३ इदमस्थमु ।५।३।२४। एतदोऽपि वाच्य (वा०)। किमश्च ।५।३।२५।

४ दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति ।५।३।२७।

५ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या ।५।३।३५। पश्चात् ।५।३।३२। उत्तराधरदक्षिणादाति ।५।३।३४।

६ सख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।५।४।१७।

७ द्वित्रिचतुर्भ्य सुच् ।५।४।१८।

द्वि=दो बार। त्रि=तीन बार। चतु=चार बार।

इसी अर्थ मे 'एक'[1] से भी सुच् लगता है और 'एक' के स्थान मे 'सकृत' आदेश हो जाता है, जैसे—

एक+सुच्—सकृत्+सुच्=सकृत।[2]

बहु[3] के अनन्तर कृत्वसुच् और धा दोनो प्रत्यय लगते हैं, जैसे—

बहुकृत्व, बहुधा—बहुत बार।

## शैषिक

१३१—जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययो से नही होता, वे तद्धित अर्थ पाणिनि-व्याकरण मे 'शेष' शब्द से बतलाये गये हैं। 'शेष'[4] तद्धित अर्थों के लिए अण् आदि जोडे जाते हैं।

उदाहरणार्थ—

| | |
|---|---|
| चक्षुषा गृह्यते (रूप) | =चाक्षुषम् (चक्षुष्+अण्)। |
| श्रवणेन श्रूयते (शब्द) | =श्रावण (श्रवण+अण्)। |
| अश्वैरुह्यते (रथ) | =आश्व। |
| चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) | =चातुरम्। |
| चतुर्दश्या दृश्यते (रक्ष) | =चातुर्दशम्। |

(क) ग्राम[5] शब्द के अनन्तर शैषिक प्रत्यय 'य' और 'खञ्' (ईन) होते हैं, जैसे—ग्राम्य, ग्रामीण।

द्यु[6], प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दो के अनन्तर 'यत्' होता है, जैसे—दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्।

---

१ एकस्य सकृच्च ।५।४।१९।

२ त् के बाद मे स्थित सुच् के स् का सयोगान्तलोप हो जाता है।

३ विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ।५।४।२०।

४ शेषे ।४।२।९२।

५ ग्रामाद्यखञौ ।४।२।९४।

६ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ।४।२।१०१।

अमा[1], इह, क्व तथा नि के अनन्तर और तसि-प्रत्ययान्त तथा त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) आता है, जैसे—अमात्य, इहत्य, क्वत्य, नित्य, ततस्त्य, यतस्त्य, कुत्रत्य, तत्रत्य, अत्रत्य आदि।

(ख) जिस[2] शब्द के स्वरो मे पहला स्वर वृद्धि वाला (आ, ऐ, औ) हो, उन शब्दो को तथा त्यद् आदि ( त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्) शब्दो को पाणिनि ने 'वृद्ध' नाम दिया है। इन वृद्धों के अनन्तर शैषिक छ (ईय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

शाला+छ=शालीय, माला+छ=मालीय, तद्+छ=तदीय। इसी प्रकार यदीय, एतदीय, युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(ग) युष्मद्[3] और अस्मद् शब्दो के अनन्तर इसी अर्थ मे 'छ' के अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इनके जुडने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान मे बहुवचन मे युष्माक और अस्माक तथा एकवचन मे तवक और ममक आदेश हो जाते हैं, जैसे—

युष्मद्—युष्माक (+अण्)=यौष्माक, (+खञ्)=यौष्माकीण (तुम्हारा)। तवक (+अण्) तावक, (+खञ्)=तावकीन (तेरा), युष्मद् (+छ)= युष्मदीय।

अस्मद्—अस्माक (+अण्)=आस्माक, (+खञ्)=आस्माकीन (हमारा), ममक, (+अण्)=मामक, (+खञ्=) मामकीन (मेरा), अस्मद् (+छ) अस्मदीय।

नोट—'विशेषण विचार' मे इनका उल्लेख आ चुका है।

(घ) कालवाची[4] शब्दो के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है, जैसे—

---

१ अव्ययात्यप् ।४।२।१०४। अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। वा०। त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। वा०।

२ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्। त्यदादीनि च ।१।१।७३,७४। वृद्धाच्छः ।४।१।११४।

३ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च। तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।१,२।

४ कालाट्ठञ् ।४।३।११।

मास+ठञ् (इक)=मासिक। इसी प्रकार सांवत्सरिक, सायंप्रातिक, पौनःपुनिक आदि।

परन्तु[1] सन्धिवेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची (ग्रीष्म आदि) शब्द और नक्षत्रवाची शब्दो के अनन्तर अण् होता है, जैसे—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावस्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम् (वार्षिकम्=वर्षा+ठक्, प्रावृषेण्यम्=प्रावृष+एण्य), शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि।

(च) साय[2], चिर, प्राह्णे, प्रगे शब्दो के अनन्तर तथा अव्ययो के अनन्तर शैषिक ट्यु-ट्युल् (अन) लगते हैं तथा शब्द और प्रत्यय के बीच मे त् भी ऊपर से आ जाता है, जैसे—

साय+त्+ट्युल् (अन)=सायन्तनम्। इसी प्रकार चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् इत्यादि।

(छ) दो[3] मे से एक का अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक[4] मे से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन्, जैसे—

लघु से लघीयस्, लघुतर (दो के लिए) और लघिष्ठ और लघुतम (दो से अधिक के लिए)। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेषण-विचार (१०३) में आ चुका है।

(ज) किम्[5] के अनन्तर, एत् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दो के अनन्तर, अव्ययो के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप्+आमु=(तमाम) लगाया जाता है, उदाहरणार्थ—

---

१ सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ।४।३।१६।

२ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ।४।३।२३।

३ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।

४ अतिशायने तमबिष्ठनौ ।५।३।३५।

५ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।५।४।११।

किन्तमाम्, प्राह्णेतमाम्, उच्चैस्तमाम् (खूब ऊँचा), पचतितमाम् (खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दहतितमाम् आदि।

किन्तु द्रव्यसम्बन्धी प्रकर्ष सूचित होने पर 'आमु' नही लगता, जैसे—उच्चैस्तम तरु।

(झ) कुछ[1] कमी दिखाने के लिए कल्पप् (कल्प), देश्य, देशीयर् (देशीय) प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—

विद्वत्कल्प, विद्वद्देशीय—कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्प, पञ्चवर्षदेश्य, पञ्चवर्षदेशीय—कुछ कम पांच बरस का।

यजतिकल्पम्—जरा कम यज्ञ करता है।

(ट) अनुकम्पा[2] का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

पुत्रक (बेचारा लडका), भिक्षुक (बेचारा भिखारी) आदि।

(ठ) जब[3] कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाये, इतनी बदल जाये कि काली न हो तो काली हो जाये, मीठी न हो तो मीठी हो जाये अर्थात्[4] जो पहले नही थी, वह हो जाय, तो च्वि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते हैं। यह प्रत्यय केवल कृ धातु, भू धातु और अस् धातु के योग मे आता है। च्वि[5] का लोप हो जाता है, किन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार उकार मे बदल जाता है, और यदि[6] अन्य स्वर पूर्व मे आवे तो वह दीर्घ हो जाता है, जैसे—

अकृष्ण　कृष्ण　क्रियते=कृष्ण+च्वि+क्रियते=कृष्ण+ई+क्रियते=कृष्णीक्रियते।

---

१ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर ।५।३।१५।

२ अनुकम्पायाम् ।५।४।७६।

३ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्वि ।५।४।५०।

४ अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। (वार्त्तिक)

५ अस्य च्वौ ।७।४।३२।

६ च्वौ च ।७।४।२६।

अब्रह्मा ब्रह्मा भवति 'ब्रह्मीभवति' (जो ब्रह्मा नही है, वह ब्रह्मा होता है), अगङ्गा गङ्गा स्यात् 'गङ्गीस्यात्' (जो गङ्गा नही है, वह गङ्गा हो जाए)। इसी प्रकार शुचीभवति, पटूकरोति इत्यादि।

जब[1] किसी वस्तु का दूसरी वस्तु मे पूर्णतया परिणत हो जाना दिखाना हो तो च्वि के अतिरिक्त साति (सात्) प्रत्यय भी लगाते हैं, जैसे—

कृत्स्न इन्धनम् अग्नि भवति=इन्धनम् 'अग्निसात्' भवति, 'अग्नीभवति' वा (ईंधन आग हो जाता है)।

अग्नि भस्मसात् भवति, भस्मीभवति वा=आग भस्म हो जाती है।

## प्रकीर्णक

१३२—ऊपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही अर्थों के लिए तद्धित प्रत्यय जोडे जाते हैं। प्रधान अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

(क) यदि[2] किसी वस्तु मे दूसरी वस्तु की सत्ता हो, अर्थात् वह वहाँ विद्यमान हो तो जिस वस्तु मे सत्ता हो, उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोडा जाता है, जैसे—

स्रुघ्ने भव 'स्रौघ्न' (स्रुघ्न+अण्)—स्रुघ्न मे वर्तमान है।

इसी[3] अर्थ मे शरीर के अवयवो मे तथा दिश्, वर्ग, पूग, पक्ष, पथिन्, रहस, उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेघ, यूथ, न्याय, वश, काल, मुख, जघन शब्दो मे यत् (य) जोडा जाता है, जैसे—

दन्त्य, मुख्य, नासिक्य, दिश्य, पूग्य, वर्ग्य (पुरुष), पक्ष्य (राजा), रहस्य (मन्त्र), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य (पुरुष), अन्त्य, मेघ्य, यूथ्य, न्याय्य, वश्य, काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ मे), जघन्य (नीच)। इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा।

इसी[4] अर्थ मे कुछ अव्ययीभाव समासो के अनन्तर 'ञ्य' (य) लगता है; जैसे परिमुखे भवम् 'पारिमुख्यम्'।

---

१ विभाषा साति कार्त्स्न्ये ।५।४।५२।

२ तत्र भव ।४।३।५३।

३ दिगादिभ्यो यत्। शरीरावयवाच्च ।४।३।५४,५५।

४ अव्ययीभावाच्च ।४।३।५९।

(ख) यदि[1] किसी मे किसी मनुष्य का निवास (अपना अथवा पूर्वजो का) हो और यह बतलाना हो कि वह अमुक स्थान का निवासी है, तो स्थानवाचक शब्द मे अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुराया निवास अभिजनो वाऽस्य—माथुर, भाटनागर ।

यदि[2] किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो, तो जनवाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते है, जैसे—

शिबीना विषयो देश —शैब देश (शिवि लोगो के रहने का देश)।

(ग) यदि[3] किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु अथवा मनुष्य से आई है, तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते है, जैसे—

स्रुघ्नादागत स्रौघ्न ।

आमदनी[4] के स्थान (दुकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् (इक) होता है, जैसे—

शुल्कशालया आगत शौल्कशालिक ।

जिनसे[5] विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो, उनमे वुञ् (अक) होता है, जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या औपाध्यायिका, पितामहादागत धन पैतामहकम्, किन्तु ऋकारान्त[6] शब्दो मे इसी अर्थ मे ठञ् लगता है, जैसे—भ्रातृकम्, हौतृकम्। 'पित्' मे 'यत्' और वेञ् दोनो होते हैं—पित्र्यम्, पैतृकम्।

(घ) यदि[7] कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खो दे, कुछ

---

१ सोऽस्य निवास ।४।३।८९। अभिजनश्च ।२।३।९०।

२ विषयो देश ।४।२।५२। तस्य निवास ।४।२।६९।

३ तत आगत ४।३।७४।

४ ठगायस्थानेभ्य ।४।३।७५।

५ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्योवुञ् ।४।३।७७।

६ ऋतष्ठञ् ।४।३।७८। पितुर्यच्च ।४।३।७९।

७ तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम् ।४।४।२। तरति ।४।४।२। चरति ।४।४।८।

जीते, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है, जैसे—

अक्षैर्दीव्यति आक्षिक (अक्ष+ठक्)—ऐसा मनुष्य जो अक्ष (पाँसे) से जुआ खेलता है।

अभ्रया खनति आभ्रिक, फावडे से खोदने वाला।
अक्षैर्जयति आक्षिक, पाँसो से जीतने वाला।
उडुपेन तरति औडुपिक, डोगी से तैरने वाला।
हस्तिना चरति हास्तिक, हाथी पर चलने वाला।

(च) अस्ति[1], नास्ति, दिष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ मे प्रहरणवाची शब्दो के अनन्तर, 'यह प्रहरण इसके पास है' इस अर्थ मे, जिस बात के करने का शील (स्वभाव) हो उसके अनन्तर और जिस काम पर नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर, मनुष्य का बोध कराने के लिए ठक् प्रत्यय लगता है, जैसे—

अस्ति परलोक इति मतियस्य स आस्तिक (अस्ति+ठक्)।
नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिक।
दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिक (भाग्यवादी)।
अपूपभक्षण शीलमस्य आपूपिक (जिसकी पुआ खाने की आदत हो)।
आकरे नियुक्त—आकरिक (खजाची)।

(छ) 'वश[2] मे आया हुआ' के अर्थ मे वश के अनन्तर, अनुकूल के अर्थ मे धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ मे हृद् (हृदय) के अनन्तर तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

वश गत 'वश्य' (वश+यत्), धर्मादनपेत 'धर्म्यम्' (धर्मानुकूल), पथ्यम् अर्थ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रिय 'हृद्य' (प्रिय), शरणे साधु 'शरण्य'

---

१ अस्तिनास्तिदिष्ट मति ।४।४।६०। प्रहरणम् ।४।४।५७। शीलम् ।४।४।६१। तत्र नियुक्त ।४।४।६९।

२ वश गत। धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। हृदयस्य प्रिय। तत्र साधु ।४।४।८६,९२,९५,९८।

(शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि, साधु, 'कर्मण्य' (काम के लिए अच्छा)।

(ज) जिस[1] वस्तु के जो योग्य होता है, उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाये जाते है, जैसे—

प्रस्थमर्हति (असौ याचक) 'प्रास्थिक' (प्रस्थ+ठञ्) अर्थात् प्रस्थ भर अन्न के योग्य।

द्रोणमर्हति 'द्रौणिक', (द्रोण+ठञ्)

श्वेतच्छत्रमर्हति 'श्वैतच्छत्रिक' (श्वेतच्छत्र+ठक्)

इसी अर्थ मे दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा अर्घ, मेघ, मेघा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग) शब्दो के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

(झ) दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेघ्य, वध्य, युग्य, गुह्य, भाग्य, भग्य आदि।

(ञ) प्रयोजन[2] के अर्थ मे ठञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—

इन्द्रमह प्रयोजनमस्य 'ऐन्द्रमाहिक' (पदार्थ)—इन्द्र के उत्सव के लिए। प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनो हैं।

(ट) जिस[3] रग से रँगी हुइ वस्तु हो, उस रङ्गवाची शब्द के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते है जैसे—

कषाय+अण्=काषायम् (वस्त्रम्)।

मञ्जिष्ठा+अण्=माञ्जिष्ठम्।

किन्तु लाक्षा, रोचन, श[illegible]न, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक, रौचनिक, शाकलिक, कार्दमिक), नीली के अनन्तर अन् (नीली+अन्—नील), पीत के

---

१ तदर्हति ।५।१।६३। दण्डादिभ्य ५।१।६६।

२ प्रयोजनम् ।५।१।१०९।

३ तेन रक्त रागात् ।४।२।२१। लाक्षारोचनात् ठक् ।४।२।२। शकल-कर्दमाभ्यामुपसख्यानम् (वा०) नील्या अन् (वा०)। पीतात्कन् (वा०) हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् (वा०)।

अनन्तर कन् (पीतकम्) तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अञ् (हारिद्रम्, माहारजनम्) इसी अर्थ मे लगता है।

(ठ) नक्षत्र[1] से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द मे अण् जोडते हैं, जैसे—

चित्रया युक्त मास चैत्र,
पुष्येण युक्ता रात्रि =पौषी (रात्रि) इत्यादि।

(ड) जिस[2] वस्तु मे खाने, पीने की वस्तु तैयार की जाये तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु मे यह वस्तु तैयार हुई है, उस वस्तु के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते है, जैसे—

भ्राष्ट्रे सस्कृता (यवा) भ्राष्ट्रा (भाड मे भूने हुए जा)।
पयसि सस्कृत (भक्तम्) पायसम् (दूध मे बना हुआ भात)।
पयसा सस्कृतम् पायसम् (दूध से बनी चीज)।
किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक् लगता है—
दध्ना सस्कृतम् दाधिकम् (दही मे बनी चीज)।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) से सस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है, जैसे—

तैलेन सस्कृतम् तैलिकम् (तेल से बनी वस्तु), घार्तिकम् (घी से बनी), मारीचिकम् (मिच से छौंकी हुई)।

(ढ) जिस[3] खेल मे कोई प्रहरण प्रयोग मे लाया जाये तो उस खेल का बोध कराने के लिए प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर ण (अ) प्रत्यय लगते है, जैसे—

दण्ड प्रहरणमस्या क्रीडाया सा 'दाण्डा' (डडेबाजी),
मुष्टि प्रहरणमस्या क्रीडाया सा 'मौष्टा' (मुक्केबाजी),

---

१ नक्षत्रेण युक्त काल ।४।२।३।
२ सस्कृत भक्षा ।४।२।१६। दध्नष्ठक् ।४।२।१८। सस्कृतम् ।४।४।३।
३ तदस्या प्रहरणमिति क्रीडाया ण ।४।२।५७।

कोई[1] चीज पढने वाले या जानने वाले का बोध कराने के लिए ञ (अ, लगता है, जैसे—

व्याकरणमधीते वेद वा=वैय्याकरण (व्याकरण+ञ्)

(त) "इसमे[2] वह वस्तु है", "उससे यह बनी है", "इसमे उसका निवास है", "यह उससे दूर नही है"—ये सब अर्थ दिखाने के लिए अण् प्रत्यय जोडते हैं, जैसे—

उदुम्बरा सन्त्यस्मिन् देशे 'औदुम्बर' देश,
कुशाम्बे निर्वृता 'कौशाम्बी' (नगरी),
शिबीना निवासो देश 'शैव' देश,
विदिशाया अदूरभव (नगरम्) 'वैदिशम्'।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययो को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते है।

यदि[3] जनपद का अर्थ लाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययो का लोप हो जाता है।

पञ्चालाना निवासो जनपद=पञ्चाला, इसी प्रकार कुरव, वङ्गा, कलिङ्गा आदि।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन मे रहते है।

इ[4] ई, उ, ऊ मे अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग शब्दो मे चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय लगता है, जैसे—इक्षुमती।

---

१ तदधीते तद्वेद ।४।२।५९।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । तेन निर्वृत्तम् । तस्य निवास । अदूरभवश्च ।४।२।६७-७०।

३ जनपदे लुप ।४।२।८१।

४ नद्या मतुप् ।४।२।८५।

# नवम सोपान

## १३३—क्रिया-विचार

### लकारो के विषय मे नियम

सस्कृत क्रियाओ पर विचार करते समय सर्वप्रथम उनसे अति निकट सम्बन्ध रखने वाले लकारो का उल्लेख करना आवश्यक है। ये दस हैं—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ, लिङ, लुङ, लृङ। इन्हें लकार कहते हैं। ये विभिन्न कालो के वाचक हैं, साथ ही कुछ लकार आज्ञा, निमन्त्रण आदि अर्थ-विशेष (Moods) को भी द्योतित करते हैं। इनमे लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक सस्कृत मे होता है। वहाँ इस लकार का प्रयोग लिङ लकार के अर्थ मे होता है।[1] इन पर विस्तृत विचार आगे इसी अध्याय मे किया जायगा। इन लकारो के स्थान पर तिङ प्रत्यय आदेश रूप मे होते हैं। इन तिङ प्रत्ययो मे प्रारम्भ के नव तिप्, तस्, झि, सिप् थस्, थ, मिप्, वस् मस् **परस्मैपद** प्रत्यय कहे जाते हैं तथा बाद के नव त, आताम् झ, थास्, आथास्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ **आत्मनेपद**। ॰

जो धातु अनुदात्तेत् तथा ङित् होती हैं, उनसे और स्वरितेत् एव ञित् धातु, जिनसे क्रियाफल कर्त्ता को मिलने वाला हो, तो आत्मनेपद प्रत्यय जुडने हैं, शेष धातुओ से कर्त्ता अर्थ मे परस्मैपद प्रत्यय जुडते हैं।

## लट् लकार

वर्तमान काल के अर्थ मे लट् लकार का प्रयोग होता है।[2]

(१) य[3], व, र, ल, ङ, म, ञ, ण, न, झ, भ जिनके आदि मे आते हो ऐसे सार्वधातुक (अर्थात् तिङ और शित्) प्रत्ययो के परवर्ती होने पर पूर्व की धातु के अदन्त अग को दीर्घ हो जाता है।

---

१ लिङर्थे लेट् ।३।४।७।

२ वर्तमाने लट् ।३।२।१२३।

३ अतो दीर्घो यञि ।७।३।१०१।

(२) टकारान्त[1] लकारो मे आत्मनेपद मे अन्तिम स्वर के समेत अन्तिम व्यञ्जन (टि) के स्थान पर एकार आदेश होता है।

(३) यदि[2] धातु का अकार पूर्ववर्त्ती हो तो आताम्, आथाम् प्रत्ययो के जुडने पर प्रत्ययो के आकार को इ (इय्) आदेश हो जाता है।

(४) टकारान्त[3] लकारो मे "थास्" के स्थान पर "से" आदेश हो जाता है।

## लिट् (परोक्षभूत)

(१) भूतकाल की उस अवस्था को द्योतित करने के लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष दर्शन न किया हो।[4] उसके प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

### परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथमपुरुष | णल् (अ), | अतुस्, | उस् |
| मध्यमपुरुष | थल् | अथुस्, | अ |
| उत्तमपुरुष | णल् (अ), | व, | म |

(२) जिस[5] धातु को पूर्व ही द्वित्व न हुआ हो उसका लिट् लकार की प्रक्रिया मे द्वित्व होता है। जुहोत्यादिगण के सम्बन्ध मे नियम बतलाते समय इसके नियम दिये जायेंगे।

(३) ह और य को छोडकर अन्य व्यञ्जनो से शुरू होने वाले आर्धधातुक प्रत्ययो के परवर्त्ती होने पर लिट् लकार मे धातु और प्रत्यय के बीच इट् (इ) का आगम होता है।[6]

१ टित आत्मनेपदाना टेरे ।३।४।७९।

२ आतो ङित । ७।२।८१।

३ थास से ।३।४।८०।

४ परोक्षे लिट् ।३।२।११५।

५ लिटि धातोरनभ्यासस्य ।६।१।८।

६ आर्धधातुकस्येड्वलादे ।७।२।३५।

(४) इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ स्वरो से शुरू होने वाली तथा गुरु स्वर से युक्त धातुओ (ऋच्छ को छोडकर) के पश्चात् लिट् लकार मे 'आम्' का आगम होता है तथा 'आम्' जुडने पर जिस पद की धातु रहती है, उस पद मे कृ, भ, अस् धातुओ का रूप आगे जुडता है।

## लुट्[1] (अनद्यतन भविष्यत् काल)

(१) लृङ और लृट् मे ष्य अथवा स्य और लुट् मे तासि (तास्) प्रत्यय धातु के आगे शप् के स्थान पर आदिष्ट होते है।

(२) प्रथम पुरुष के लुट्-लकारीय प्रत्ययो के स्थान पर क्रमश डा (आ), रौ, रस् आदेश होते है और डा के पूर्ववर्ती डकार का लोप हो जाता है। रौ और रस् के जुडने पर तास् के सकार का लोप हो जाता है एव सकारादि के जुडने पर भी तास् के सकार का लोप हो जाता है।

## लृट् लकार

(१) इस लकार का अर्थ सामान्य भविष्यत्काल को द्योतित करना है[2] आर इसकी प्रक्रिया बहुत सरल है। केवल सेट् धातु के पश्चात् 'ष्य' और अनिट् धातु के पश्चात् 'स्य' जुडता है और शेष प्रक्रिया लट् लकार के ही समान होती है। हॉ, शप् के कारण जो विशेष परिवर्तन लकार मे हो जाते है, वे यहाँ नही होते।

## लिङ लकार

(१) विधि, आज्ञा और आशिष् को द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है।[3]

(२) लोट् लकार मे परस्मैपद मे निम्नलिखित प्रत्यय जुडते है—

प्रथम पुरुष—तु, ताम्, अन्तु (कही-कही अतु)।

मध्यम पुरुष—हि, तम्, त।

उत्तम पुरुष—नि, व, म।

---

१ अनद्यतने लुट् ।३।३।१५।

२ लृट् शेषे च ।३।३।१३।

३ लोट् च ।३।३।१६२। आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।१७३।

(३) अदन्त अग के पश्चात् 'हि' का लोप हो जाता है।

(४) लोट् लकार के उत्तम पुरुष मे 'आट्' (आ) का आगम होता है और वह 'पित्' की तरह समझा जाता है।

(५) लोट् लकार मे आत्मनेपद मे निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं—

प्रथमपुरुष—ताम्, एताम्, अन्ताम्।

मध्यमपुरुष—स्व, एथाम्, ध्वम्।

उत्तमपुरुष—ऐ, वहै, महै।

(६) 'हु' धातु तथा प्रत्येक वर्ग के प्रथमाक्षर, द्वितीयाक्षर, तृतीयाक्षर तथा चतुर्थाक्षर एव श, ष, स, ह मे अन्त होने वाली धातुओ के पश्चात् "हि" के स्थान पर धि आदेश होता है, जैसे जुहुधि, अद्धि।

(७) अभ्यस्त (जिनको द्वित्व हुआ है उन) धातुओ के पश्चात् अन्तु के स्थान पर अतु आदेश होता है, जैसे ददतु।

(८) व्यञ्जनान्त धातुओ के पश्चात् क्र्यादि गण मे "हि" के पूर्व श्ना के स्थान पर आन (शानच्) आदेश होता है और हि का लोप हो जाता है। जैसे, गृहाण।

## लङ् लकार

(१) अनद्यतन भूतकाल का व्यापार द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है।[१]

(२) लङ, लुङ, लृङ लकारो मे धातु के पूर्व अट् (अ) का आगम होता है।

(३) लिङ, लङ, लुङ, लृङ लकारो मे ति, अन्ति, सि, मि—इन इकारान्त प्रत्ययो के इकार का लोप हो जाता है।

## लिङ लकार

१—विधि (आज्ञा), निमन्त्रण, आमन्त्रण (कामचारानुज्ञा), अधीष्ट (सत्कारपूर्वको व्यापार), सम्प्रश्न और प्रार्थना—इन छ अर्थों मे इस लकार का प्रयोग होता है।[२]

---

१ अनद्यतने लङ।३।२।१११।

२ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ।३।३।१६१।

२—लिङ् लकार मे परस्मैपद प्रत्ययो और धातुओ के बीच मे यासुट् (यास्) का आगम होता है और इस यास् के सकार का लोप भी प्राय हुआ करता है।

३—लिङ् लकार मे झि (अन्ति) के स्थान पर (उस्) आदेश होता है।

४—अदन्त अग के पश्चात् यास् के स्थान पर "इय्" आदेश होता है और यदि य से भिन्न कोई व्यञ्जन आगे आवे तो इय् के यकार का लोप हो जाता है।

५—आत्मनेपद मे प्रत्यय और धातु के बीच मे सीयुट् (सीय्) आदेश होता है और लिङ् के सार्वधातुक होने से 'स्' का तथा नियम ४ के अनुसार यकार का भी लोप होता है।

६—लिङ् लकार मे 'झ के स्थान पर 'अन' आदेश होता है।

७—उत्तमपुरुष मे 'इट्' के स्थान पर 'अ' आदेश होता है।

## आशीर्लिङ्

(१) केवल आशीर्वाद अर्थ द्योतित करने के लिए आशीर्लिङ् का प्रयोग होता है।[१]

(२) विधिलिङ् और आशीर्लिङ् मे निम्नलिखित अन्तर ,—

(क) आशिष् मे यासुट् के आगम के पश्चात् गुण और वृद्धि दोनो नही हो सकते, जैसे कि विधिलिङ् मे होते हैं।

(ख) यासुट् से स् का लोप नही होता।

(ग) आत्मनेपदी धातुओ के सीयुट् (सीय्) के पश्चात् त और थ के पूर्व मे सुट् (स्) का आगम होता है तथा आशीर्लिङ् के आर्धधातुक होने से 'स्' का लोप नही होता, जैसे, एधिषीष्ट।

## लुङ् लकार

(१) सामान्य भूतकाल के व्यापार को लक्षित करने के लिये इस लकार का प्रयोग होता है।[२] सभी लकारो से इसका रूप बहुत बहुरगी और जटिल

---

१ आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।७३।

२ लुङ् ।३।२।११०। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात्।

है। इसलिए इसके नियम बहुत अधिक है। उनमे से मुख्य नियम यहाँ दिए जा रहे है।

(२) लुङ लकार मे शप् के स्थान पर 'च्लि' आदेश होता है। इस 'च्लि' के स्थान पर सिच् (स्) आदेश होता है।

(३) गा (इ), स्था, पा, भू तथा घु-सञ्ज्ञक (दा और धा) धातुओ मे जब परस्मैपदी प्रत्यय जुडे, तब सिच् का लोप हो जाता है।

(४) भू और सू धातुओ के योग मे लुङ लकार के प्रत्यय जुडने पर गुण नही होता।

(५) मा के योग मे केवल लुङ लकार का ही प्रयोग होता है और साथ ही साथ धातु के पूर्व अट् का योग भी नही होता है।

(६) सिच्[1] (स्) के पश्चात् अपृक्त-सञ्ज्ञक को ईट् (ई) आगम होता है।

(७) यदि अकार के पश्चात् 'झ' न जुडता हो तो आत्मनेपद मे प्रथम पुरुष बहुवचन के वाचक 'झ' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

(८) (क) कर्तृवाच्य मे लुङ लकार मे ण्यन्त धातुओ तथा श्रि, द्रु, स्रु धातुओ के पश्चात् च्लि के स्थान पर चङ (अ) आदेश होता है।

(ख) 'णि' के कारण जिस अग की वृद्धि हो जाती है, उसका चङ के कारण ह्रस्व हो जाता है और 'णि' की इ' का भी लोप उस दशा मे हो जाता है जब कि इकरादि प्रत्यय आगे न जुडता हो।

(ग) चङ के कारण अनभ्यास वाली धातु के प्रथम एकाच् भाग का द्वित्व करना पडता है।

(९) लुङ मे अद् के स्थान पर 'घस्' (घस्लृ), हन् के स्थान पर 'वध' और इ के स्थान पर 'गा' आदेश होते हैं।

## लृङ (क्रियातिपत्ति—Condition)

इस लकार की क्रिया बहुत सरल है। भविष्यत् लृट् और लङ के रूपो के सामजस्य से इसकी प्रक्रिया चलती है। इस लकार मे भविष्यत् लृट् से

---

१ अस्तिसिचोऽपृक्ते ।७।३।९६।

२ लिङनिमित्ते लृङ क्रियातिपत्तौ ।३।३।१३९।

'स्य' लेकर धातु के पहले 'अ' जोडकर लङ लकार के नियमो के अनुसार प्रत्यय जोडते हैं।

१३४—सस्कृत भाषा के प्राय सभी शब्द धातुओ से बने हैं, क्या सज्ञा, क्या विशेषण, क्या क्रिया, क्या अव्यय आदि। कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से धातु से बने नही जान पडते, किन्तु वैयाकरण उनको भी धातुओ से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से 'धातु' शब्द का अर्थ है 'शब्दयोनि', अर्थात् जिससे शब्दो की उत्पत्ति हो। 'धातुपाठ' मे कुल १८८० धातुओ की गणना है। इन्ही से प्रत्यय विशेष जोड-जोड कर सस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं।

धातुओ मे कृत् प्रत्यय जोड कर सज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं। इनका विचार आगे ग्यारहवे सोपान मे किया जायगा। धातुओ मे तिङ प्रत्यय जोड कर क्रियाएँ बनाई जाती है। इस सोपान मे क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है।

(क) धातुएँ दस विभागो मे विभक्त की गई है। इनको 'गण' कहते हैं। उनके नाम ये है—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, तुदादि, रुदादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि[1]। इनको क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते है। गण का अर्थ है—"समूह"। धातुओ के उस समूह को जिसके आदि मे भू धातु है, भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी हैं। जिन धातुओ के रूप एक प्रकार से चलते हैं, वे एक गण मे रक्खी गई हैं। प्रत्येक गण मे रूप चलाने के लिए क्या विशेषता लानी होती है, यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओ का विभाग, सेट्, वेट्, अनिट्—इन तीन भागो मे भी किया जाता है। सेट् का अर्थ है—इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपो मे धातु और आर्धधातुक प्रत्यय के बीच मे एक "इ" आ जाती है। यह "इ" कुछ ही प्रत्ययो के पूर्व आती है, सब के पूर्व नही। वेट्

---

१ भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रीचुरादय ॥

(वा+इट्) विभाग मे वे धातुएँ है, जिनके उपरान्त इ विकल्प से आती है और अनिट् विभाग मे वे है जिनमे इट् नही लाई जाती।

(ग) कुछ धातुएँ सकमक होती है, और कुछ अकर्मक। सकर्मक धातुओ के रूपो के साथ किसी कम की आकाक्षा रहती है, अकर्मक धातुओ के रूपा के साथ नही।

(घ) सस्कृत भाषा मे लकारो के स्थान पर आदेश रूप मे होने वाले प्रत्यय दो प्रकार के होते है—परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है—"वह पद जो दूसरे के लिए हो", और आत्मनेपद का अर्थ है—"वह पद जो अपने लिए हो"। सम्भवत ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो, परस्मैपद मे होनी चाहिए और ऐसी क्रियाएँ जिनका फल अपने लिए हो, आत्मनेपद मे होनी चाहिए। जैसे, 'स वपति' (वह बोता है)—यहाँ 'वपति' परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह तात्पय निकलता है कि बोने की क्रिया का जो फल होगा, वह दूसरे के लिए होगा, बोने वाले के लिए नही। यदि 'स वपते' (वह बोता है) कहा जाय तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा। परन्तु क्रिया के रूपो को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणो मे ही दिखाया गया है, सस्कृत के प्राय सभी ग्रन्थकार इस नियम का उल्लघन करते आये हैं। धातुएँ 'पदो' के हिसाब से भी विभक्त है, कुछ परस्मैपद मे होती है, कुछ आत्मनेपद मे ही और कुछ दोनो मे। इससे परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु—ये तीन विभाग धातुओ के होते है। कभी-कभी विशेष दशा मे कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है। इसका विचार आगे किया जायगा।

**१३५**—क्रिया बनाने के लिए धातुओ के रूप तीन वाच्यो मे होते है—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। इनको कभी-कभी 'कर्तरि प्रयोग' 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोग' भी कहते है। हिन्दी मे भी इन तीन प्रयोगो की प्रथा है, जैसे—मैं खाना खाता हूँ (अह भोजनमद्मि), यह कर्तृवाच्य मे, मुझसे खाना खाया जाता है (मया भोजनमद्यते), यह कर्मवाच्य मे तथा मुझसे चला नही जाता (मया न अटद्यते), यह भाववाच्य मे। केवल सकर्मक

धातुओ की क्रियाओ मे कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य सम्भव होते हैं, अकर्मक धातुओ के रूपो के साथ कर्तृवाच्य और भाववाच्य। अग्रजी मे केवल कर्तृवाच्य और कमवाच्य होते है, भाववाच्य नही। हिन्दी मे कर्तृवाच्य मे बोलना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है किन्तु सस्कृत मे कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य मे।

पूर्वोक्त लकारो के प्रयोग के विषय मे कुछ निम्नाङ्कित बाते ध्यान मे रखनी चाहिए।

(१) वतमानकाल की क्रिया का प्रयोग वर्तमान समय मे होने वाली वस्तु के विषय मे किया जाता है, जैसे—स गच्छति, स कट करोति, वय कुम आदि।

(२) आज्ञा का प्रयोग किसी को कुछ करने की आज्ञा देने के लिए किया जाता है, जैसे—त्व पाठशाला गच्छ, यूय मह्य धन दत्त, आदि। आज्ञा बहुधा सामने उपस्थित मनुष्य को ही दी जाती है, इसलिए आज्ञा का प्रयोग बहुधा मध्यम पुरुष मे ही होता है, परन्तु ऐसे प्रयोग, जैसे—मैं करूँ (अह करवाणि), वह करे (स करोतु) आदि भी आवश्यकतानुसार होते है।

(३) विधिलिङ का प्रयोग किसी को आदेश देने के लिए किया जाता है, जैसे प्रभु का अपने सेवक को आज्ञा देना। प्राय यदि आज्ञा के रूप का प्रयोग हो तो नरम आदेश समझना चाहिए, विधि का प्रयोग हो तो कडा। विधि का प्रयोग 'चाहिए' अर्थ का बोध कराने के लिए भी होता है, जैसे—स कुर्यात् (उसको करना चाहिए)।

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—सस्कृत मे भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्ष और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग मे थोडा अन्तर है। अनद्यतन भूत का अर्थ है—ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा मे लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो, जैसे—'मै आज पढने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद सस्कृत मे अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है—ऐसा अतीतकाल जो आँखो के सामने न हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आंखो के सामने हुई है

तो उस दशा मे परोक्ष भूत का प्रयोग न होगा, जैसे—'मै पाठशाला गया', यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इसलिए यहाँ "गया" का अनुवाद परोक्षभूत के रूप से न करके किसी और के रूप से करना[1] होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कही प्रयोग मे लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा बरसो पहले।

**नोट**—सस्कृत मे वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड कर एक साधारण भूतकाल बनाया जाता है। यह प्राय किस्से-कहानियो मे वर्णन के काम मे लाया जाता है, जैसे—कश्चिद्राजा प्रतिवसतिस्म। 'स्म' का प्रयोग प्रायेण भूतकाल की ऐसी क्रियाओ को प्रकट करने के लिए होता था जिनमे अभ्यास, आदत इत्यादि की बात रहती थी। इस प्रकार इसका प्रयोग अँग्रेजी के used to, won't to, habituated to इत्यादि के अर्थ मे होता था, जैसे एक जङ्गल मे एक शेर रहा करता था। ( There used to live a lion in a forest) का अनुवाद सस्कृत मे 'कस्मिश्चिद्वने एक सिह प्रतिवसति स्म'—इस प्रकार होगा। यहाँ वाक्य से यह ध्वनित होता है कि वह बहुत समय उस जङ्गल मे रहने का अभ्यासी (आदी) हो गया था। परन्तु इसका प्रयोग सभी प्रकार की भूतकाल की क्रियाओ को भी प्रकट करने के लिए होता है।

(७, ८) दोनो भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल है—अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य। इनमे से पहले का प्रयोग ऐसी दशा मे नही हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कही प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्व जीव्या शरदा शतम्। कभी-कभी आशीर्वाद अथवा

---

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष मे होता ही नही, क्योकि स्वय की हुई क्रिया परोक्ष नही हो सकती। परन्तु चित्तविक्षेप की अवस्था मे किया गया काम परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है और किए हुए कार्य को छिपाने से भी उत्तम पुरुष मे लिट् का प्रयोग होता है। उत्तमपुरुष चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्—सि० कौ०। अत्यन्तापह्नवे लिड वक्तव्य (वा०)।

आकाक्षा प्रकट करने के लिए आज्ञा अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्व जीव शरदा शतम्, जीवेम शरदा शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है, जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निभर हो, जैसे—यदि वह आता तो मै उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अह नून तेन सह अगमिष्यम्)। इस क्रियातिपत्ति के अथ म कभी-कभी भविष्य भी प्रयोग मे आता है। यथा—यदि वह आयेगा तो मै उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अह तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान ओर कभी आज्ञा के रूप भी काम मे लाये जाते है।

इन दस लकारा के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनपद दोनो मे दिये जाते है। प्रत्यक लकार म तीन पुरुष ओर तीन वचन होते हे (देखिए नियम ८१)। हिन्दी मे क्रिया बहुधा कर्तृवाच्य मे कर्ता के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, राम गया, गौरी आई, राम जायगा, गौरी जायगी) तथा कमवाच्य मे कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नही पढी जाती, मुझसे अखबार नही पढा जाता आदि) बदलती है, परन्तु सस्कृत मे क्रिया कर्त्ता या कम के लिङ्ग के अनुसार नही बदलती (राम गच्छति या गौरी गच्छति, रामोऽगच्छत् या गौरी अगच्छत, रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति, मया पुस्तिका न पठ्यते या मया समाचारपत्र न पठ्यते आदि)।

१३६—लकारा के प्रत्यय इस प्रकार है—

## (क) वर्तमान काल (लट्)

### परस्मैपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ति | तस् | अन्ति |
| म० पु० | सि | थस् | थ |
| उ० पु० | मि | वस | मस |

**आत्मनेपद**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ते | इते | अन्ते |
| म० पु० | से | इथे | ध्वे |
| उ० पु० | इ | वहे | महे |

**नोट**—दूसरे, तीसरे, पाँचवे, सातवे, आठवे और नवें गण की धातुओ से आत्मनेपद मे ये प्रत्यय जुडते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ते | आते | अते |
| म० पु० | से | आथे | ध्वे |
| उ० पु० | ए | वहे | महे |

## (ख) आज्ञा (लोट्)

**परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तु | ताम् | अन्तु |
| म० पु० | तु या तात् | तम् | त |
| उ० पु० | आनि | आव | आम |

**आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ताम् | इताम् | अन्ताम् |
| म० पु० | स्व | इथाम् | ध्वम् |
| उ० पु० | ऐ | आवहै | आमहै |

**नोट**—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें और नवें गण की धातुओ के उपरान्त परस्मैपद मे ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं, केवल म० पु० एकवचन मे 'हि' जोडा जाता है। इन गणो मे आत्मनेपद मे ये प्रत्यय लगते हैं—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ताम् | आताम् | अताम् |
| म० पु० | स्व | आथाम् | ध्वम् |
| उ० पु० | ए | आवहै | आमहै |

## (ग) विधिलिङ

**परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ईत् | ईताम् | ईयु |
| म० पु० | ई | ईतम् | ईत |
| उ० पु० | ईयम् | ईव | ईम |

**आत्मनेपद**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इत | ईयाताम् | ईरन् |
| म० पु० | ईथा | ईयाथाम् | ईध्वम् |
| उ० पु० | ईय | ईवहि | ईमहि |

**नोट**—दूसरे, तीसरे, पाँचवे, आठवे और नवे गण की धातुओ के उपरान्त आत्मनेपद मे ये प्रत्यय लगते है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यात् | याताम् | यु |
| म० पु० | या | यातम् | यात |
| उ० पु० | याम | याव | याम |

## (घ) अनद्यतनभूत (लङ्)

**परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | त् | ताम् | अन् |
| म० पु० | स | तम् | त |
| उ० पु० | अम् | व | म |

**आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | त | इताम् | अन्त |
| म० पु० | था | इथाम् | ध्वम् |
| उ० पु० | इ | वहि | महि |

**नोट**—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आतवे, आठवे और नवे गण की धातुओ के उपरान्त आत्मनेपद मे ये प्रत्यय लगते हैं—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | त | आताम् | अत |
| म० पु० | था | आथाम् | ध्वम् |
| उ० पु० | इ | वहि | महि |

## (च) परोक्षभूत (लिट्)

परस्मैपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अ | अतु | उ |
| म० पु० | थ | अथु | अ |
| उ० पु० | अ | व | म |

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ए | आते | इरे |
| म० पु० | से | आथे | ध्वे |
| उ० पु० | ए | वहे | महे |

**नोट**—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययो को जोड कर बनते है। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड कर बनते हैं। इस दशा मे धातु और इन रूपो के बीच मे—आम्—जोड दिया जाता है। जिस पद की धातु होती है, उसी पद के रूप जोडे जाते हैं, जैसे—ईड् धातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास आदि।

## (छ) सामान्यभूत (लुङ)

सामान्यभूत के रूप सस्कृत मे सात प्रकार के होते है, कुछ किसी गण की धातुओ मे लगते हैं, कुछ किसी मे। इन सात प्रकार के प्रत्ययो मे भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ, प्रथम प्रकार के सामान्यभूत और अनद्यतनभूत के प्रत्ययो मे केवल प्र० पु० के बहुवचन मे अन् के स्थान मे उस् हो जाता है। दूसरे प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के है, केवल धातु और प्रत्ययो के बीच मे अ जोड दिया जाता है। तीसरे प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोडने के पूर्व धातु का द्वित्व (अभ्यास) करके अ जोडते हैं।

सामान्यभूत के चौथे प्रकार के प्रत्यय ये है—

परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सीत् | स्ताम् | सु |
| म० पु० | सी | स्तम् | स्त |
| उ० पु० | सम् | स्व | स्म |

आत्मनेपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्त | साताम् | सत |
| म० पु० | स्था | साथाम् | ध्वम् |
| उ० पु० | सि | स्वहि | स्महि |

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ईत् | इष्टाम् | इषु |
| म० पु० | ई | इष्टम् | इष्ट |
| उ० पु० | इषम् | इष्व | इष्म |

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इष्ट | इषाताम् | इषत |
| म० पु० | इष्ठा | इषाथाम् | इषध्वम् |
| उ० पु० | इषि | इष्वहि | इष्महि |

छठे प्रकार के रूप केवल परस्मैपद मे होते हैं और उसके प्रत्यय पाँचवे प्रकार के ही हैं, केवल उनके पूर्व स् और जोड दिया जाता है, सीत् (स ईत) आदि।

सातवे प्रकार के प्रत्यय ये है—

परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सत् | सताम् | सन् |
| म० पु० | स | सतम् | सत् |
| उ० पु० | सम् | साव | साम |

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सत | साताम् | सन्त |
| म० पु० | सथा | साथाम् | सध्वम् |
| उ० पु० | सि | सावहि | सामहि |

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन किस धातु के होते है, यह व्याकरण प्रवेशिका मे बताना कठिन है। गण-विशेषो की मुख्य-मुख्य धातुओ के जो रूप होते है, वे आगे दिखा दिये गये हैं।

## (ज) अनद्यतन भविष्य (लुट्)

**परस्मैपद**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ता | तारौ | तार |
| म० पु० | तासि | तास्थ | तास्थ |
| उ० पु० | तास्मि | तास्व | तास्म |

**आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ता | तारौ | तार |
| म० पु० | तासे | तासाथे | ताध्वे |
| उ० पु० | ताहे | तास्वहे | तास्महे |

धातुओ मे ये प्रत्यय जोडे जाते हैं। इनके प्रथम पुरुष के रूप कर्तृवाचक ऋकारान्त दातृ आदि (४४ ग) के प्रथमा पुंल्लिङ्ग रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष मे प्रथमा एकवचन मे अस् (होना) के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने से निकल सकते हैं।

## (झ) सामान्य भविष्य (लृट्)

**परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्यति | स्यत | स्यन्ति |
| म० पु० | स्यसि | स्यथ | स्यथ |
| उ० पु० | स्यामि | स्याव | स्याम |

**आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्यते | स्येते | स्यन्ते |
| म० पु० | स्यसे | स्येथे | स्यध्वे |
| उ० पु० | स्ये | स्यावहे | स्यामहे |

## (ट) आशीर्लिङ्

**परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यात् | यास्ताम् | यासु |
| म० पु० | या | यास्तम् | यास्त |
| उ० पु० | यासम् | यास्व | यास्म |

आत्मनेपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सीष्ठ | सीयास्ताम् | सीरन् |
| म० पु० | सीष्ठा | सीयास्थाम् | सीध्वम् |
| उ० पु० | सीय | सीवहि | सीमहि |

## (ठ) क्रियातिपत्ति (लृङ)

परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्यत् | स्यताम् | स्यन् |
| म० पु० | स्य | स्यतम् | स्यत |
| उ० पु० | स्यम् | स्याव | स्याम |

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्यत | स्येताम् | स्यन्त |
| म० पु० | स्यथा | स्येथाम् | स्यध्वम् |
| उ० पु० | स्य | स्यावहि | स्यामहि |

**नोट १**—इस प्रकार ऊपर दसो लकारो के प्रत्यय दिये गये हैं। इनमे से अनद्यतन भूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति मे धातु के पूर्व 'अ' जोडा जाता है और परोक्षभूत मे धातु का द्वित्व (अभ्यास) कर दिया जाता है। अभ्यास करने के नियम ये है—

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं (जैसे उख् का अभ्यस्त रूप ७ उख), यदि प्रथम स्वर के पूर्व मे कोई व्यजन हो तो उस व्यजन सहित उस स्वर को लाते हैं (जैसे पत् से पपात्)। यदि आरम्भ मे सयुक्ताक्षर हो तो सयुक्ताक्षर के प्रथम व्यजन के साथ स्वर आता है (जैसे प्रच्छ् से पप्रच्छ), किन्तु यदि सयुक्ताक्षर के आदि मे श्, ष्, स् मे से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, ष् स् के बाद वाला ही व्यजन साथ वाले स्वर के साथ आता है (जैसे स्पर्ध से पस्पर्ध)। अभ्यास मे आने वाला अक्षर यदि पञ्चवर्गों का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाता है (जैसे छिद् से चिच्छिद्, भुज से बुभुज्)। कवर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड का चवर्गीय अक्षर लाना चाहिए। (जैसे कम् से चकम्, खन्=कखन्=चखन्)। इसी प्रकार ह् के

स्थान पर ज् (जैसे हु से जुहु) होता है। अभ्यास मे दीर्घ स्वर का ह्रस्व (जैसे दा से ददा, नी से ननी), ऋ का अ (जैसे कृ से चकृ), ए अथवा ऐ का इ (जैसे सेव् से सिषेव्), और ओ अथवा औ का उ (जैसे गोप् से जुगोप, ढौक् से डुढौक्) हो जाता है।

**नोट** २—दस लकारो मे से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनद्यतनभूत को सार्वधातुक कहते हैं और शेष छ को आर्धधातुक। सार्वधातुक लकारो के प्रत्यय जुडने के पूर्व धातुओ मे प्रत्येक गण मे अलग-अलग कुछ विकार किया जाता है—कभी-कभी धातु के रूप मे कुछ परिवर्तन हो जाता है (जैसे गम् धातु का गच्छ हो जाता है, प्रच्छ का पृच्छ)। आर्धधातुओ मे यह नही किया जाता (जैसे गम् से सामान्यभूत मे अगमत् आदि, प्रच्छ से अप्राक्षीत् आदि)।

इस सोपान मे केवल कर्तृवाच्य के रूप दिये जा रहे हैं। अन्य वाच्यो का विस्तार अगले सोपान मे किया जायगा।

## भ्वादिगण

१३७—भ्वादिगण की प्रथम धातु 'भू' है, इसलिए इस गण का यह नाम पडा। दसो गणो मे यह प्रमुख है। धातु पाठ मे इसकी १०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं। इस हिसाब से जितनी और नौ गणो की धातुएँ मिलाकर हैं, उनसे कही अधिक इस एक गण मे हैं। सज्ञाओ मे जो महत्त्व अकारान्त शब्दो का है वही, क्रिया मे भ्वादिगण का है।

इस गण की धातुओ के अनन्तर (प्रत्यय लगाने के पूर्व) शप् (अ) जोड दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व स्वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणवर्ण मे बदल जाता है, जैसे—भू धातु मे वर्तमान के प्रत्यय जोडने हो तो भू+शप्(अ) +ति=भ्+ ऊ+अ+ति=भ्+ओ (गुण) +अ+ति=भ्+अव्+अ+ति= भवति, रूप प्रथम पुरुष के एकवचन मे बनेगा। इसी प्रकार जि+शप्+ति=ज्+इ+अ+ति=ज्+ए+अ+ति=ज्+अय्+अ+ति=जयति, इसी प्रकार नयति आदि। उपधाभूत ह्रस्व स्वर का गुण, जैसे—बुध्+शप् +ति=ब्+उ+ध्+अ+ति=ब्+ओ+ध्+अ=ति+बोधति। जिन धातुओ की उपधा मे अथवा अन्त मे अ होगा, उनमे गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है।

## १३८—परस्मैपदी भू—होना

### वर्तमान—लट

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भवति | भवत | भवन्ति |
| म० पु० | भवसि | भवथ | भवथ |
| उ० पु० | भवामि | भवाव | भवाम |

### आज्ञा—लोट् (होओ, जाओ)

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भवतु | भवताम् | भवन्तु |
| म० पु० | भव | भवतम् | भवत |
| उ० पु० | भवानि | भवाव | भवाम |

### विधि—लिङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भवेत् | भवेताम् | भवेयु· |
| म० पु० | भवे | भवेतम् | भवेत |
| उ० पु० | भवेयम् | भवेव | भवेम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभवत् | अभवताम् | अभवन् |
| म० पु० | अभव | अभवतम् | अभवत |
| उ० पु० | अभवम् | अभवाव | अभवाम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बभूव | बभूवतु | बभूवु |
| म० पु० | बभूविथ | बभूवथु | बभूव |
| उ० पु० | बभूव | बभूविव | बभूविम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभूत् | अभूताम् | अभूवन् |
| म० पु० | अभू | अभूतम् | अभूत |
| उ० पु० | अभूवम् | अभूव | अभूम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० प्र० | भविता | भवितारौ | भवितार |
| म० पु० | भवितासि | भवितास्थ | भवितास्थ |
| उ० पु० | भवितास्मि | भवितास्व | भवितास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भविष्यति | भविष्यत | भविष्यन्ति |
| म० पु० | भविष्यसि | भविष्यथ | भविष्यथ |
| उ० पु० | भविष्यामि | भविष्याव | भविष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भूयात् | भूयास्ताम् | भूयासु |
| म० पु० | भूया | भूयास्तम् | भूयास्त |
| उ० पु० | भूयासम् | भूयास्व | भूयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभविष्यत् | अभविष्यताम् | अभविष्यन् |
| म० पु० | अभविष्य | अभविष्यतम् | अभविष्यत |
| उ० पु० | अभविष्यम् | अभविष्याव | अभविष्याम |

## १३९—भ्वादिगण की अन्य धातुओं के रूप

परस्मैपदी, गम्—जाना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गच्छति | गच्छत | गच्छन्ति |
| म० पु० | गच्छसि | गच्छथ | गच्छथ |
| उ० पु० | गच्छामि | गच्छाव | गच्छाम |
| लोट् | प्र० प्र० | एकवचन | गच्छतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | गच्छेत् |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अगच्छत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जगाम | जग्मतु | जग्मु |
| म० पु० | जगमिथ, जगन्थ | जग्मथु | जग्म |
| उ० पु० | जगाम, जगम | जग्मिव | जग्मिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगमत् | अगमताम् | अगमन् |
| म० पु० | अगम | अगमतम् | अगमत |
| उ० पु० | अगमम् | अगमाव | अगमाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गन्ता | गन्तारौ | गन्तार |
| म० पु० | गन्तासि | गन्तास्थ | गन्तास्थ |
| उ० पु० | गन्तास्मि | गन्तास्व | गन्तास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गमिष्यति | गमिष्यत | गमिष्यन्ति |
| म० पु० | गमिष्यसि | गमिष्यथ | गमिष्यथ |
| उ० पु० | गमिष्यामि | गमिष्याव | गमिष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गम्यात् | गम्यास्ताम् | गम्यासु |
| म० पु० | गम्या | गम्यास्तम् | गम्यास्त |
| उ० पु० | गम्यासम् | गम्यास्व | गम्यास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगमिष्यत् | अगमिष्यताम् | अगमिष्यन् |
| म० पु० | अगमिष्य | अगमिष्यतम् | अगमिष्यत |
| उ० पु० | अगमिष्यम् | अगमिष्याव | अगमिष्याम |

## परस्मैपदी—गै[1]—गाना

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गायति | गायत | गायन्ति |
| म० पु० | गायसि | गायथ | गायथ |
| उ० पु० | गायामि | गायाव | गायाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | गायतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | गायेत् |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अगायत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जगौ | जगतु | जगु |
| म० पु० | जगिथ, जगाथ | जगतु | जग |
| उ० पु० | जगौ | जगिव | जगिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगासीत् | अगासिष्टाम् | अगासिषु |
| म० पु० | अगासी | अगासिष्टम् | अगासिष्ट |
| उ० पु० | अगासिषम् | अगासिष्व | अगासिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गाता | गातारौ | गातार |
| म० पु० | गातासि | गातास्थ | गातास्थ |
| उ० पु० | गातास्मि | गातास्व | गातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गास्यति | गास्यत | गास्यन्ति |
| म० पु० | गास्यसि | गास्यथ | गास्यथ |
| उ० पु० | गस्यामि | गास्याव | गास्याम |

---

१ ग्लै (प०, क्षीण होना), ध्यै (प०, ध्यान करना), म्लै (प०, मुरझाना) के रूप गै की तरह होते हैं।

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गेयात् | गेयास्ताम् | गेयासु |
| म० पु० | गेया | गेयास्तम् | गेयास्त |
| उ० पु० | गेयासम् | गेयास्व | गेयास्म |
| लृङ् | अगास्यत् | | |

## परस्मैपदी

### जि—जीतना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जयति | जयत | जयन्ति |
| म० पु० | जयसि | जयथ | जयथ |
| उ० पु० | जयामि | जयाव | जयाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | जयतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | जयेत् |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अजयत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जिगाय | जिग्यतु | जिग्यु |
| म० पु० | जिगयिथ | जिग्यथु | जिग्य |
| उ० पु० | जिगाय, जिगय | जिग्यिव | जिग्यिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजैषीत् | अजैष्टाम् | अजैषु |
| म० पु० | अजैषी | अजैष्टम् | अजैष्ट |
| उ० पु० | अजैषम् | अजैष्व | अजैष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जेता | जेतारौ | जेतार |
| म० पु० | जेतासि | जेतास्थ | जेतास्थ |
| उ० पु० | जतास्मि | जेतास्व | जेतास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जेष्यति | जेष्यत | जेष्यन्ति |
| म० पु० | जेष्यसि | जेष्यथ | जेष्यथ |
| उ० पु० | जेष्यामि | जेष्याव | जेष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जीयात् | जीयास्ताम् | जीयासु |
| म० पु० | जीया | जीयास्तम् | जीयास्त |
| उ० पु० | जीयासम् | जीयास्व | जीयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजेष्यत् | अजेष्यताम् | अजेष्यन् |
| म० पु० | अजेष्य | अजेष्यतम् | अजेष्यत |
| उ० पु० | अजेष्यम् | अजेष्याव | अजेष्याम |

## परस्मैपदी

### दृश्—देखना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पश्यति | पश्यत | पश्यन्ति |
| म० पु० | पश्यसि | पश्यथ | पश्यथ |
| उ० पु० | पश्यामि | पश्याव | पश्याम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | पश्यतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | पश्येत् |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अपश्यत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददर्श | ददृशतु | ददृशु |
| म० पु० | ददर्शिथ, दद्रष्ठ | ददृशथु | ददृश |
| उ० पु० | ददर्श | ददृशिव | ददृशिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदर्शत्, अद्राक्षीत् | अदर्शताम्, अद्राष्टाम् | अदर्शन्, अद्राक्षु |
| म० पु० | अदर्शः, अद्राक्षीः | अदर्शतम्, अद्राष्टम् | अदर्शत, अद्राष्ट |
| उ० पु० | अदर्शम्, अद्राक्षम | अदर्शाव, अद्राक्ष्व | अदर्शाम, अद्राक्ष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | द्रष्टा | द्रष्टारौ | द्रष्टारः |
| म० पु० | द्रष्टासि | द्रष्टास्थः | द्रष्टास्थ |
| उ० पु० | द्रष्टास्मि | द्रष्टास्वः | द्रष्टास्मः |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | द्रक्ष्यति | द्रक्ष्यतः | द्रक्ष्यन्ति |
| म० पु० | द्रक्ष्यसि | द्रक्ष्यथः | द्रक्ष्यथ |
| उ० पु० | द्रक्ष्यामि | द्रक्ष्यावः | द्रक्ष्यामः |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दृश्यात् | दृश्यास्ताम् | दृश्यासुः |
| म० पु० | दृश्याः | दृश्यास्तम् | दृश्यास्त |
| उ० पु० | दृश्यासम् | दृश्यास्व | दृश्यास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अद्रक्ष्यत् | अद्रक्ष्यताम् | अद्रक्ष्यन् |
| म० पु० | अद्रक्ष्यः | अद्रक्ष्यतम् | अद्रक्ष्यत |
| उ० पु० | अद्रक्ष्यम् | अद्रक्ष्याव | अद्रक्ष्याम |

# उभयपदी[1] धृ—धरना

### परस्मैपद

#### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धरति | वरत | धरन्ति |
| म० पु० | धरसि | धरथ | धरथ |
| उ० पु० | धरामि | धराव | धराम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | धरतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | धरेत् |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अधरत् |

#### परोक्षभूत—लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधार | दध्रतु | दध्रु |
| म० पु० | दधर्थ | दध्रथु | दध्र |
| उ० पु० | दधार, दधर | दध्रिव | दध्रिम |

#### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधार्षीत् | अधार्ष्टाम् | अधार्षु |
| म० पु० | अधार्षी | अधार्ष्टम् | अधार्ष्ट |
| उ० पु० | अधार्षम् | अधार्ष्व | अधार्ष्म |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | धर्ता |
| लृट् | प्र० पु० | एकवचन | धरिष्यति |

#### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ध्रियात् | ध्रियास्ताम् | ध्रियासु |
| म० पु० | ध्रिया | ध्रियास्तम् | ध्रियास्त |
| उ० पु० | ध्रियासम् | ध्रियास्व | ध्रियास्म |

---

१ तृ (उ०, पार करना), भृ (उ०, भरण-पोषण करना), सृ (प० चलना), स्मृ (प०, स्मरण करना), हृ (उ०, हरण करना) के रूप धृ के समान होते हैं।

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधरिष्यत् | अधरिष्यताम् | अधरिष्यन् |
| म० पु० | अधरिष्य | अधरिष्यतम् | अधरिष्यत |
| उ० पु० | अधरिष्यम् | अधरिष्याव | अधरिष्याम |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धरते | धरेते | धरन्ते |
| म० पु० | धरसे | धरेथे | धरध्वे |
| उ० पु० | धरे | धरावहे | धरामहे |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | धरताम् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | धरेत |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अधरत |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दध्रे | दध्राते | दध्रिरे |
| म० पु० | दध्रिषे | दध्राथे | दध्रिध्वे |
| उ० पु० | दध्रे | दध्रिवहे | दध्रिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधृत | अधृषानाम् | अधृषत |
| म० पु० | अधृथा | अधृषाथाम् | अधृध्वम् |
| उ० पु० | अधृषि | अधृष्वहि | अधृष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धर्ता | धर्तारौ | धर्तार |
| म० पु० | धर्तासि | धर्तासाथे | धर्ताध्वे |
| उ० पु० | धर्ताहे | धर्तास्वहे | धर्तास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धरिष्यते | धरिष्येते | धरिष्यन्ते |
| म० पु० | धरिष्यसे | धरिष्येथे | धरिष्यध्वे |
| उ० पु० | धरिष्ये | धरिष्यावहे | धरिष्यामहे |

### आशीर्लिङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धृषीष्ठ | धृषीयास्ताम् | धृषीरन् |
| म० पु० | धृषीष्ठा | धृषीयास्थाम् | धृषीध्वम् |
| उ० पु० | धृषीय | धृषीवहि | धृषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधरिष्यत | अधरिष्येताम् | अधरिष्यन्त |
| म० पु० | अधरिष्यथा | अधरिष्येथाम् | अधरिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अधरिष्ये | अधरिष्यावहि | अधरिष्यामहि |

## उभयपदी नी—ले जाना

### परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नयति | नयत | नयन्ति |
| म० पु० | नयसि | नयथ | नयथ |
| उ० पु० | नयामि | नयाव | नयाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | नयतु, नयतात् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | नयेत् |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अनयत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | निनाय | निन्यतु | निन्यु |
| म० पु० | निनयिथ, निनेथ | निन्यथु | निन्य |
| उ० पु० | निनाय, निनय | निन्यिव | निन्यिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनैषीत् | अनैष्टाम् | अनैषु |
| म० पु० | अनैषी | अनैष्टम् | अनैष्ट |
| उ० पु० | अनैषम् | अनैष्व | अनैष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेता | नेतारौ | नेतार |
| म० पु० | नेतासि | नेतास्थ | नेतास्थ |
| उ० पु० | नेतास्मि | नेतास्व | नेतास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेष्यति | नेष्यत | नेष्यन्ति |
| म० पु० | नेष्यसि | नेष्यथ | नेष्यथ |
| उ० पु० | नेष्यामि | नेष्याव | नेष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नीयात् | नीयास्ताम् | नीयासु |
| म० पु० | नीया | नीयास्तम् | नीयास्त |
| उ० पु० | नीयासम् | नीयास्व | नीयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनेष्यत् | अनेष्यताम् | अनेष्यन् |
| म० पु० | अनेष्य | अनेष्यतम् | अनेष्यत |
| उ० पु० | अनेष्यम् | अनेष्याव | अनेष्याम |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नयते | नयेते | नयन्ते |
| म० पु० | नयसे | नयेथे | नयध्वे |
| उ० पु० | नये | नयावहे | नयामहे |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | नयताम् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | नयेत |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अनयत |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | निन्ये | निन्याते | निन्यिरे |
| म० पु० | निन्यिषे | निन्याथे | निन्यिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | निन्ये | निन्यिवहे | निन्यिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनेष्ट | अनेषाताम् | अनेषत |
| म० पु० | अनेष्ठा | अनेषाथाम | अनेध्वम् |
| उ० पु० | अनेषि | अनेष्वहि | अनेष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेता | नेतारो | नेतार |
| म० पु० | नेतासे | नेतासाथे | नेताध्वे |
| उ० पु० | नेताहे | नेतास्वहे | नेतास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेष्यते | नेष्येते | नेष्यन्ते |
| म० पु० | नेष्यसे | नेष्येथे | नेष्यध्वे |
| उ० पु० | नेष्ये | नेष्यावहे | नेष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेषीष्ट | नेषीयास्ताम् | नेषीरन् |
| म० पु० | नेषीष्ठा | नेषीयास्थाम् | नेषीध्वम् |
| उ० पु० | नेषीय | नेषीवहि | नेषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनेष्यत | अनेष्येताम् | अनेष्यन्त |
| म० पु० | अनेष्यथा | अनेष्येथाम् | अनेष्यध्वम् |
| उ० पु० | अनेष्ये | अनेष्यावहि | अनेष्यामहि |

# परस्मैपदी

पठ्—पढना

## वर्तमान—लट

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पठति | पठत | पठन्ति |
| म० पु० | पठसि | पठथ | पठथि |
| उ० पु० | पठामि | पठाव | पठाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | पठतु, पठतात् |

## विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पठेत् | पठेताम् | पठेयु |
| म० पु० | पठे | पठेतम् | पठेत |
| उ० पु० | पठेयम् | पठेव | पठेम |

## अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपठत् | अपठताम् | अपठन् |
| म० पु० | अपठ | अपठतम् | अपठत |
| उ० पु० | अपठम् | अपठाव | अपठाम |

## परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पपाठ | पेठतु | पेठु |
| म० पु० | पेठिथ | पेठथु | पेठ |
| उ० पु० | पपाठ, पपठ | पेठिव | पेठिम |

## सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपाठीत् | आपठिष्टाम् | अपाठिषु |
| म० पु० | अपाठी | अपाठिष्टम् | अपाठिष्ट |
| उ० पु० | अपाठिषम् | अपाठिष्व | अपाठिष्म |

**अनद्यतनभविष्य—लुट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पठिता | पठितारौ | पठितार |
| म० पु० | पठितासि | पठितास्थ | पठितास्थ |
| उ० पु० | पठितास्मि | पठितास्व | पठितास्म |

**सामान्यभविष्य—लृट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पठिष्यति | पठिष्यत | पठिष्यन्ति |
| म० पु० | पठिष्यसि | पठिष्यथ | पठिष्यथ |
| उ० पु० | पठिष्यामि | पठिष्याव | पठिष्याम |

**आशीर्लिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पठ्यात् | पठ्यास्ताम् | पठ्यासु |
| म० पु० | पठ्या | पठ्यास्तम् | पठ्यास्त |
| उ० पु० | पठ्यासम् | पठ्यास्व | पठ्यास्म |

**क्रियातिपत्ति—लृङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपठिष्यत् | अपठिष्यताम् | अपठिष्यन् |
| म० पु० | अपठिष्य | अपठिष्यतम् | अपठिष्यत |
| उ० म० | अपठिष्यम् | अपठिष्याव | अपठिष्याम |

## परस्मैपदी

पा (पिब्)—पीना

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पिबति | पिबत | पिबन्ति |
| म० पु० | पिबसि | पिबथ | पिबथ |
| उ० पु० | पिबामि | पिबाव | पिबाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | पिबतु, पिबतात् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | पिबेत् |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अपिबत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पपौ | पपतु | पपु |
| म० पु० | पपिथ, पपाथ | पपथु | पप |
| उ० पु० | पपौ | पपिव | पपिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपात् | अपाताम् | अपु |
| म० पु० | अपा | अपातम् | अपात |
| उ० पु० | अपाम् | अपाव | अपाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पाता | पातारौ | पातार |
| म० पु० | पातासि | पातास्थ | पातास्थ |
| उ० पु० | पातास्मि | पातास्व | पातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पास्यति | पास्यत | पास्यन्ति |
| म० पु० | पास्यसि | पायस्थ | पास्यथ |
| उ० पु० | पास्यामि | पास्याव | पास्याम |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पेयात् | पेयास्ताम् | पेयासु |
| म० पु० | पेया | पेयास्तम् | पेयास्त |
| उ० पु० | पेयासम् | पेयास्व | पेयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपास्यत् | अपास्यताम् | अपास्यन् |
| म० पु० | अपास्य | अपास्यतम् | अपास्यत |
| उ० पु० | अपास्यम् | अपास्याव | अपास्याम |

## आत्मनेपदी

### लभ्—पाना

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लभते | लभेते | लभन्ते |
| म० पु० | लभसे | लभेथे | लभध्वे |
| उ० पु० | लभे | लभावहे | लभामहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लभताम् | लभेताम् | लभन्ताम् |
| म० पु० | लभस्व | लभेथाम् | लभध्वम् |
| उ० पु० | लभै | लभावहै | लभामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लभेत | लभेयाताम् | लभेरन् |
| म० पु० | लभेथा | लभेयाथाम् | लभेध्वम् |
| उ० पु० | लभेय | लभेवहि | लभेमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अलभत | अलभेताम् | अलभन्त |
| म० पु० | अलभथा | अलभेथाम् | अलभध्वम् |
| उ० पु० | अलभे | अलभावहि | अलभामहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लेभे | लेभाते | लेभिरे |
| म० पु० | लेभिषे | लेभाथे | लेभिध्वे |
| उ० पु० | लेभे | लेभिवहे | लेभिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अलब्ध | अलप्साताम् | अलप्सत |
| म० पु० | अलब्धा | अलप्साथाम् | अलब्ध्वम् |
| उ० पु० | अलप्सि | अलप्स्वहि | अलप्स्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लब्धा | लब्धारौ | लब्धार |
| म० पु० | लब्धासे | लब्धासाथे | लब्धाध्वे |
| उ० पु० | लब्धाहे | लब्धास्वहे | लब्धास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लप्स्यते | लप्स्येते | लप्स्यन्ते |
| म० पु० | लप्स्यसे | लप्स्येथे | लप्स्यध्वे |
| उ० पु० | लप्स्ये | लप्स्यावहे | लप्स्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | लप्सीष्ट | लप्सीयारताम् | लप्सीरन् |
| म० पु० | लप्सीष्ठा | लप्सीयास्थाम् | लप्सीध्वम् |
| उ० पु० | लप्सीय | लप्सीवहि | लप्सीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अलप्स्यत | अलप्स्येताम् | अलप्स्यन्त |
| म० पु० | अलप्स्यथा | अलप्स्येथाम् | अलप्स्यध्वम् |
| उ० पु० | अलप्स्ये | अलप्स्यावहि | अलप्स्यामहि |

## आत्मनेपदी

### वृत्—होना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वर्तते | वर्तेते | वर्तन्ते |
| म० पु० | वर्तसे | वर्तेथे | वर्तध्वे |
| उ० पु० | वर्ते | वर्तावहे | वर्तामहे |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | वर्तताम् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | वर्तेत |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अवर्तत |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ववृते | ववृताते | ववृतिरे |
| म० पु० | ववृतिषे | ववृताथे | ववृतिध्वे |
| उ० पु० | ववृते | ववृतिवहे | ववृतिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्[1]

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवर्तिष्ट / अवृतत् | अवर्तिषाताम / अवृतताम् | अवर्तिषत / अवृतन् |
| म० पु० | अवर्तिष्ठा / अवृत | अवर्तिषाथाम् / अवृततम् | अवर्तिध्वम्, ढ्वम् / अवृतत |
| उ० पु० | अवर्तिषि / अवृतम् | अवर्तिष्वहि / अवृताव | अवर्तिष्महि / अवृताम |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | वर्तिता |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वर्तिष्यते | वर्तिष्येते | वर्तिष्यन्ते |
| म० पु० | वर्तिष्यसे | वर्तिष्येथे | वर्तिष्यध्वे |
| उ० पु० | वर्तिष्ये | वर्तिष्यावहे | वर्तिष्यामहे |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वर्त्स्यति | वर्त्स्यत | वर्त्स्यन्ति |
| म० पु० | वर्त्स्यसि | वर्त्स्यथ | वर्त्स्यथ |
| उ० पु० | वर्त्स्यामि | वर्त्स्याव | वर्त्स्याम |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वर्तिषीष्ट | वर्तिषीयास्ताम् | वर्तिषीरन् |
| म० पु० | वर्तिषीष्ठा | वर्तिषीयास्थाम् | वर्तिषीध्वम् |
| उ० पु० | वर्तिषीय | वर्तिषीवहि | वर्तिषीमहि |

---

१ लुङ्, लृट तथा लृङ मे यह परस्मैपदी भी हो जाती है।

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवर्तिष्यत | अवर्तिष्येताम् | अवर्तिष्यन्त |
| म० पु० | अवर्तिष्यथा | अवर्तिष्येथाम् | अवर्तिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अवर्तिष्य | अवर्तिष्यावहि | अवर्तिष्यामहि |

**अथवा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवर्त्स्यत् | अवर्त्स्यंताम् | अवर्त्स्यन् |
| म० पु० | अवर्त्स्यं | अवर्त्स्यंतम् | अवर्त्स्यंत |
| उ० पु० | अवर्त्स्यंम् | अवर्त्स्याव | अवर्त्स्याम |

## उभयपदी

### श्रि—सहारा लेना

परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयति | श्रयत | श्रयन्ति |
| म० पु० | श्रयसि | श्रयथ | श्रयथ |
| उ० पु० | श्रयामि | श्रयाव | श्रयाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | श्रयतु |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | श्रयेत् |
| लङ | प्र० पु० | एकवचन | अश्रयत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शिश्राय | शिश्रियतु | शिश्रियु |
| म० पु० | शिश्रियिथ | शिश्रियथु | शिश्रिय |
| उ० पु० | शिश्राय, शिश्रिय | शिश्रियिव | शिश्रियिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशिश्रियत् | अशिश्रियताम् | अशिश्रियन् |
| म० पु० | अशिश्रिय | अशिश्रियतम् | अशिश्रियत |
| उ० पु० | अशिश्रियम् | अशिश्रियाव | अशिश्रियाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयिता | श्रयितारौ | श्रयितार |
| म० पु० | श्रयितासि | श्रयितास्थ | श्रयितास्थ |
| उ० पु० | श्रयितास्मि | श्रयितास्व | श्रयितास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयिष्यति | श्रयिष्यत | श्रयिष्यन्ति |
| म० पु० | श्रयिष्यसि | श्रयिष्यथ | श्रयिष्यथ |
| उ० पु० | श्रयिष्यामि | श्रयिष्याव | श्रयिष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रीयात् | श्रीयास्ताम् | श्रीयासु |
| म० पु० | श्रीया | श्रीयास्तम् | श्रीयास्त |
| उ० पु० | श्रीयासम् | श्रीयास्व | श्रीयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अश्रयिष्यत् | अश्रयिष्यताम् | अश्रयिष्यन् |
| म० पु० | अश्रयिष्य | अश्रयिष्यतम् | अश्रयिष्यत |
| उ० पु० | अश्रयिष्यम् | अश्रयिष्याव | अश्रयिष्याम |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयते | श्रयेते | श्रयन्ते |
| म० पु० | श्रयसे | श्रयेथे | श्रयध्वे |
| उ० पु० | श्रये | श्रयावहे | श्रयामहे |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | श्रयाताम् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | श्रयेत् |
| लुङ | प्र० पु० | एकवचन | अश्रयत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शिश्रिये | शिश्रियाते | शिश्रियिरे |
| म० पु० | शिश्रियिष | शिश्रियाथे | शिश्रियिध्वे-ढ्वे |
| उ० पु० | शिश्रिये | शिश्रियिवहे | शिश्रियिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशिश्रियत | अशिश्रियेताम् | अशिश्रियन्त |
| म० पु० | अशिश्रियथा | अशिश्रियेथाम् | अशिश्रियध्वम् |
| उ० पु० | अशिश्रिये | अशिश्रियावहि | अशिश्रियामहि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयिता | श्रयितारौ | श्रयितार |
| म० पु० | श्रयितासे | श्रयितासाथे | श्रयिताध्वे |
| उ० पु० | श्रयिताहे | श्रयितास्वहे | श्रयितास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | श्रयिष्यते | श्रयिष्येते | श्रयिष्यन्ते |
| म० पु० | श्रयिष्यसे | श्रयिष्येथे | श्रयिष्यध्वे |
| उ० पु० | श्रयिष्ये | श्रयिष्यावहे | श्रयिष्यामहे |
| आशी० | प्र० पु० | एकवचन | श्रयिषीष्ट |
| लृङ् | प्र० पु० | एकवचन | अश्रयिष्यत |

## परस्मैपदी

श्रु—सुनना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शृणोति | शृणुत | शृण्वन्ति |
| म० पु० | शृणोषि | शृणुथ | शृणुथ |
| उ० पु० | शृणोमि | शृणुव , शृण्व | शृणुम , शृण्म |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शृणोतु | शृणुताम् | शृण्वन्तु |
| म० पु० | शृणु | शृणुतम् | शृणुत |
| उ० पु० | शृणवानि | शृणवाव | शृणवाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शृणुयात् | शृणुयाताम् | शृणुयु |
| म० पु० | शृणुया | शृणुयातम् | शृणुयात |
| उ० पु० | शृणुयाम् | शृणुयाव | शृणुयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशृणोत् | अशृणुताम् | अशृण्वन् |
| म० पु० | अशृणो | अशृणुतम् | अशृणुत |
| उ० पु० | अशृणवम् | अशृणुव, अशृण्व | अशृणुम, अशृण्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शुश्राव | शुश्रुवतु | शुश्रुवु |
| म० पु० | शुश्रोथ | शुश्रुवथु | शुश्रुव |
| उ० पु० | शुश्राव, शुश्रव | शुश्रुविव | शुश्रुविम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अश्रौषीत् | अश्रौष्टाम् | अश्रौषु |
| म० पु० | अश्रौषी | अश्रौष्टम् | अश्रौष्ट |
| उ० पु० | अश्रौषम् | अश्रौष्व | अश्रौष्म |
| लुट् | श्रोता | श्रोतारौ | श्रोतार |
| लृट् | श्रोष्यति | श्रोष्यत | श्रोष्यन्ति |
| आशी० | श्रूयात् | श्रूयास्ताम् | श्रूयासु |
| लृङ | अश्रोष्यत् | अश्रोष्यताम् | अश्रोष्यन |

## परस्मैपद

### स्था—ठहरना

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तिष्ठति | तिष्ठत | तिष्ठन्ति |
| म० पु० | तिष्ठसि | तिष्ठथ | तिष्ठथ |
| उ० पु० | तिष्ठामि | तिष्ठाव | तिष्ठाम |
| लोट् | प्र० पु० | एकवचन | तिष्ठतु, तिष्ठतात् |
| विधि | प्र० पु० | एकवचन | तिष्ठेत् |
| लङ् | प्र० पु० | एकवचन | अतिष्ठत् |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तस्थौ | तस्थतु | तस्थु |
| म० पु० | तस्थित, तस्थाथ | तस्थथु | तस्थ |
| उ० पु० | तस्थौ | तस्थिव | तस्थिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्थात् | अस्थाताम् | अस्थु |
| म० पु० | अस्था | अस्थातम् | अस्थात |
| उ० पु० | अस्थाम् | अस्थाव | अस्थाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्थाता | स्थातारौ | स्थातार |
| म० पु० | स्थातासि | स्थातास्थ | स्थातास्थ |
| उ० पु० | स्थातास्मि | स्थातास्व | स्थातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्थास्यति | स्थास्यत | स्थास्यन्ति |
| म० पु० | स्थास्यसि | स्थास्यथ | स्थास्यथ |
| उ० पु० | स्थास्यामि | स्थास्याव | स्थास्याम |

**आशीर्लिङ**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्थेयात् | स्थेयास्ताम् | स्थेयासु |
| म० पु० | स्थेया | स्थेयास्तम् | स्थेयास्त |
| उ० पु० | स्थेयासम् | स्थेयास्व | स्थेयास्म |

**क्रियातिपत्ति—लृङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्थास्यत् | अस्थास्यताम | अस्थास्यन् |
| म० पु० | अस्थास्य | अस्थास्यतम् | अस्थास्यत |
| उ० पु० | अस्थास्यम् | अस्थास्याव | अस्थास्याम |

१४०—भ्वादिगण की मुख्य धातुओं की सूची और रूपों का दिग्दर्शन—

क्रन्द् (प०)—रोना। लट्—क्रन्दति। लिट्—चक्रन्द चक्रन्दतु, चक्रन्दु, चक्रन्दिथ। लुङ—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषु। अक्रन्दी, अक्रन्दिष्टम्, अक्रन्दिष्ट। अक्रन्दिषम्, अक्रन्दिष्व, अक्रन्दिष्म। लुट्—क्रन्दिता। लृट्—क्रन्दिष्यति। आशी०—क्रन्द्यात्। लृङ—अक्रन्दिष्यत्।

क्रीड् (प०)—खेलना। लट्—क्रीडति। लोट्—क्रीडतु। विधि—क्रीडेत्। लङ—अक्रीडत्, अक्रीडताम्, अक्रीडन्। लिट्—चिक्रीड, चिक्री-डतु, चिक्रीडु। चिक्रीडिथ, चिक्रीडथु, चिक्रीड, चिक्रीडिव, चिक्रीडिम। लुङ—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषु। अक्रीडी, अक्रीडिष्टम्, अक्रीडिष्ट। अक्रीडिषम् अक्रीडिष्व, अक्रीडिष्म। लुट्—क्रीडिता। लृट्—क्रीडिष्यति। आशी०—क्रीडयात्। लृङ—अक्रीडिष्यत्।

क्रुश् (प०)—चिल्लाना, रोना। लट्—क्रोशति। लोट्—क्रोशतु। विधि० —क्रोशेत्। लङ—अक्रोशत्। लिट्—चुक्रोश, चुक्रुशतु, चुक्रुशु चुक्रोशिथ, चुक्रुशथु, चुक्रुश। चुक्रोश, चुक्रुशिव, चुक्रुशिम लुङ—अक्रुशत, अक्रुशताम्, अक्रुशन्। अक्रुश, अक्रुशतम्, अक्रुशत

अक्रुशन्, अक्रुशाव, अक्रुशाम। लुट्—क्रोष्टा। लृट्—क्रोक्ष्यति। आशी०—क्रुश्यात्। लृङ—अक्रोक्ष्यत्।

क्लम्[1] (प०)—थकना। लट्—क्लामति। लिट्—चक्लाम, चक्लमतु, चक्लमु। चक्लमिथ, चक्लमथु, चक्लम। चक्लाम-चक्लम, चक्लामिव, चक्लामिम। लुङ—अक्लम्, अक्लमताम्, अक्लमन्। लुट्—क्लमिता। लृट्—क्लमिष्यति। आशी०—क्लम्यात्।

क्षम्[2] (आ०)—क्षमा करना। लट्—क्षमते, क्षमेते, क्षमन्ते।

| | | |
|---|---|---|
| लिट्—चक्षमे | चक्षमाते | चक्षमिरे |
| { चक्षमिषे<br>{ चक्षसे | चक्षमाथे | { चक्षमिध्वे<br>{ चक्षन्ध्वे |
| चक्षमे | { चक्षमिवहे<br>{ चक्षण्वहे | { चक्षमिमहे<br>{ चक्षण्महे |

कम्प् (आ०)—काँपना। लट्—कम्पते, कम्पेते, कम्पन्ते। लोट्—कम्पताम्, कम्पेताम्, कम्पन्ताम्। विधि—कम्पेत, कम्पेयाताम्, कम्पेरन्। लङ—अकम्पत, अकम्पेताम्, अकम्पन्त। अकम्पथा, अकम्पेथाम्, अकम्पध्वम्। अकम्पे, अकम्पावहि, अकम्पामहि। लिट्—चकम्पे, चकम्पाते, चकम्पिरे, चकम्पिषे, चकम्पाथे, चकम्पिध्वे। चकम्पे, चकम्पिवहे, चकम्पिमहे। लुङ—अकम्पिष्ट, अकम्पिषाताम्, अकम्पिषत। अकम्पिष्ठा, अकम्पिषाथाम्, अकम्पिष्वम्। अकम्पिषि, अकम्पिष्वहि, अकम्पिष्महि। लुङ—कम्पिता, कम्पितारौ, कम्पितार। कम्पितासे, कम्पितासाथे, कम्पिताध्वे। कम्पिताहे, कम्पितास्वहे, कम्पितास्महे। लृट्—कम्पिष्यते, कम्पिष्येते, कम्पिष्यन्ते। कम्पिष्यसे, कम्पिष्येथे, कम्पिष्यध्वे। कम्पिष्ये,

---

१ यह दिवादि गण मे भी है। वहाँ इसका रूप 'क्लाम्यति' इत्यादि है।

२ यह भी दिवादि मे होती है, और इसका रूप 'क्षाम्यति' इत्यादि होता है।

कम्पिष्यावहे, कम्पिष्यामहे । आशी०—कम्पिषीष्ट, कम्पिषीयास्नाम, कम्पिषीरन् । लृङ्—अकम्पिष्यत, अकम्पिष्येताम्, अकम्पिष्यन्त ।

काङ्क्ष (प०)—इच्छा करना । लट्—काङ्क्षति । लोट्—काङ्क्षतु । विधि०—काङ्क्षेत् । लङ—अकाङ्क्षत् । लिट्—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षतु, चकाङ्क्षु । चकाङ्क्षिथ, चकाङ्क्षथु, चकाङ्क्ष । चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षिव, चकाङ्क्षिम । लुङ—अकाङ्क्षीत्, अकाङ्क्षिष्टाम्, अकाङ्क्षिषु । अकाङ्क्षी, अकाङ्क्षिष्टम्, अकाङ्क्षिष्ट । अकाङ्क्षिषम्, अकाङ्क्षिष्व, अकाङ्क्षिष्म । लुट्—काङ्क्षिता । लृट्—काङ्क्षिष्यति । आशी०—काङ्क्ष्यात् । लृङ—अकाङ्क्षिष्यत् ।

काश् (आ०)—चमकना । लट्—काशते, काशेते, काशन्ते । लिट्—चकाशे, चकाशाते, चकाशिरे । चकाशिषे, चकाशाथे, चकाशिध्वे । चकाशे, चकाशिवहे, चकाशिमहे । लुङ—अकाशिष्ट, अकाशिषाताम्, अकाशिषत । अकाशिष्ठा, अकाशिषाथाम्, अकाशिढ्वम् । अकाशिषि, अकाशिष्वहि, अकाशिष्महि । लुट्—काशिता लृट्—काशिष्यते । आशी०—काशिषीष्ट । लृङ—अकाशिष्यत ।

खन् (उ०)—खनना । लट्—खनति, खनते । लिट्—चखान, चख्नतु, चख्नु । चखनिथ, चख्नथु, चख्न । चखान, चखन, चख्निव, चख्निम । चख्ने, चख्नाते, चख्निरे । चख्निषे, चख्नाथे, चख्निध्वे । चख्ने, चख्निवहे, चख्निमहे । लुङ—अखनीत अखनिष्टाम्, अखनिषु, अखानीत्, अखानिष्टाम्, अखानिषु । अखनिष्ट, अखनिषाताम्, अखनिषत । लुट्—खनिता । लृट्—खनिष्यति, खनिष्यते । आशी०—खन्यात्, खायात्, खनिषीष्ट ।

ग्लै (प०)—क्षीण होना । ग्लायति, ग्लायत, ग्लायन्ति । लिट्—जग्लौ, जग्लतु, जग्लु । जग्लिथ-जग्लाथ, जग्लथु, जग्ल । जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम । लुङ—अग्लासीत् । लुट्—ग्लाता । लृट्—ग्लास्यति । आशी०—ग्लायात्, ग्लेयात् ।

चल् (प०)—चलना । लट्—चलति, चलत चलन्ति । लिट्—चचाल चेलतु चेलु । चेलिथ, चेलथु, चेल । चचाल-चचल, चेलिव,

चेलिम। लुङ्—अचालीत्। लुट्—चलिता। लृट्—चलिष्यति। आशी०—चल्यात्। लृङ्—अचलिष्यत्।

ज्वल् (प०)—जलना। लट्—ज्वलति। लिट्—जज्वाल, जज्वलतु, जज्वलु। जज्वलिथ, जज्वलथु, जज्वल। जज्वाल-जज्वल, जज्वलिव, जज्वलिम। लुङ्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्, अज्वालिषु। लुट्—ज्वलिता। लृट्—ज्वलिष्यति। आशी०—ज्वल्यात्।

डी[1] (आ०)—उडना। लट्—डयते, डयेते, डयन्ते। लिट्—डिड्ये, डिड्याते, डिड्यिरे। लुङ्—अडयिष्ट, अडयिषाताम्, अडयिषत। लुट्—डयिता। लृट्—डयिष्यते। आशी०—डयिषीष्ट।

त्यज् (प०)—छोडना। लट्—त्यजति, त्यजत, त्यजन्ति। लिट्—तत्याज, तत्यजतु, तत्यजु। तत्यजिथ-तत्यक्थ, तत्यजथु, तत्यज। तत्याज-तत्यज, तत्यजिव, तत्यजिम। लुङ्—अत्याक्षीत्, अत्याष्टाम्, अत्याक्षु। अत्याक्षी, अत्याष्टम्, अत्याष्ट। अत्याक्षम्, अत्याक्ष्व, अत्याक्ष्म। लुट्—त्यक्ता, त्यक्तारौ, त्यक्तार लृट्—त्यक्ष्यति, त्यक्ष्यत, त्यक्ष्यन्ति। आशी०—त्यज्यात्।

दह् (प०)—जलाना। लट्—दहति, दहत, दहन्ति। लिट्—ददाह, देहतु, देहु। देहिथ-ददग्ध, देहथु, देह। ददाह-ददह, देहिव, देहिम। लुङ्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम्, अधाक्षु। अधाक्षी, अदाग्धम्, अदाग्ध। अधाक्षम्, अधाक्ष्व, अधाक्ष्म। लुट्—दग्धा, दग्धारौ, दग्धार। लृट्—धक्ष्यति, धक्ष्यत, धक्ष्यन्ति। आशी०—दह्यात्।

ध्यै (प०)—ध्यान रखना। लट्—ध्यायति, ध्यायत, ध्यायन्ति। लिट्—दध्यौ, दध्यतु, दध्यु। दध्यिथ-दध्याथ, दध्यथु, दध्य। दध्यौ, दध्यिव, दध्यिम। लुङ्—अध्यासीत् अध्यासिष्टाम्, अध्यासिषु। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यति।

१ यह दिवादिगणी भी है। वहाँ पर इसके रूप डीयते, डीयन्ते चलते हैं।

पच् (उ०)—पकाना या पचाना। लट्—पचति, पचते।

**लिट्—परस्मैपद**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पपाच | पेचतु | पेचु |
| म० पु० | पेचिथ, पपक्थ | पेचथु | पेच |
| उ० पु० | पपाच-पपच | पेचिव | पेचिम |

**लिट्—आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पेचे | पेचाते | पेचिरे |
| म० पु० | पेचिषे | पेचाथे | पेचिध्वे |
| उ० पु० | पेच | पेचिवहे | पेचिमहे |

**लुङ—आत्मनेपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपाक्षीत् | अपाक्ताम् | अपाक्षु |
| म० पु० | अपाक्षी | अपाक्तम् | अपाक्त |
| उ० पु० | अपाक्षम् | अपाक्ष्व | अपाक्ष्म |

**लुङ—परस्मैपद**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपक्त | अपक्षाताम् | अपक्षत |
| म० पु० | अपक्था | अपक्षाथाम् | अपग्ध्वम् |
| उ० पु० | अपक्षि | अपक्ष्वहि | अपक्ष्महि |

लुट्—पक्ता, पक्तारौ, पक्तार। लृट्—पक्ष्यति, पक्ष्यते। आशी०—पक्ष्यात् पक्षीष्ट। लृङ—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत।

पत् (प०)—गिरना। लट्—पतति। लिट्—पपात, पेततु, पेतु।

**लुङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अपप्तत् | अपप्तताम् | अपप्तन् |
| म० पु० | अपप्त | अपप्ततम् | अपप्तत |
| उ० पु० | अपप्तम | अपप्ताव | अपप्ताम |

लुट्—पतिता। लृट्—पतिष्यति।

फल् (प०)—फलना। लट्—फलति। लिट्—पफाल, फेलतु, फेलु। फेलिथ। लुङ—अफालीत्, अफालिष्टाम्, अफालिषु। लुट्—फलिता। लृट्—फलिष्यति।

फुल्ल् (प०)—फूलना। लट्—फुल्लति। लिट्—पुफुल्ल, पुफुल्लतु, पुफुल्लु। लुङ—अफुल्लीत्, अफुल्लिष्टाम्, अफुल्लिषु। लुट्—फुल्लिता। लृट्—फुल्लिष्यति।

बाध् (आ०)—पीडा देना। लट—बाधते। लिट्—बबाधे, बबाधाते, बबाधिरे। लुङ—अबाधिष्ट अबाधिषाताम् अबाधिषत। लुट्—बाधिता। लृट्—बाधिष्यते।

बुध[1] (उ०)—जानना। लट्—बोधते, बोधति। लिट्—बुबोध, बुबुधे। लुङ—अबुधत्, अबुधताम्, अबुधन्। अबोधीत्, अबोधिष्टाम्, अबोधिषु। अबोधिष्ट, अबोधिषाताम्, अबोधिषत। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते। आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट।

भज् (उ०)—सेवा करना। लट्—भजति, भजते। लिट्—बभाज, भेजतु, भेजु। भेजिथ-बभक्थ, भेजस्थु, भेज। बभाज-बभज, भेजिव, भेजिम। भेजे, भेजाते, भेजिरे। भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे। भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे। लुङ—अभाक्षीत्, अभाक्ताम्, अभाक्षु। अभाक्षी, अभाक्तम्, अभाक्त। अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्ष्म। अभक्त, अभक्षाताम्, अभक्षत। अभक्था, अभक्षाथाम्, अभग्ध्वम्। अभक्षि, अभक्ष्वहि, अभक्ष्महि,। लुट्—भक्ता। लृट्—भक्ष्यति, भक्ष्यते। आशी०—भज्यात्, भक्षीष्ट।

भाष् (आ०)—बोलना। लट्—भाषते, भाषेते, भाषन्ते। लिट्—बभाषे, बभाषाते, बभाषिरे। बभाषिषे, बभाषाथे, बभाषिध्वे। बभाषे, बभाषिवहे, बभाषिमहे। लुङ—अभाषिष्ट, अभाषिषाताम्,

---

१ यह दिवादिगणी भी है। वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुध्यते इत्यादि रूप चलता है।

अभाषिषत। अभाषिष्ठा, अभाषिषाथाम्, अभाषिध्वम्। अभाषिषि, अभाषिष्वहि, अभाषिष्महि। लुट्—भाषिता। लृट्—भाषिष्यते। आशी०—भाषिषीष्ट।

भिक्ष् (आ०)—भीख माँगना। लट—भिक्षते। लिट्—बिभिक्षे, बिभिक्षाते, बिभिक्षिरे। बिभिक्षिषे, बिभिक्षाथे, बिभिक्षिध्वे। बिभिक्षे, बिभिक्षिवहे, बिभिक्षिमहे। लुङ्—अभिक्षिष्ट, अभिक्षिषाताम्, अभिक्षिषत। लुट्—भिक्षिता। लृट्—भिक्षिष्यते। आशी०—भिक्षिषीष्ट।

भूष्[1] (प०)—सजाना। लट्—भूषति। लिट्—बुभूष, बुभूषतु, बुभूषु। लुङ—अभूषीत्, अभूषिष्टाम्, अभूषिषु। लुट्—भूषिता। लृट्—भूषिष्यति। आशी०—भूष्यात्, भूष्यास्ताम्, भूष्यासु।

भृ[2] (उ०)—भरना या पालना-पोसना। लट्—भरति, भरते। लिट्—बभार, बभ्रतु, बभ्रु। बभर्थ, बभ्रथु, बभ्र। बभार-बभर, बभृव, बभृम। बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे। बभृषे, बभ्राथे, बभृध्वे। बभ्रे, बभृवहे, बभृमहे। लुङ—अभार्षीत, अभार्ष्टाम्, अभार्षु। अभार्षी, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट। अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म। अभृत, अभृषाताम्, अभृषत। अभृथा, अभृषाथाम्, अभृध्वम्। अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि। लुट्—भर्ता। लृट्—भरिष्यति, भरिष्यते। आशी०—भ्रियात्, भृषीष्ट।

भ्रंश्[3] (आ०)—गिरना। लट्—भ्रशते। लिट्—बभ्रशे। लुङ—अभ्रशत्, अभ्रशताम्, अभ्रशन् तथा अभ्रशिष्ट, अभ्रशिषाताम्, अभ्रशिषत। लुट्—भ्रशिता। लृट्—भ्रशिष्यते। आशी०—भ्रशिषीष्ट।

---

१ यह धातु चुरादिगणी भी है। वहाँ यह उभयपदी है और भूषयति, भूषयते, इत्यादि रूप होते हैं।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है, वहाँ इसके रूप बिभर्ति, बिभ्रत, बिभ्रति इत्यादि होते हैं।

३ यह धातु दिवादिगणी भी है, वहाँ इसके भ्रश्यते इत्यादि रूप होते हैं।

(१) यह दिवादिगणी भी है। वहाँ यह परस्मैपदी होती है (भ्रश्यति)।
(२) भ्वादिगण मे लुङ लकार मे इसके रूप परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनो मे चलते है।

भ्रम्[1] (प०)—भ्रमण करना। लट्—भ्रमति। लिट्—बभ्राम, भ्रेमतु, भ्रेमु। भ्रेमिथ, भ्रेमथु, भ्रेम। बभ्राम-बभ्रम, भ्रेमिव, भ्रेमिम तथा बभ्राम, बभ्रतु, बभ्रुमु। बभ्रमिथ, बभ्रमथु, बभ्रम। बभ्राम-बभ्रम, बभ्रमिव, बभ्रमिम। लुङ—अभ्रमीत्। लुट्—भ्रमिता। लृट्—भ्रमिष्यति। आशी०—भ्रम्यात्।

मथ् (प०)—मथना। लट्—मथति। लिट्—ममाथ। लुङ—अमथीत्। लुट्—मथिता। लृट्—मथिष्यति। आशी०—मथ्यात्।

मन्थ्[2] (प०)—मथना। लट्—मन्थति। लिट्—ममन्थ। लुङ—अमन्थीत्। लुट्—मथिता। लृट्—मन्थिष्यति। आशी०—मथ्यात्।

मुद् (आ०)—प्रसन्न होना। लट्—मोदते। लिट्—मुमुदे। लुङ—अमोदिष्ट। लुट्—मोदिता। लृट्—मोदिष्यते। आशी०—मोदिषीष्ट।

यज् (उ०)—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, सग करना या देना लट्—यजति, यजते।

**लिट्—परस्मैपद**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इयाज | ईजतु | ईजु |
| म० पु० | इयजिथ<br>इयष्ठ | ईजथु | ईज |
| उ० पु० | इयाज<br>इयज | ईजिव | ईजिम |

---

१ यह दिवादिगणी भी है। यहाँ पर लट्, लोट्, विधिलिङ तथा लुङ मे भेद पड जाता है।

२ यह क्र्यादिगणी भी है। यहाँ मथ्नाति, मथ्नीत, मथ्नन्ति इत्यादि रूप होते हैं।

### लिट्—आत्मनेपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ईजे | ईजाते | ईजिरे |
| म० पु० | ईजिषे | ईजाथे | ईजिध्वे |
| उ० पु० | ईजे | ईजिवहे | ईजिमहे |

### लुङ—परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अयाक्षीत् | अयाष्टाम् | अयाक्षु |
| म० पु० | अयाक्षी | अयाष्टम् | अयाष्ट |
| उ० पु० | अयाक्षम् | अयाक्ष्व | अयाक्ष्म |

### लुङ—आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अयष्ट | अयक्षाताम् | अयक्षत |

लुट्—यष्टा, यष्टारौ, यष्टार । लृट्—यक्ष्यति, यक्ष्यते । आशी०—इज्यात्, यक्षीष्ट ।

**यत्** (आ०)—प्रयत्न करना । लट्—यतते । लिट्—येते, येताते, येतिरे । येतिषे, येताथे, येतिध्वे । येते, येतिवहे, येतिमहे । लुङ—अयतिष्ट, अयतिषाताम्, अयतिषत । अयतिष्ठा, अयतिषाथाम्, अयतिध्वम् । अयतिषि, अयतिष्वहि, अयतिष्महि । लुट्—यतिता । लृट्—यतिष्यते । आशी०—यतिषीष्ट ।

**याच्** (उ०)—माँगना । लट्—याचति, याचते । लिट्—ययाच, ययाचतु, ययाचु । ययाचिथ, ययाचथु, ययाच । ययाच, ययाचिव ययाचिम । ययाचे, ययाचाते, ययाचिरे । ययाचिषे, ययाचाथे, ययाचिध्वे । ययाचे, ययाचिवहे, ययाचिमहे । लुङ—अयाचीत्, अयाचिष्टाम्, अयाचिषु । अयाचिष्ट, अयाचिषाताम्, अयाचिषत । लुट्—याचिता । लृट्—याचिष्यति, याचिष्यते ।

**रभ्** (आ०)—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाजी मे काम करना । लट्—रभते । लिट्—रेभे, रेभाते, रेभिरे । रेभिषे, रेभाथे, रेभिध्वे । रेभे, रेभिवहे, रेभिमहे । लुङ—

अरब्ध, अरप्सताम्, अरप्सत। अरब्धा, अरप्साथाम्, अरब्ध्वम्। अरप्सि, अरप्स्वहि, अरप्स्महि। लुट्—रब्धा, रब्धारौ, रब्धार। लृट्—रप्स्यते। आशी०—रप्सीष्ट। लृङ—अरप्स्यत।

रम् (आ०)—खेलना, हर्षित होना। लट्—रमते, रमेते, रमन्ते। लिट्—रेमे, रेमाते, रेमिरे। लुङ—अरस्त, अरसाताम् अरसत। अरस्था, अरसाथाम्, अरध्वम्। अरसि, अरस्वहि, अरस्महि। लुट्—रन्ता, रन्तारौ, रन्तार। लृट्—रस्यते। लृङ—अरस्यत।

रुह् (प०)—उगना, बढना, उठना। लट्—रोहति, रोहत, रोहन्ति। लिट्—रुरोह, रुरुहतु, रुरुहु। रुरोहिथ, रुरुहथु, रुरुह। रुरोह, रुरुहिव, रुरुहिम। लुङ—अरुक्षत्, अरुक्षताम्, अरुक्षन्। अरुक्ष, अरुक्षतम। अरुक्षतम्। अरुक्षम्, अरुक्षाव, अरुक्षाम। लुट्—रोढा। लृट्—रोक्ष्यति।

वद् (प०)—कहना। लट्—वदति।

**लिट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | उवाद | ऊदतु | ऊदु |
| म० पु० | उवदिथ | ऊदथु | ऊद |
| उ० पु० | उवाद, उवद | ऊदिव | ऊदिम |

**लुङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवादीत् | अवादिष्टाम् | अवादिषु |
| म० पु० | अवादी | अवादिष्टम् | अवादिष्ट |
| उ० पु० | अवादिषम् | अवादिष्व | अवादिष्म |

लुट्—वदिता। लृट्—वदिष्यति। आशी०—उद्यात्।

वन्द् (आ०)—नमस्कार करना या स्तुति करना। लट्—वन्दते, वन्देते, वन्दन्ते। लिट्—ववन्दे, ववन्दाते, ववन्दिरे। लुङ—अवन्दिष्ट, अवन्दिषाताम्, अवन्दिषत। लुट्—वन्दिता। लृट्—वन्दिष्यते। आशी०—वन्दिषीष्ट।

वप् (उ०) बोना, छितराना, कपडा बुनना, बाल बनाना। लट्—वपति, वपे।

लिट्—परस्मैपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | उवाप | ऊपतु | ऊपु |
| म० पु० | उवपिथ-उवप्थ | ऊपथु | ऊप |
| उ० पु० | उवाप-उवप | ऊपिव | ऊपिम |

लिट्—आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऊपे | ऊपाते | ऊपिरे |
| म० पु० | ऊपिषे | ऊपिथे | ऊपिध्वे |
| उ० पु० | ऊपे | ऊपिवहे | ऊपिमहे |

लुङ्—परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवाप्सीत् | अवाप्ताम् | अवाप्सु |
| म० पु० | अवाप्सी | अवाप्तम् | अवाप्त |
| उ० पु० | अवाप्सम् | अवाप्स्व | अवाप्स्म |

लुङ्—आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवप्त | अवप्साताम् | अवप्सत |
| म० पु० | अवप्था | अवप्साथाम् | अवब्ध्वम् |
| उ० पु० | अवप्सि | अवप्स्वहि | अवप्स्महि |

लुट्—वप्ता, वप्तारौ, वप्तार.। लृट्—वप्स्यति, वप्स्यते। आशी०—उप्यात्, उप्यास्ताम्, उप्यासु। वप्सीष्ट, वप्सीयास्ताम्, वप्सीरन्।

वस् (प०)—रहना, होना, समय व्यतीत करना। लट्—वसति।

लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | उवास | ऊषतु | ऊषु |
| म० पु० | उवसिथ-उवस्थ | ऊषथु | ऊष |
| उ० पु० | उवास-उवस | ऊषिव | ऊषिम |

लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवात्सीत् | अवात्ताम् | अवात्सु |
| म० पु० | अवात्सी | अवात्तम् | अवात्त |
| उ० पु० | अवात्सम् | अवात्स्व | अवात्स्म |

लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वस्ता | वस्तारौ | वस्तार |

लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वत्स्यति | वत्स्यत | वत्स्यन्ति |
| म० पु० | वत्स्यसि | वत्स्यथ | वत्स्यथ |
| उ० पु० | वत्स्यामि | वत्स्याव | वत्स्याम |

वाञ्छ् (प०)—इच्छा करना। लट्—वाञ्छति, वाञ्छत, वाञ्छन्ति। लिट्—ववाञ्छ, ववाञ्छतु, ववाञ्छु। ववाञ्छिथ। लुङ—अवाञ्छीत्। लुट्—वाञ्छिता। लृट्—वाञ्छिष्यति। आशी०—वाञ्छ्यात्।

वृध्[1] (आ०)—बढ़ना। लट्—वर्धते, वर्धेते, वर्धन्ते। लिट्—ववृधे, ववृधाते, ववृधिरे। ववृधिषे, ववृधाथे, ववृधिध्वे। ववृधे, ववृधिवहे, ववृधिमहे। लुङ—अवर्धिष्ट, अवर्धिषाताम्, अवर्धिषत। अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन्। लुट्—वर्धिता। लृट्—वर्धिष्यते अथवा वर्त्स्यति। लृङ—अवर्धिष्यत्, अवर्त्स्यत।

आशी०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वर्धिषीष्ट | वर्धिषीयास्ताम् | वर्धिषीरन् |
| म० पु० | वर्धिषीष्ठा | वर्धिषीयास्थाम् | वर्धिषीध्वम् |
| उ० पु० | वर्धिषीय | वर्धिषीवहि | वर्धिषीमहि |

वृष् (प०)—बरसना। लट्—वर्षति, वर्षत, वर्षन्ति। लिट्—ववर्ष, ववृषतु, ववृषु[1]। लुङ—अवर्षीत्। लुट्—वर्षिता। लृट्—वर्षिष्यति। आशी०—वृष्यात्।

---

१ यह लृट, लुङ तथा लृङ मे परस्मैपदी भी हो जाती है।

व्रज् (प०)—चलना। लट्—व्रजति। लिट्—वव्राज, वव्राजतुः, वव्रजुः। लुङ—अव्राजीत्, अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषुः। लुट्—व्रजिता। लृट्—व्रजिष्यति। आशी०—व्रज्यात्।

शस् (प०)—स्तुति करना या चोट पहुँचाना। लट्—शसति। लिट्—शशास, शशसतुः, शशसुः। लुङ—अशसीत् अशसिष्टाम्, अशसिषुः। लुट्—शसिता। लृट्—शसिष्यति। आशी०—शस्यात्, शस्यास्ताम्, शस्यासुः।

शङ्क्(आ०)—शङ्का करना। लट्—शङ्कते, शङ्केते, शङ्कन्ते। लिट्—शशङ्के, शशङ्काते, शशङ्किरे। लुङ—अशङ्किष्ट, अशङ्किषाताम्, अशङ्किषत। लुट्—शङ्किता। लृट्—शङ्किष्यते। आशी०—शङ्किषीष्ट।

शिक्ष् (आ०)—सीखना। लट्—शिक्षते। लिट्—शिशिक्षे। लुङ—अशिक्षिष्ट, अशिक्षिषाताम्, अशिक्षिषत। लुट्—शिक्षिता। लृट्—शिक्षिष्यते। आशी०—शिक्षिषीष्ट।

शुच् (प०)—शोक करना, पछताना। लट्—शोचति, शोचतः, शोचन्ति। लिट्—शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः। शुशोचिथ। लुङ—अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः। लुट्—शोचिता। लृट्—शोचिष्यति। आशी०—शुच्यात्।

शुभ् (आ०)—शोभित होना, प्रसन्न होना। लट्—शोभते, शोभेते, शोभन्ते। लिट्—शुशुभे, शुशुभाते, शुशुभिरे। लुङ—अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्, अशोभिषत। लुट्—शोभिता। लृट्—शोभिष्यते। आशी०—शोभिषीष्ट।

सह् (आ०)—सहना। लट्—सहते। लिट्—सेहे, सेहाते, सेहिरे।

लुङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | असहिष्ट | असहिषाताम् | असहिषत |
| म० पु० | असहिष्ठाः | असहिषाथाम् | असहिढ्वम् |
| उ० पु० | असहिषि | असहिष्वहि | असहिष्महि |

लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सोढा | सोढारौ | सोढारः |
| म० पु० | सोढासे | सोढासाथे | सोढाध्वे |
| उ० पु० | सोढाहे | सोढास्वहे | सोढास्महे |

अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सहिता | सहितारौ | सहितारः |
| म० पु० | सहितासे | सहितासाथे | सहिताध्वे |
| उ० पु० | सहिताहे | सहितास्वहे | सहितास्महे |

लृट्—सहिष्यते। आशी०—सहिषीष्ट।

सृ (प०)—चलना। लट्—सरति, सरतः, सरन्ति। लिट्—ससार, सस्रतुः, सस्रुः। ससर्थ, सस्रथुः, सस्र। ससार-ससर, ससृव, ससृम। लङ—असरत्, असरताम्, असरन् तथा असार्षीत्, असार्ष्टाम्, असार्षुः। लुट्—सर्त्ता। लृट्—सरिष्यति। आशी०—स्रियात्।

सेव् (आ०)—सेवा करना। लट्—सेवते, सेवेते, सेवन्ते। लिट्—सिषेवे, सिषेवाते, सिषेविरे। सिषेविषे, सिषेवाथे, सिषेविध्वे। सिषेवे, सिषेविवहे, सिषेविमहे। लुङ—असेविष्ट, असेविषाताम्, असेविषत। लुट्—सेविता। लृट्—सेविष्यते। आशी०—सेविषीष्ट।

स्मृ (प०)—स्मरण करना। लट्—स्मरति, स्मरतः, स्मरन्ति।

लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सस्मार | सस्मरतुः | सस्मरुः |
| म० पु० | सस्मर्थ | सस्मरथुः | सस्मर |
| उ० पु० | सस्मार, सस्मर | सस्मरिव | सस्मरिम |

लुङ—अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षुः। अस्मार्षीः, अस्मार्ष्टम्, अस्मार्ष्ट। अस्मार्षम्, अस्मार्ष्व, अस्मार्ष्म। लुट्—स्मर्ता। लृट्—स्मरिष्यति। आशी०—स्म्रियात्।

स्वद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वदते, स्वदेते, स्वदन्ते। लिट्—सस्वदे, सस्वदाते, सस्वदिरे। सस्वदिषे, सस्वदाथे, सस्वदिध्वे। सस्वदे, सस्वदिवहे, सस्वदिमहे। लुङ—अस्वदिष्ट, अस्वदिषाताम्, अस्वदिषत। अस्वदिष्ठा, अस्वदिषाथाम्, अस्वदिध्वम्। अस्वदिषि, अस्वदिष्वहि, अस्वदिष्महि। लुट्—स्वदिता। लृट्—स्वदिष्यते। आशी०—स्वदिषीष्ट।

स्वाद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वादते, स्वादेते, स्वादन्ते। लिट्—सस्वादे, सस्वादाते, सस्वादिरे। सस्वादिषे, सस्वादाथे, सस्वादिध्वे। सस्वादे, सस्वादिवहे, सस्वादिमहे। लुङ—अस्वादिष्ट, अस्वादिषाताम्, अस्वादिषत। लुट्—स्वादिता। लृट्—स्वादिष्यते। आशी०—स्वादिषीष्ट।

ह्लद् (आ०)—खुश होना या शब्द करना। लट्—ह्लादते। लिट्—जह्लादे, जह्लादाते, जह्लादिरे। लुङ—अह्लादिष्ट। लुट्—ह्लादिता। लृट्—ह्लादिष्यते। आशी०—ह्लादिषीष्ट।

## (२) अदादिगण

१४१—इस गण के आदि मे अद् (खाना) धातु है, इसलिए इसका नाम अदादि है। धातुपाठ मे इस गण की ७२ धातुएँ पठित हैं। इस गण की धातुओ के उपरान्त ही प्रत्यय जोड दिये जाते हैं, धातु और प्रत्यय के बीच मे भ्वादिगण के शप्[1] (अ) की तरह कुछ नही रहने पाता। उदाहरणार्थ अद्+मि=अद्मि, अद्+ति=अत्ति, स्ना+ति,=स्नाति।

परस्मैपदी आकारान्त धातुओ के अनन्तर अनद्यतनभूत के प्रथम पुरुष बहुवचन के 'अन्' प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से 'उस्' आता है, जैसे—आदम् अथवा आदु।

---

१ अदिप्रभृतिभ्य शप ।२।४।७२। अर्थात् अदादिगण की धातुओ के बाद शप् का लुक् (लोप) हो जाता है।

## परस्मैपदी

### अद्—खाना

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अत्ति | अत्तः | अदन्ति |
| म० पु० | अत्सि | अत्थः | अत्थ |
| उ० पु० | अद्मि | अद्वः | अद्मः |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अत्तु, अत्तात् | अत्ताम् | अदन्तु |
| म० पु० | अद्धि, अत्तात् | अत्तम् | अत्त |
| उ० पु० | अदानि | अदाव | अदाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अद्यात् | अद्याताम् | अद्युः |
| म० पु० | अद्याः | अद्यातम् | अद्यात |
| उ० पु० | अद्याम् | अद्याव | अद्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आदत् | आत्ताम् | आदन्, आदुः |
| म० पु० | आदः | आत्तम् | आत्त |
| उ० पु० | आदम् | आद्व | आद्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जघास | जक्षतुः | जक्षुः |
| म० पु० | जघसिथ | जक्षथुः | जक्ष |
| उ० पु० | जघास, जघस | जघसिव | जघसिम |

अथवा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आद | आदतु | आदु |
| म० पु० | आदिथ | आदथु | आद |
| उ० पु० | आद | आदिव | आदिम |

सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अघसत् | अघसताम् | अघसन् |
| म० पु० | अघस | अघसतम् | अघसत |
| उ० पु० | अघसम् | अघसाव | अघसाम |

अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अत्ता | अत्तारौ | अत्तार |
| म० पु० | अत्तासि | अत्तास्थ | अत्तास्थ |
| उ० पु० | अत्तास्मि | अत्तास्व | अत्तास्म. |

सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अत्स्यति | अत्स्यत | अत्स्यन्ति |
| म० पु० | अत्स्यसि | अत्स्यथ | अत्स्यथ |
| उ० पु० | अत्स्यामि | अत्स्याव | अत्स्याम |

आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अद्यात् | अद्यास्ताम् | अद्यासु |
| म० पु० | अद्या | अद्यास्तम् | अद्यास्त |
| उ० पु० | अद्यासम् | अद्यास्व | अद्यास्म |

क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आत्स्यत् | आत्स्यताम् | आत्स्यन् |
| म० पु० | आत्स्य | आत्स्यतम् | आत्स्यत |
| उ० पु० | आत्स्यम् | आत्स्याव | आत्स्याम |

१४२—अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप।

## परस्मैपदी

### अस्—होना

#### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्ति | स्त | सन्ति |
| म० पु० | असि | स्थ | स्थ |
| उ० पु० | अस्मि | स्व | स्म |

#### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्तु, स्तात् | स्ताम् | सन्तु |
| म० पु० | एधि, स्ताम् | स्तम् | स्त |
| उ० पु० | असानि | असाव | असाम |

#### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्यात् | स्याताम् | स्यु |
| म० पु० | स्या | स्यातम् | स्यात |
| उ० पु० | स्याम् | स्याव | स्याम |

#### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसीत् | आस्ताम् | आसन् |
| म० पु० | आसी | आस्तम् | आस्त |
| उ० पु० | आसम् | आस्व | आस्म |

शेष लकारो मे अस् धातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणी भू धातु के हैं।

## आत्मनेपदी

### आस्—बैठना

#### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आस्ते | आसाते | आसते |
| म० पु० | आस्से | आसाथे | आध्वे |
| उ० पु० | आसे | आस्वहे | आस्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आस्ताम् | आसाताम् | आसताम् |
| म० पु० | आस्स्व | आसाथाम् | आध्वम् |
| उ० पु० | आसै | आसावहै | आसामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसीत | आसीयाताम् | आसीरन् |
| म० पु० | आसीथा | आसीयाथाम् | आसीध्वम् |
| उ० पु० | आसीय | आसीवहि | आसीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आस्त | आसाताम् | आसत |
| म० पु० | आस्था | आसाथाम् | आध्वम् |
| उ० पु० | आसि | आस्वहि | आस्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसाञ्चक्रे | आसाञ्चक्राते | आसाञ्चक्रिरे |
| म० पु० | आसाञ्चकृषे | आसाञ्चक्राथे | आसाञ्चकृढ्वे |
| उ० पु० | आसाञ्चक्रे | आसाञ्चकृवहे | आसाञ्चकृमहे |

आसाम्बभूव तथा आसामास इत्यादि रूप भी होते हैं।

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसिष्ट | आसिषाताम् | आसिषत |
| म० पु० | आसिष्ठा | आसिषाथाम् | आसिध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | आसिषि | आसिष्वहि | आसिष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसिता | आसितारौ | आसितार, इत्यादि। |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसिष्यते | आसिष्येते | आसिष्यन्ते, इत्यादि। |

### आशीर्लिङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसिषीष्ट | आसिषीयास्ताम् | आसिषीरन् |
| म० पु० | आसिषीष्ठा | आसिषीयास्थाम् | आसिषीध्वम् |
| उ० पु० | आसिषीय | आसिषीवहि | आसिषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आसिष्यत | आसिष्येताम् | आसिष्यन्त |

इत्यादि ।

## आत्मनेपदी (अधि[1]) इङ—अध्ययन करना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधीते | अधीयाते | अधीयते |
| म० पु० | अधीषे | अधीयाथे | अधीध्वे |
| उ० पु० | अधीये | अधीवहे | अधीमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधीताम् | अधीयाताम् | अधीयताम् |
| म० पु० | अधीष्व | अधीयाथाम् | अधीध्वम् |
| उ० पु० | अध्ययै | अध्ययावहै | अध्ययामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधीयीत | अधीयीयाताम् | अधीयीरन् |
| म० पु० | अधीयीथा | अधीयीयाथाम् | अधीयीध्वम् |
| उ० पु० | अधीयीय | अधीयीवहि | अधीयीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्यैत | अध्यैयाताम् | अध्यैयत |
| म० पु० | अध्यैथा | अध्यैयाथाम् | अध्यैध्वम् |
| उ० पु० | अध्यैयि | अध्यैवहि | अध्यैमहि |

---

१ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरत ।

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधिजगे[1] | अधिजगाते | अधिजगिरे |
| म० पु० | अधिजगिषे | अधिजगाथे | अधिजगिध्वे |
| उ० पु० | अधिजगे | अधिजगिवहे | अधिजगिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्यगीष्ट[2] | अध्यगीषाताम् | अध्यगीषत |
| म० पु० | अध्यगीष्ठा | अध्यगीषाथाम् | अध्यगीढ्वम् |
| उ० पु० | अध्यगीषि | अध्यगीष्वहि | अध्यगीष्महि |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्यैष्ट | अध्यैषाताम् | अध्यैषत |
| म० पु० | अध्यैष्ठा | अध्यैषाथाम् | अध्यैढ्वम् |
| उ० पु० | अध्यैषि | अध्यैष्वहि | अध्यैष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्येता | अध्येतारौ | अध्येतार |
| म० पु० | अध्येतासे | अध्येतासाथे | अध्येताध्वे |
| उ० पु० | अध्येताहे | अध्येतास्वहे | अध्येतास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्येष्यते | अध्येष्येते | अध्येष्यन्ते |
| म० पु० | अध्येष्यसे | अध्येष्येथे | अध्येष्यध्वे |
| उ० पु० | अध्येष्ये | अध्येष्यावहे | अध्येष्यामहे |

---

१ गाङ लिटि ।२।४।४९। अर्थात् लिट् मे इङ धातु के स्थान मे गाङ हो जाता है।

२ विभाषा लुङलृङो ।२।४।५०। अर्थात् लुङ तथा लृङ (क्रियातिपत्ति) मे विकल्प से गाङ होता है। इसी से इन दोनो लकारो मे दो-दो प्रकार के रूप बनते हैं।

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्येषीष्ट | अध्यषीयास्ताम् | अध्येषीरन् |
| म० पु० | अध्येषीष्ठा | अध्येषीयास्थाम् | अध्येषीढ्वम् |
| उ० पु० | अध्येषीय | अध्येषीवहि | अध्येषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्यगीष्यत | अध्यगीष्येताम् | अध्यगीष्यन्त |
| म० पु० | अध्यगीष्यथा | अध्यगीष्येथाम् | अध्यगीष्यध्वम् |
| उ० पु० | अध्यगीष्ये | अध्यगीष्यावहि | अध्यगीष्यामहि |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अध्यैष्यत | अध्यैष्येताम् | अध्यैष्यन्त |
| म० पु० | अध्यैष्यथा | अध्यैष्येथाम् | अध्यैष्यध्वम् |
| उ० पु० | अध्यैष्ये | अध्यैष्यावहि | अध्यैष्यामहि |

## परस्मैपदी इण्—जाना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एति, इतात् | इत | यन्ति |
| म० पु० | एषि | इथ | इथ |
| उ० पु० | एमि | इव | इम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एतु, इतात् | इताम् | यन्तु |
| म० पु० | एहि | इतम् | इत |
| उ० पु० | अयानि | अयाव | अयाम् |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इयात् | इयाताम् | इयु |
| म० पु० | इयाः | इयातम् | इयात |
| उ० पु० | इयाम् | इयाव | इयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऐत् | ऐताम् | आयन् |
| म० पु० | ऐ | ऐतम् | ऐत |
| उ० पु० | आयम् | ऐव | ऐम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इयाय | ईयतु | ईयु |
| म० पु० | इययिथ, इयेथ | ईयथु | ईय |
| उ० पु० | इयाय, इयय | ईयिव | ईयिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगत्[1] | अगाताम् | अगु |
| म० पु० | अगा | अगातम् | अगात |
| उ० पु० | अगाम् | अगाव | अगाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एता | एतारौ | एतार |
| म० पु० | एतासि | एतास्थ | एतास्थ |
| उ० पु० | एतास्मि | एतास्व | एतास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एष्यति | एष्यत | एष्यन्ति |
| म० पु० | एष्यसि | एष्यथ | एष्यथ |
| उ० पु० | एष्यामि | एष्याव | एष्याम |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इयात् | इयास्ताम् | इयासु |
| म० पु० | इया | इयास्तम् | इयास्त |
| उ० पु० | इयासम् | इयास्व | इयास्म |

---

१ इणो गा लुङि ।२।४।४५। अर्थात् लुङ् लकार मे इण् के स्थान मे गा हो जाता है ।

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऐष्यत् | ऐष्यताम् | ऐष्यन् |
| म० पु० | ऐष्य | ऐष्यतम् | ऐष्यत |
| उ० पु० | ऐष्यम् | ऐष्याव | ऐष्याम |

## उभयपदी ब्रू—बोलना

### परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रवीति | ब्रूत | ब्रुवन्ति |
| | आह | आहतु | आहु |
| म० पु० | ब्रवीषि | ब्रूथ | ब्रूथ |
| | आत्थ | आहथु | |
| उ० पु० | ब्रवीमि | ब्रूव | ब्रूम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रवीतु, ब्रूतात् | ब्रूताम् | ब्रुवन्तु |
| म० पु० | ब्रूहि, ब्रूतात् | ब्रूतम् | ब्रूत |
| उ० पु० | ब्रवाणि | ब्रवाव | ब्रवाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रूयात् | ब्रूयाताम् | ब्रूयु |
| म० पु० | ब्रूया | ब्रूयातम् | ब्रूयात |
| उ० पु० | ब्रूयाम् | ब्रूयाव | ब्रूयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अब्रवीत | अब्रूताम् | अब्रूवन् |
| म० पु० | अब्रवी | अब्रूतम् | अब्रूत |
| उ० पु० | अब्रवम | अब्रूव | अब्रूम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | उवाच[1] | ऊचतु | ऊचु |
| म० पु० | उवचिथ, उवक्थ | ऊचथु | ऊच |
| उ० पु० | उवच, उवाच | ऊचिव | ऊचिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवोचत् | अवोचताम् | अवोचन् |
| म० पु० | अवोच | अवोचतम् | अवोचत |
| उ० पु० | अवोचम् | अवोचाव | अवोचाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वक्ता | वक्तारौ | वक्तार |
| म० पु० | वक्तासि | वक्तास्थ | वक्तास्थ |
| उ० पु० | वक्तास्मि | वक्तास्व | वक्तास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वक्ष्यति | वक्ष्यत | वक्ष्यन्ति |
| म० पु० | वक्ष्यसि | वक्ष्यथ | वक्ष्यथ |
| उ० पु० | वक्ष्यामि | वक्ष्याव | वक्ष्याम |

### आशीर्लिङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | उच्यात् | उच्यास्ताम् | उच्यासु |
| म० पु० | उच्या | उच्यास्तम् | उच्यास्त |
| उ० पु० | उच्यासम् | उच्यास्व | उच्यास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवक्ष्यत् | अवक्ष्यताम् | अवक्ष्यन् |
| म० पु० | अवक्ष्य | अवक्ष्यतम् | अवक्ष्यत |
| उ० पु० | अवक्ष्यम् | अवक्ष्याव | अवक्ष्याम |

---

१ ब्रुवो वचि ।२।४।५३। अर्थात् लिट् इत्यादि आर्धधातुक प्रत्यय मे ब्रू के स्थान मे वच् हो जाता है।

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रूते | ब्रुवाते | ब्रुवते |
| म० पु० | ब्रूषे | ब्रूवाथे | ब्रूध्वे |
| उ० पु० | ब्रुवे | ब्रूवहे | ब्रूमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रूताम् | ब्रूवाताम् | ब्रूवताम् |
| म० पु० | ब्रूष्व | ब्रूवाथाम् | ब्रूध्वम् |
| उ० पु० | ब्रूवै | ब्रवावहै | ब्रवामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ब्रुवीत | ब्रुवीयास्ताम् | ब्रुवीरन् |
| म० पु० | ब्रुवीथा | ब्रुवीयाथाम् | ब्रुवीध्वम् |
| उ० पु० | ब्रुवीय | ब्रुवीवहि | ब्रुवीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अब्रूत | अब्रूवाताम् | अब्रूवत |
| म० पु० | अब्रूथा | अब्रूवाथाम् | अब्रूध्वम् |
| उ० पु० | अब्रुवि | अब्रूवहि | अब्रूमहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऊचे | ऊचाते | ऊचिरे |
| म० पु० | ऊचिषे | ऊचाथे | ऊचिध्वे |
| उ० पु० | ऊचे | ऊचिवहे | ऊचिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवोचत | अवोचेताम् | अवोचन्त |
| म० पु० | अवोचथा | अवोचेथाम् | अवोचध्वम् |
| उ० पु० | अवोचे | अवोचावहि | अवोचामहि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु | वक्ता | वक्तारौ | वक्तार |
| म० पु० | वक्तासे | वक्तासाथे | वक्ताध्वे |
| उ० पु० | वक्ताहे | वक्तास्वहे | वक्तास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वक्ष्यते | वक्ष्येते | वक्ष्यन्ते |
| म० पु० | वक्ष्यसे | वक्ष्येथे | वक्ष्यध्वे |
| उ० पु० | वक्ष्ये | वक्ष्यावहे | वक्ष्यामहे |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वक्षीष्ट | वक्षीयास्ताम् | वक्षीरन् |
| म० पु० | वक्षीष्ठा | वक्ष्यीयास्थाम् | वक्षीघ्वम् |
| उ० पु० | वक्षीय | वक्षीवहि | वक्षीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवक्ष्यत | अवक्ष्येताम् | अवक्ष्यन्त |
| म० पु० | अवक्ष्यथा | अवक्ष्येथाम् | अवक्ष्यध्वम् |
| उ० पु० | अवक्ष्ये | अवक्ष्यावहि | अवक्ष्यामहि |

## परस्मैपदी या—जाना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | याति | यात | यान्ति |
| म० पु० | यासि | याथ | याथ |
| उ० पु० | यामि | याव | याम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यातु, यातात् | याताम् | यान्तु |
| म० पु० | याहि, यातात् | यातम् | यात |
| उ० पु० | यानि | याव | याम |

**विधिलिङ्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यायात् | यायाताम् | यायु |
| म० पु० | याया | यायातम् | यायात |
| उ० पु० | यायाम् | यायाव | यायाम |

**अनद्यतनभूत—लङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अयात् | अयाताम् | अयु |
| म० पु० | अया | अयातम् | अयात् |
| उ० पु० | अयाम् | अयाव | अयाम |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ययौ | ययतु | ययु |
| म० पु० | ययिथ, ययाथ | ययथु | यय |
| उ० पु० | ययौ | ययिव | ययिम |

**सामान्यभूत—लुङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अयासीत् | अयासिष्टाम् | अयासिषु |
| म० पु० | अयासी | अयासिष्टम् | अयासिष्ट |
| उ० पु० | अयासिषम् | अयासिष्व | अयासिष्म |

**अनद्यतनभविष्य—लुट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | याता | यातारौ | यातार |
| म० पु० | यातासि | यातास्थ | यातास्थ |
| उ० पु० | यातास्मि | यातास्व | यातास्म |

**सामान्यभविष्य—लृट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यास्यति | यास्यत | यास्यन्ति |
| म० पु० | यास्यसि | यास्यथ | यास्यथ |
| उ० पु० | यास्यामि | यास्याव | यास्याम |

### आशीर्लिङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | यातात् | यायास्ताम् | यायासु |
| म० पु० | याया | यायास्तम् | यायास्त |
| उ० पु० | यायासम् | यायास्व | यायास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अयास्यत् | अयास्यताम् | अयास्यन् |
| म० पु० | अयास्य | अयास्यतम् | अयास्यत |
| उ० पु० | अयास्यम् | अयास्याव | अयास्याम |

ख्या (कहना), या (पालना), भा (चमकना), मा (नापना), रा (देना), ला (लेना), वा (बहना) के रूप 'या' के समान होते है।

## परस्मैपदी रुद्—रोना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोदिति | रुदित | रुदन्ति |
| म० पु० | रोदिषि | रुदिथ | रुदिथ |
| उ० पु० | रोदिमि | रुदिव | रुदिम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोदितु, रुदितात् | रुदिताम् | रुदन्तु |
| म० पु० | रुदिहि | [illegible] | रुदित |
| उ० पु० | रोदानि | रोदाव | रोदाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुद्यात् | रुद्याताम् | रुद्यु |
| म० पु० | रुद्या | रुद्यातम् | रुद्यात |
| उ० पु० | रुद्याम् | रुद्याव | रुद्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरोदीत्, अरोदत् | अरुदिताम् | अरुदन् |
| म० पु० | अरोदी, अरोद | अरुदितम् | अरुदित |
| उ० पु० | अरोदम् | अरुदिव | अरुदिम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुरोद | रुरुदतु | रुरुदु |
| म० पु० | रुरोदिथ | रुरुदथु | रुरुद |
| उ० पु० | रुरोद | रुरुदिव | रुरुदिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरुदत्<br>अरोदीत् | अरुदताम्<br>अरोदिष्टाम् | अरुदन्<br>अरोदिषु |
| म० पु० | अरुद<br>अरोदी | अरुदतम्<br>अरोदिष्टम् | अरुदत<br>अरोदिष्ट |
| उ० पु० | अरुदम्<br>अरोदिषम् | अरुदाव<br>अरोदिष्व | अरुदाम<br>अरोदिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोदिता | रोदितारौ | रोदितार |
| म० पु० | रोदितासि | रोदितास्थ | रोदितास्थ |
| उ० पु० | रोदितास्मि | रोदितास्व | रोदितास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोदिष्यति | रोदिष्यत | रोदिष्यन्ति |
| म० पु० | रोदिष्यसि | रोदिष्यथ | रोदिष्यथ |
| उ० पु० | रोदिष्यामि | रोदिष्याव | रोदिष्याम |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुद्यात् | रुद्यास्ताम् | रुद्यासु |
| म० पु० | रुद्या | रुद्यास्तम् | रुद्यास्त |
| उ० पु० | रुद्यासम् | रुद्यास्व | रुद्यास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरोदिष्यत् | अरोदिष्यताम् | अरोदिष्यन् |
| म० पु० | अरोदिष्य | अरोदिष्यतम् | अरोदिष्यत |
| उ० पु० | अरोदिष्यम् | अरोदिष्याव | अरोदिष्याम |

## परस्मैपदी शास्—शासन करना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शास्ति | शिष्ट | शासति |
| म० पु० | शास्सि | शिष्ट | शिष्ट |
| उ० पु० | शास्मि | शिष्व | शिष्म |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शास्तु | शिष्टाम् | शासतु |
| म० पु० | शाधि | शिष्टम् | शिष्ट |
| उ० पु० | शासानि | शासाव | शासाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शिष्यात् | शिष्याताम् | शिष्यु |
| म० पु० | शिष्या | शिष्यातम् | शिष्यात |
| उ० पु० | शिष्याम् | शिष्याव | शिष्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशात् | अशिष्टाम् | अशासु |
| म० पु० | अशा , अशात् | अशिष्टम् | अशिष्ट |
| उ० पु० | अशासम् | अशिष्व | अशिष्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शशास | शशासतु | शशासु |
| म० पु० | शशासिथ | शशासथु | शशास |
| उ० पु० | शशास | शशासिव | शशासिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशिषत् | अशिषताम् | अशिषन् |
| म० पु० | अशिष | अशिषतम् | अशिषत |
| उ० पु० | अशिषम् | अशिषाव | अशिषाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शासिता | शासितारौ | शासितार |
| म० पु० | शासितासि | शासितास्थ | शासितास्थ |
| उ० पु० | शासितास्मि | शासितास्व | शासितास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शासिष्यति | शासिष्यत | शासिष्यन्ति |
| म० पु० | शासिष्यसि | शासिष्यथ | शासिष्यथ |
| उ० पु० | शासिष्यामि | शासिष्याव | शासिष्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शिष्यात् | शिष्यास्ताम् | शिष्यासु |
| म० पु० | शिष्या | शिष्यास्तम् | शिष्यास्त |
| उ० पु० | शिष्यासम् | शिष्यास्व | शिष्यास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशासिष्यत् | अशासिष्यताम् | अशासिष्यन् |
| म० पु० | अशासिष्य | अशासिष्यतम् | अशासिष्यत |
| उ० पु० | अशासिष्यम् | अशासिष्याव | अशासिष्याम |

## आत्मनेपदी शी—लेटना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शेते | शयाते | शरत |
| म० पु० | शेषे | शयाथे | शेध्वे |
| उ० पु० | शेये | शेवहे | शेमहे |

**आज्ञा—लोट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शेताम् | शयाताम् | शेरताम् |
| म० पु० | शेष्व | शयाथाम् | शेध्वम् |
| उ० पु० | शयै | शयावहै | शयामहै |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शयीत | शयीयाताम् | शयीरन् |
| म० पु० | शयीथा | शयीयाथाम् | शयीध्वम् |
| उ० पु० | शयीय | शयीवहि | शयीमहि |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशेत | अशयाताम् | अशेरत |
| म० पु० | अशेथा | अशयाथाम् | अशध्वम् |
| उ० पु० | अशयि | अशेवहि | अशेमहि |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शिश्ये | शिश्याते | शिश्यिरे |
| म० पु० | शिश्यिषे | शिश्याथे | शिश्यिध्वे-ढ्वे |
| उ० पु० | शिश्ये | शिश्यिवहे | शिश्यिमहे |

**सामान्यभूत—लुङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशयिष्ट | अशयिषाताम् | अशयिषत |
| म० पु० | अशयिष्ठा | अशयिषाथाम् | अशयिढ्वम्-ध्वम् |
| उ० पु० | अशयिषि | अशयिष्वहि | अशयिष्महि |

**अनद्यतनभविष्य—लुट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शयिता | शयितारौ | शयितार |
| म० पु० | शयितासे | शयितासाथे | शयिताध्वे |
| उ० पु० | शयिताहे | शयितास्वहे | शयितास्महे |

**सामान्यभविष्य—लृट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शयिष्यते | शयिष्येते | शयिष्यन्ते |
| म० पु० | शयिष्यसे | शयिष्येथे | शयिष्यध्वे |
| उ० पु० | शयिष्ये | शयिष्यावहे | शयिष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शयिषीष्ट | शयिषीयास्ताम् | शयिषीरन् |
| म० पु० | शयिषीष्ठा | शयिषीयास्थाम् | शयिषीढ्वम्-ध्वम् |
| उ० पु० | शयिषीय | शयिषीवहि | शयिषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशयिष्यत | अशयिष्येताम् | अशयिष्यन्त |
| म० पु० | अशयिष्यथा | अशयिष्येथाम् | अशयिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अशयिष्ये | अशयिष्यावहि | अशयिष्यामहि |

## परस्मैपदी स्ना—नहाना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नाति | स्नात | स्नान्ति |
| म० पु० | स्नासि | स्नाथ | स्नाथ |
| उ० पु० | स्नामि | स्नाव | स्नाम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नातु, स्नातात् | स्नाताम् | स्नान्तु |
| म० पु० | स्नाहि, स्नातात् | स्नातम् | स्नात |
| उ० पु० | स्नानि | स्नाव | स्नाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नायात् | स्नायाताम् | स्नायु |
| म० पु० | स्नाया | स्नायातम् | स्नायात |
| उ० पु० | स्नायाम् | स्नायाव | स्नायाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्नात् | अस्नाताम् | अस्नु, अस्नान् |
| म० पु० | अस्ना | अस्नातम् | अस्नात |
| उ० पु० | अस्नाम् | अस्नाव | अस्नाम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सस्नौ | सस्नतु | सस्नु |
| म० पु० | सस्निथ, सस्नाथ | सस्नथु | सस्न |
| उ० पु० | सस्नौ | सस्निव | सस्निम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्नासीत् | अस्नासिष्टाम् | अस्नासिषु |
| म० पु० | अस्नासी | अस्नासिष्टम् | अस्नासिष्ट |
| उ० पु० | अस्नासिषम् | अस्नासिष्व | अस्नासिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नाता | स्नातारौ | स्नातार |
| म० पु० | स्नातासि | स्नातास्थ | स्नातास्थ |
| उ० पु० | स्नातास्मि | स्नातास्व | स्नातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नास्यति | स्नास्यत | स्नास्यन्ति |
| म० पु० | स्नास्यसि | स्नास्यथ | स्नास्यथ |
| उ० पु० | स्नास्यामि | स्नास्याव | स्नास्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नायात् | स्नायास्ताम् | स्नायासु |
| म० पु० | स्नाया | स्नायास्तम् | स्नायास्त |
| उ० पु० | स्नायासम् | स्नायास्व | स्नायास्म |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्नेयात् | स्नेयास्ताम् | स्नेयासु |
| म० पु० | स्नेया | स्नेयास्तम् | स्नेयास्त |
| उ० पु० | स्नेयासम् | स्नेयास्व | स्नेयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्नास्यत् | अस्नास्यताम् | अस्नास्यन् |
| म० पु० | अस्नास्य | अस्नास्यतम् | अस्नास्यत |
| उ० पु० | अस्नास्यम् | अस्नास्याव | अस्नास्याम |

# परस्मैपदी स्वप्—सोना

## वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्वपिति | स्वपित | स्वपन्ति |
| म० पु० | स्वपिषि | स्वपिथ | स्वपिथ |
| उ० पु० | स्वपिमि | स्वपिव | स्वपिम |

## आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्वपितु, स्वपितात् | स्वपिताम् | स्वपन्तु |
| म० पु० | स्वपिहि, स्वपितात् | स्वपितम् | स्वपित |
| उ० पु० | स्वपानि | स्वपाव | स्वपाम |

## विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | स्वप्यात् | स्वप्याताम् | स्वप्यु |
| म० पु० | स्वप्या | स्वप्यातम् | स्वप्यात |
| उ० पु० | स्वप्याम् | स्वप्याव | स्वप्याम |

## अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | { अस्वपीत्<br>अस्वपत् | अस्वपिताम् | अस्वपन् |
| म० पु० | { अस्वपी<br>अस्वप | अस्वपितम् | अस्वपित |
| उ० पु० | अस्वपम् | अस्वपिव | अस्वपिम |

## परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | सुष्वाप | सुषुपतु | सुषुपु |
| म० पु० | सुष्वपिथ, सुष्वप्थ | सुषुपथु | सुषुप |
| उ० पु० | सुष्वाप, सुष्वप | सुषुपिव | सुषुपिम |

## सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अस्वाप्सीत् | अस्वाप्ताम् | अस्वाप्सु |
| म० पु० | अस्वाप्सी | अस्वाप्तम् | अस्वाप्त |
| उ० पु० | अस्वाप्सम् | अस्वाप्स्व | अस्वाप्स्म |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | स्वप्ता |
| लृट् | ,, | ,, | स्वप्स्यति |
| आशीर्लिङ् | ,, | ,, | सुप्यात् |
| लृङ् | ,, | ,, | अस्वप्स्यत् |

## परस्मैपदी श्वस्—साँस लेना

| | | | |
|---|---|---|---|
| लट् | प्र० पु० | एकवचन | श्वसिति |
| लोट् | ,, | ,, | श्वसितु |
| विधि० | ,, | ,, | श्वस्यात् |
| लङ् | ,, | ,, | अश्वसीत्, अश्वसत् |
| लिट् | ,, | ,, | शश्वास |
| लुङ् | ,, | ,, | अश्वसीत् |
| लुट् | ,, | ,, | श्वसिता |
| लृट् | ,, | ,, | श्वसिष्यति |
| आशीर्लिङ् | ,, | ,, | श्वस्यात् |
| लृङ् | ,, | ,, | अश्वसिष्यत् |

श्वस् के रूप स्वप् के समान होते हैं।

## परस्मैपदी हन्—मार डालना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हन्ति | हत | घ्नन्ति |
| म० पु० | हसि | हथ | हथ |
| उ० पु० | हन्मि | हन्व | हन्म |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हन्तु, हतात् | हताम् | घ्नन्तु |
| म० पु० | जहि, हतात् | हतम् | हत |
| उ० पु० | हनानि | हनाव | हनाम |

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हन्यात् | हन्याताम् | हन्यु |
| म० पु० | हन्या | हन्यातम् | हन्यात |
| उ० पु० | हन्याम् | हन्याव | हन्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अहन् | अहताम् | अघ्नन् |
| म० पु० | अहन् | अहतम् | अहत |
| उ० पु० | अहनम् | अहन्व | अहन्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जघान | जघ्नतु | जघ्नु |
| म० पु० | जघनिथ, जघन्थ | जघ्नथु | जघ्न |
| उ० पु० | जघान, जघन | जघ्निव | जघ्निम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवधीत् | अवधिष्टाम् | अवधिषु |
| म० पु० | अवधी | अवधिष्टाम् | अवधिष्ट |
| उ० पु० | अवधिषम् | अवधिष्व | अवधिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हन्ता | हन्तारौ | हन्तार |
| म० पु० | हन्तासि | हन्तास्थ | हन्तास्थ |
| उ० पु० | हन्तास्मि | हन्तास्व | हन्तास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हनिष्यति | हनिष्यत | हनिष्यन्ति |
| म० पु० | हनिष्यसि | हनिष्यथ | हनिष्यथ |
| उ० पु० | हनिष्यामि | हनिष्याव | हनिष्याम |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वध्यात् | वध्यास्ताम् | वध्यासु |
| म० पु० | वध्या | वध्यास्तम् | वध्यास्त |
| उ० पु० | वध्यासम् | वध्यास्व | वध्यास्म |

**क्रियातिपत्ति—लृङ्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अहनिष्यत् | अहनिष्यताम् | अहनिष्यन् |
| म० पु० | अहनिष्य | अहनिष्यतम् | अहनिष्यत |
| उ० पु० | अहनिष्यम् | अहनिष्याव | अहनिष्याम |

## (३) जुहोत्यादिगण[1]

**१४३**—इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है और उसके रूप **जुहोति**, जुहुत , जुह्वति आदि होते हैं, इसलिए इस गण का नाम जुहोत्यादि-गण पड़ा। इस गण मे २४ धातुएँ हैं। इनके उपरान्त प्रत्यय जोड़ते समय धातु और प्रत्यय के बीच मे कुछ नही लाया जाता, केवल धातु का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास करने के नियम ऊपर नियम १३६ के अन्तर्गत नोट न० १, पृ० ३१० पर दिए गए है।

इस गण मे वर्तमान प्रथम पुरुष के बहुवचन मे 'अन्ति' के स्थान पर 'अति' तथा अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष के बहुवचन मे 'अन्' के स्थान पर 'उस्' होता है। इस 'उस्' प्रत्यय के पूर्व धातु का अन्तिम 'आ' लोप कर दिया जाता है और अन्तिम इ, उ, ऋ को गुण (७) प्राप्त होता है।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओ के रूप दिए जाते हैं—

## उभयपदी दा—देना

परस्मैपद

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददाति | दत्त | ददति |
| म० पु० | ददासि | दत्थ | दत्थ |
| उ० पु० | ददामि | दद्व | दद्म |

---

१ जुहोत्यादिभ्य श्लु ।२।४।७५। जुहोत्यादिगण की धातुओ के बाद शप् का 'श्लु' हो जाता है। श्लु दूसरे शब्दो के लुक् या लुप् का ही पर्याय है, केवल "श्लौ" ।६।१।१०। इस सूत्र के अनुसार 'श्लु' के कारण धातु का द्वित्व हो जाता है।

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददातु, दत्तात् | दत्ताम् | ददतु |
| म० पु० | देहि, दत्तात् | दत्तम् | दत्त |
| उ० पु० | ददानि | ददाव | ददाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दद्यात् | दद्याताम् | दद्यु |
| म० पु० | दद्या | दद्यातम् | दद्यात |
| उ० पु० | दद्याम् | दद्याव | दद्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अददात् | अदत्ताम् | अददु |
| म० पु० | अददा | अदत्तम् | अदत्त |
| उ० पु० | अददाम् | अदद्व | अदद्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददौ | ददतु | ददु |
| म० पु० | ददिथ, ददाथ | ददथु | दद |
| उ० पु० | ददौ | ददिव | ददिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदात् | अदाताम् | अदु |
| म० पु० | अदा | अदातम् | अदात |
| उ० पु० | अदाम् | अदाव | अदाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दाता | दातारौ | दातार |
| म० पु० | दातासि | दातास्थ | दातास्थ |
| उ० पु० | दातास्मि | दातास्व | दातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दास्यति | दास्यत | दास्यन्ति |
| म० पु० | दास्यसि | दास्यथ | दास्यथ |
| उ० पु० | दास्यामि | दास्याव | दास्याम |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | देयात् | देयास्ताम् | देयासु |
| म० पु० | देया | देयास्तम् | देयास्त |
| उ० पु० | देयासम् | देयास्व | देयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदास्यत् | अदास्यताम् | अदास्यन् |
| म० पु० | अदास्य | अदास्यतम् | अदास्यत |
| उ० पु० | अदास्यम् | अदास्याव | अदास्याम |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दत्ते | ददाते | ददते |
| म० पु० | दत्से | ददाथे | दद्ध्वे |
| उ० पु० | ददे | दद्वहे | दद्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दत्ताम् | ददाम् | ददताम् |
| म० पु० | दत्स्व | ददाथाम् | दद्ध्वम् |
| उ० पु० | ददै | ददावहै | ददामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददीत | ददीयाताम् | ददीरन् |
| म० पु० | ददीथा | ददीयाथाम् | ददीध्वम् |
| उ० पु० | ददीय | ददीवहि | ददीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदत्त | अददाताम् | अददत |
| म० पु० | अदत्था | अददाथाम् | अदद्ध्वम् |
| उ० पु० | अददि | अदद्वहि | अदद्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददे | ददाते | ददिरे |
| म० पु० | ददिषे | ददाथे | ददिध्वे |
| उ० पु० | ददे | ददिवहे | ददिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदित | अदिषाताम् | अदिषत |
| म० पु० | अदिथा | अदिषाथाम् | अदिध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अदिषि | अदिष्वहि | अदिष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दाता | दातारौ | दातार |
| म० पु० | दातासे | दातासाथे | दाताध्वे |
| उ० पु० | दाताहे | दातास्वहे | दातास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दास्यते | दास्येते | दास्यन्ते |
| म० पु० | दास्यसे | दास्येथे | दास्यध्वे |
| उ० पु० | दास्ये | दास्यावहे | दास्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दासीष्ट | दासीयास्ताम् | दासीरन् |
| म० पु० | दासीष्ठा | दासीयास्थाम् | दासीध्वम् |
| उ० पु० | दासीय | दासीवहि | दासीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदास्यत | अदास्येताम् | अदास्यन्त |
| म० पु० | अदास्यथा | अदास्येथाम् | अदास्यध्वम् |
| उ० पु० | अदास्ये | अदास्यावहि | अदास्यामहि |

## उभयपदी धा—धारण करना

परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधाति | धत्त | दधति |
| म० पु० | दधासि | धत्थ | धत्थ |
| उ० पु० | दधामि | दध्व | दध्म |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधातु, धत्तात् | धत्ताम् | दधतु |
| म० पु० | धेहि | धत्तम् | धत्त |
| उ० पु० | दधानि | दधाव | दधाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दध्यात् | दध्याताम् | दध्यु |
| म० पु० | दध्या | दध्यातम् | दध्यात |
| उ० पु० | दध्याम् | दध्याव | दध्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदधात् | अधत्ताम् | अदधु |
| म० पु० | अदधा | अधत्तम् | अधत्त |
| उ० पु० | अदधाम् | अदध्व | अदध्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधौ | दधतु | दधु |
| म० पु० | दधिथ, दधाथ | दधथु | दध |
| उ० पु० | दधौ | दधिव | दधिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधात् | अधाताम् | अधु |
| म० पु० | अधा | अधातम् | अधात |
| उ० पु० | अधाम् | अधाव | अधाम |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धाता | धातारौ | धातार |
| म० पु० | धातासि | धातास्थ | धातास्थ |
| उ० पु० | धातास्मि | धातास्व | धातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धारर्या | धास्यत | धास्यन्ति |
| म० पु० | धास्यरि | धास्यथ | धास्यथ |
| उ० पु० | धास्यामि | धास्याव | धास्यामः |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धेयात् | धेयास्ताम् | धेयासु |
| म० पु० | धेया | धेयास्तम् | धेयास्त |
| उ० पु० | धेयासम् | धेयास्व | धेयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधास्यत | अधास्यताम् | अधास्यन् |
| म० पु० | अधास्य | अधास्यतम् | अधास्यत |
| उ० पु० | अधास्यम् | अधास्याव | अधास्याम |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धत्ते | दधाते | दधते |
| म० पु० | धत्से | दधाथे | धद्ध्वे |
| उ० पु० | दधे | दध्वहे | दध्महे |

### आज्ञा—लोट

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धत्ताम् | दधाताम् | दधताम् |
| म० पु० | धत्स्व | दधाथाम् | धद्ध्वम् |
| उ० पु० | दधै | दधावहै | दधामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधीत | दधीयाताम् | दधीरन् |
| म० पु० | दधीथा | दधीयाथाम् | दधीध्वम् |
| उ० पु० | दधीय | दधीवहि | दधीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधत्त | अदधाताम् | अदधत |
| म० पु० | अधत्था | अदधाथाम् | अधद्ध्वम् |
| उ० पु० | अदधि | अदध्वहि | अदध्महि |

## परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दधे | दधाते | दधिरे |
| म० पु० | दधिषे | दधाथे | दधिध्वे |
| उ० पु० | जदधे | दधिवहे | दधिमहे |

## सामन्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधित | अधिषाताम् | अधिषत |
| म० पु० | अधिथा | अधिषाथाम् | अधिध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अधिषि | अधिष्वहि | अधिष्महि |

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धाता | धातारौ | धातार |
| म० पु० | धातासे | धातासाथे | धाताध्वे |
| उ० पु० | धाताहे | धातास्वहे | धातास्महे |

## सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धास्यते | धास्येते | धास्यन्ते |
| म० पु० | धास्यसे | धास्येथे | धास्यध्वे |
| उ० पु० | धास्ये | धास्यावहे | धास्यामहे |

## आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | धासीष्ट | धासीयास्ताम् | धासीरन् |
| म० पु० | धासीष्ठा | धासीयास्थाम् | धासीध्वम् |
| उ० पु० | धासीय | धासीवहि | धासीमहि |

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अधास्यत | अधास्येताम् | अधास्यन्त |
| म० पु० | अधास्यथा | अधास्येथाम् | अधास्यध्वम् |
| उ० पु० | अधास्ये | अधास्यावहि | अधास्यामहि |

## परस्मैपदी भी—डरना

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बिभेति | बिभित, बिभीत | बिभ्यति |
| म० पु० | बिभेषि | बिभिथ, बिभीथ | बिभिथ, बिभीथ |
| उ० पु० | बिभेमि | बिभिव, बिभीव | बिभिम, बिभीम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बिभेतु<br>बिभितात्, बिभीतात् | बिभिताम्<br>बिभीताम् | बिभ्यतु |
| म० पु० | बिभिहि, बिभीहि<br>बिभितात्, बिभीतात् | बिभितम्<br>बिभीतम् | बिभित<br>बिभीत |
| उ० पु० | बिभयानि | बिभयाव | बिभयाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बिभियात्<br>बिभीयात् | बिभियाताम्<br>बिभीयाताम् | बिभियु<br>बिभीयु |
| म० पु० | बिभिया<br>बिभीया | बिभियातम्<br>बिभीयातम् | बिभियात<br>बिभीयात |
| उ० पु० | बिभियाम्<br>बिभीयाम् | बिभियाव<br>बिभीयाव | बिभियाम<br>बिभीयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अबिभेत् | अबिभिताम्<br>अबिभीताम् | अबिभयु |
| म० पु० | अबिभे | अबिभितम्<br>अबिभीतम् | अबिभित<br>अबिभीत |
| उ० पु० | अबिभयम् | अबिभिव<br>अबिभीव | अबिभिम<br>अबिभीम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बिभयाञ्चकार | बिभयाञ्चक्रतु | बिभयाञ्चक्रु |
| म० पु० | बिभयाञ्चकर्थ | बिभयाञ्चक्रथु | बिभयाञ्चक्र |
| उ० पु० | बिभयाञ्चकार<br>बिभयाञ्चकर | बिभयाञ्चकृव | बिभयाञ्चकृम |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बिभयाम्बभूव | बिभयाम्बभूवतु | बिभयाम्बभूवु: |
| म० पु० | बिभयाम्बभूविथ | बिभयाम्बभूवथु | बिभयाम्बभूव |
| उ० पु० | बिभयाम्बभूव | बिभयाम्बभूविव | बिभयाम्बभूविम |
| प्र० पु० | बिभयामास | बिभयामासतु | बिभयामासु. |
| म० पु० | बिभयामासिथ | बिभयामासथु | बिभयामास |
| उ० पु० | बिभयामास | बिभयामासिव | बिभयामासिम |

सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभैषीत् | अभैष्टाम् | अभैषु |
| म० पु० | अभैषी | अभैष्टम् | अभैष्ट |
| उ० पु० | अभैषम् | अभैष्व | अभैष्म |

अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भेता | भेतारौ | भेतार: |
| म० पु० | भेतासि | भेतास्थ | भेतास्थ |
| उ० पु० | भेतास्मि | भेतास्व | भेतास्म: |

सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भेष्यति | भेष्यत | भेष्यन्ति |
| म० पु० | भेष्यसि | भेष्यथ | भेष्यथ |
| उ० पु० | भेष्यामि | भेष्याव | भेष्याम |

आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भीयात् | भीयास्ताम् | भीयासु |
| म० पु० | भीया | भीयास्तम् | भीयास्त |
| उ० पु० | भीयासम् | भीयास्व | भीयास्म |

क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभेष्यत् | अभेष्यताम् | अभेष्यन् |
| म० पु० | अभेष्य | अभेष्यतम् | अभेष्यत |
| उ० पु० | अभेष्यम् | अभेष्याव | अभेष्याम |

## परस्मैपदी

### हा—छोड़ना

#### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जहाति | जहित<br>जहीत | जहति |
| म० पु० | जहासि | जहिथ<br>जहीथ | जहिथ<br>जहीथ |
| उ० पु० | जहामि | जहिव<br>जहीव | जहिम<br>जहीमः |

#### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जहातु<br>जहितात्<br>जहीतात् | जहिताम्<br>जहीताम् | जहतु |
| म० पु० | जहाहि<br>जहिहि, जहीहि<br>जहितात्, जहीतात् | जहितम्<br>जहीतम् | जहित<br>जहीत |
| उ० पु० | जहानि | जहाव | जहाम |

#### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जह्यात् | जह्याताम् | जह्युः |
| म० पु० | जह्याः | जह्यातम् | जह्यात |
| उ० पु० | जह्याम् | जह्याव | जह्याम |

#### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजहात् | अजहिताम्<br>अजहीताम् | अजहुः |
| म० पु० | अजहः | अजहितम्<br>अजहीतम् | अजहित<br>अजहीत |
| उ० पु० | अजहाम् | अजहिव<br>अजहीव | अजहिम<br>अजहीम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जहौ | जहतु | जहु |
| म० पु० | जहिथ, जहाथ | जहथु | जह |
| उ० पु० | जहौ | जहिव | जहिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अहासीत् | अहासिष्टाम् | अहासिषु |
| म० पु० | अहासी | अहासिष्टाम् | अहासिष्ट |
| उ० पु० | अहासिषम् | अहासिष्व | अहासिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हाता | हातारौ | हातार |
| म० पु० | हातासि | हातास्थ | हातास्थ |
| उ० पु० | हातास्मि | हातास्व | हातास्म |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हास्यति | हास्यत | हास्यन्ति |
| म० पु० | हास्यसि | हास्यथ | हास्यथ |
| उ० पु० | हास्यामि | हास्याव | हास्याम |

### आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | हेयात् | हेयास्ताम् | हेयासु |
| म० पु० | हेया | हेयास्तम् | हेयास्त |
| उ० पु० | हेयासम् | हेयास्व | हेयास्म |

### क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अहास्यत् | अहास्यताम् | अहास्यन् |
| म० पु० | अहास्य | अहास्यतम् | अहास्यत |
| उ० पु० | अहास्यम् | अहास्याव | अहास्याम |

## (४) दिवादिगण

**१४४**—इस गण की प्रथम धातु दिव् (जुवा खेलना आदि) है, इस कारण इसका नाम दिवादिगण है। इसमे १४० धातुएँ हैं। इस गण की धातुओ और प्रत्ययो के बीच मे श्यन्[1] (य) जोडा जाता है, जैसे—मन् धातु से मन्+य+ते=मन्यते, कुप्+य=ति+कुप्यति।

१ दिवादिभ्य श्यन् ।३।१।६९।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिखाए जाते हैं—

## परस्मैपदी दिव्—जुआ खेलना, चमकना आदि

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीव्यति | दीव्यतः | दीव्यन्ति |
| म० पु० | दीव्यसि | दीव्यथः | दीव्यथ |
| उ० पु० | दीव्यामि | दीव्यावः | दीव्यामः |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीव्यतु, दीव्यतात् | दीव्यताम् | दीव्यन्तु |
| म० पु० | दीव्य, दीव्यतात् | दीव्यतम् | दीव्यत |
| उ० पु० | दीव्यानि | दीव्याव | दीव्याम |

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीव्येत् | दीव्येताम् | दीव्येयुः |
| म० पु० | दीव्येः | दीव्येतम् | दीव्येत |
| उ० पु० | दीव्येयम् | दीव्येव | दीव्येम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदीव्यत् | अदीव्यताम् | अदीव्यन् |
| म० पु० | अदीव्यः | अदीव्यतम् | अदीव्यत |
| उ० पु० | अदीव्यम् | अदीव्याव | अदीव्याम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दिदेव | दिदिवतुः | दिदिवुः |
| म० पु० | दिदेविथ | दिदिवथुः | दिदिव |
| उ० पु० | दिदेव | दिदिविव | दिदिविम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदेवीत् | अदेविष्टाम् | अदेविषुः |
| म० पु० | अदेवीः | अदेविष्टम् | अदेविष्ट |
| उ० पु० | अदेविषम् | अदेविष्व | अदेविष्म |
| लुट् | देविता | देवितारौ | देवितारः |
| लृट् | देविष्यति | देविष्यतः | देविष्यन्ति |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| आशी० | दीव्यात् | दीव्यास्ताम् | दीव्यासु |
| लृङ | अदेविष्यत् | अदेविष्यताम् | अदेविष्यन् |

## आत्मनेपदी जन्—पैदा होना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जायते | जायेते | जायन्ते |
| म० पु० | जायसे | जायेथे | जायध्वे |
| उ० पु० | जाये | जायावहे | जायामहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जायताम् | जायेताम् | जायन्ताम् |
| म० पु० | जायस्व | जायेथाम् | जायध्वम् |
| उ० पु० | जायै | जायावहै | जायामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जायेत | जायेयाताम् | जायेरन् |
| म० पु० | जायेथा | जायेयाथाम् | जायेध्वम् |
| उ० पु० | जायेय | जायेवहि | जायेमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजायत | अजायेताम् | अजायन्त |
| म० पु० | अजायथा | अजायेथाम् | अजायध्वम् |
| उ० पु० | अजाये | अजायावहि | अजायामहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जज्ञे | जज्ञाते | जज्ञिरे |
| म० पु० | जज्ञिषे | जज्ञाथे | जज्ञिढ्वे-ध्वे |
| उ० पु० | जज्ञे | जज्ञिवहे | जज्ञिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजनि, अजनिष्ट | अजनिषाताम् | अजनिषत |
| म० पु० | अजनिष्ठा | अजनिषाथाम् | अजनिढ्वम्-ध्वम् |
| उ० पु० | अजनिषि | अजनिष्वहि | अजनिष्महि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लुट् | जनिता | जनितारौ | जनितार |
| लृट् | जनिष्यते | जनिष्येते | जनिष्यन्ते |
| आशी० | जनिषीष्ट | जनिषीयास्ताम् | जनिषीरन् |
| लृङ | अजनिष्यत | अजनिष्येताम् | अजनिष्यन्त |

## परस्मैपदी कुप्—कोप करना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुप्यति | कुप्यत | कुप्यन्ति |
| म० पु० | कुप्यसि | कुप्यथ | कुप्यथ |
| उ० पु० | कुप्यामि | कुप्याव | कुप्याम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुप्यतु | कुप्यताम् | कुप्यन्तु |
| म० पु० | कुप्य | कुप्यतम् | कुप्यत |
| उ० पु० | कुप्यानि | कुप्याव | कुप्याम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुप्येत् | कुप्येताम् | कुप्येयु |
| म० पु० | कुप्ये | कुप्येतम् | कुप्येत |
| उ० पु० | कुप्येयम् | कुप्येव | कुप्येम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकुप्यत् | अकुप्यताम् | अकुप्यन् |
| म० पु० | अकुप्य | अकुप्यतम् | अकुप्यत |
| उ० पु० | अकुप्यम् | अकुप्याव | अकुप्याम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चुकोप | चुकुपतु | चुकुपु |
| म० पु० | चुकोपिथ | चुकुपथु | चुकुप |
| उ० पु० | चुकोप | चुकुपिव | चुकुपिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकुपत् | अकुपताम् | अकुपन् |
| म० पु० | अकुप | अकुपताम् | अकुपत |
| उ० पु० | अकुपम् | अकुपाव | अकुपाम |
| लुट् | कोपिता | कोपितारौ | कोपितार |
| लट् | कोपिष्यति | कोपिष्यत | कोपिष्यन्ति |
| आशी० | कुप्यात् | कुप्यास्ताम् | कुप्यासु |
| लङ | अकोपिष्यत् | अकोपिष्यताम् | अकोपिष्यन् |

## आत्मनेपदी विद्—होना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | विद्यते | विद्येते | विद्यन्ते |
| म० पु० | विद्यसे | विद्येथे | विद्यध्वे |
| उ० पु० | विद्ये | विद्यावहे | विद्यामहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | विद्यताम् | विद्येताम् | विद्यन्ताम् |
| म० पु० | विद्यस्व | विद्येथाम् | विद्यध्वम् |
| उ० पु० | विद्यै | विद्यावहै | विद्यामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | विद्येत | विद्येयाताम् | विद्येरन् |
| म० पु० | विद्येथा | विद्येयाथाम् | विद्येध्वम् |
| उ० पु० | विद्येय | विद्येवहि | विद्येमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अविद्यत | अविद्येताम् | अविद्यन्त |
| म० पु० | अविद्यथा | अविद्येथाम् | अविद्यध्वम् |
| उ० पु० | अविद्ये | अविद्यावहि | अविद्यामहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | विविदे | विविदाते | विविदिरे |
| म० पु० | विविदिषे | विविदाथे | विविदिध्वे |
| उ० पु० | विविदे | विविदिवहे | विविदिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवित्त | अवित्साताम् | अवित्सत |
| म० पु० | अवित्था | अवित्साथाम् | अविद्ध्वम्, द्ध्वम् |
| उ० पु० | अवित्सि | अवित्स्वहि | अवित्स्महि |
| लुट् | वेत्ता | वेत्तारौ | वेत्तार |
| लृट् | वेत्स्यते | वेत्स्येते | वेत्स्यन्ते |
| आशी० | वित्सीष्ट | वित्सीयास्ताम् | वित्सीरन् |
| लृट् | अवेत्स्यत | अवेत्स्येताम् | अवेत्स्यन्त |

१४५—नीचे कुछ मुख्य-मुख्य धातुओ की सूची दी जाती है।

क्रम्[1] (प०)—जाना। लट्—क्राम्यति। लङ—अक्राम्यत्। लुट्—क्रमिता। लृट्—क्रमिष्यति। विधि०—क्राम्येत। आशी०—क्रम्यात्। लृङ—अक्रमिष्यत्।

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चक्राम | चक्रमतु | चक्रमु |
| म० पु० | चक्रमिथ | चक्रमथु | चक्रम |
| उ० पु० | चक्राम, चक्रम | चक्रमिव | चक्रमिम |

---

१ इस धातु से सार्वधातुको मे विकल्प से श्यन् प्रत्यय जुडता है। अत वह इन्ही मे विकल्प से दिवादिगणी होती है, अन्यथा यह भ्वादिगणी है और इसके रूप क्रामति, क्रामतु, क्रामेत्, अक्रामत् इत्यादि होते हैं। यह धातु आत्मनेपदी भी है और आत्मनेपदी होने पर यह सेट् नही होती। तब इसके रूप क्रमते, क्रमताम्, क्रमेत, क्रसीष्ट, अक्रमत, चक्रमे, अक्रस्त, क्रन्ता, क्रस्यते, अक्रस्यत इत्यादि होते हैं।

**सामान्यभूत--लुङ**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रमीत् | अक्रमिष्टाम् | अक्रमिषु |
| म० पु० | अक्रमी | अक्रमिष्टम् | अक्रमिष्ट |
| उ० पु० | अक्रमिषम् | अक्रमिष्व | अक्रमिष्म |

क्रुध् (प०)--गुस्सा करना। लट्--क्रुध्यति। लिट्--चुक्रोध। लुङ--अक्रुधत्। लुट्--क्रोद्धा। लृट्--क्रोत्स्यति। आशी०--क्रुध्यात्। लृङ--अक्रोत्स्यत्।

क्लिश् (आत्म०)--दु खी होना, क्लेश पाना। लट्--क्लिश्यते। लुङ--अक्लिष्ट। लुट्--क्लेशिता। लृट्--क्लेशिष्यते। आशी०--क्लेशिषीष्ट। लृङ--अक्लेशिष्यत।

**परोक्षभूत--लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिक्लिशे | चिक्लिशाते | चिक्लिशिरे |
| म० पु० | चिक्लिशिषे | चिक्लिशाथे | चिक्लिशिध्वे |
| उ० पु० | चिक्लिशे | चिक्लिशिवहे | चिक्लिशिमहे |

क्षम्[1] (प०)--क्षमा करना। लट्--क्षाम्यति। विधि--क्षाम्येत्। लुट्--क्षमित। अथवा क्षन्ता।

**सामान्यभविष्य--लृट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्षमिष्यति | क्षमिष्यत | क्षमिष्यन्ति |
| म० पु० | क्षमिष्यसि | क्षमिष्यथ | क्षमिष्यथ |
| उ० पु० | क्षमिष्यामि | क्षमिष्याव | क्षमिष्याम |

**अथवा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्षस्यति | क्षस्यत | क्षस्यन्ति |
| म० पु० | क्षस्यसि | क्षस्यथ | क्षस्यथ |
| उ० पु० | क्षस्यामि | क्षस्याव | क्षस्याम |

आशी० क्षम्यात्　　लृङ--अक्षमिष्यत्, अक्षस्यत्।

---

१ यह धातु वेट् है, अत क्षमिता तथा क्षन्ता, क्षमिष्यति तथा क्षस्यति इत्यादि द्विविध रूप होते है।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चक्षाम | चक्षमतु | चक्षमु |
| म० पु० | चक्षमिथ<br>चक्षन्थ | चक्षमथु | चक्षम |
| उ० पु० | चक्षाम<br>चक्षम | चक्षमिव<br>चक्षण्व | चक्षमिम<br>चक्षण्म |

लङ—अक्षाम्यत्। लुङ—अक्षमत्, अक्षमताम्, अक्षमन्।

क्षुध् (प०)—भूखा होना। लट्—क्षुध्यति। लिट्—चुक्षोध। लुङ—अक्षुधत्। लुट्—क्षोद्धा। लृट्—क्षोत्स्यति। आशी०—क्षुध्यात्। लृट्—क्षोत्स्यति। आशी०—क्षुध्यात्। लृङ—अक्षोत्स्यत्।

खिद् (आत्म०)—दुखी होना। लट्—खिद्यते। लिट्—चिखिदे। लुङ—अखैत्सीत्। लुट्—खेत्ता। लृट्—खेत्स्यते। आशी०—खित्सीष्ट। लृङ—अखेत्स्यत्।

तुष् (प०)—प्रसन्न होना। लट्—तुष्यति। लिट्—तुतोष। लुङ—अतुषत्। लुट्—तोष्टा। लृट्—तोक्ष्यति। आशी०—तुष्यात्। लृङ—अतोक्ष्यत्।

दम् (प०)—दमन करना, दबाना। लट्—दाम्यति। लिट्—द[illegible]म। लुङ—अदमत्। लुट्—दमिता। लृट्—दमिष्यति। आशी०—दम्यात्। लङ—अदमिष्यत्।

दुष् (प०)—अशुद्ध होना। लट्—दुष्यति। लिट्—दुदोष। लुङ—अदुषत्। लुट्—दोष्टा। लृट्—दोक्ष्यति। आशी०—दुष्यात्। लृङ—अदोक्ष्यत्।

द्रुह् (प०)—डाह करना। लट्—द्रुह्यति। लुट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा। लृट्—द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति। आशी०—द्रुह्यात्। लृङ—अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत्। लुङ—अद्रुहत्।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दुद्रोह | दुद्रुहतु | दुद्रुहु |
| म० पु० | दुद्रोहिथ / दुद्रोढ / दुद्रोग्ध | दुद्रुहथु | दुद्रुह |
| उ० पु० | दुद्रोह | दुद्रुहिव / दुद्रुह्व | दुद्रुहिम / दुद्रुह्म |

नश् (प०)—नाश हो जाना, न दिखाई पड़ना। लट्—नश्यति। लुट्—नशिता, नष्टा। लृट्—नशिष्यति, नक्ष्यति। आशी०—नश्यात्। लृङ्—अनशिश्यत्, अनक्ष्यत्। लुङ—अनशत्।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ननाश | नेशतु | नेशु |
| म० पु० | नेशिथ / ननष्ठ | नेशथु | नेश |
| उ० पु० | ननाश / ननश | नेशिव / नेश्व | नेशिम / नेश्म |

नृत् (प०)—नाचना। लट्—नृत्यति। लुट्—नर्तिता। लृट्—नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। आशी०—नृत्यात्।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ननर्त | ननृततु | ननृतु |
| म० पु० | ननर्तिथ | ननृतथु | ननृत |
| उ० पु० | ननर्त | ननृतिव | ननृतिम |
| लुङ | अनर्तीत | अनर्तिष्टाम् | अनर्तिषु |

भ्रम्[1] (प०)—भ्रान्त होना। लट्—भ्राम्यति। लुट्—भ्रमिता। लृट्—भ्रमिष्यति। आशी०—भ्रम्यात्।

---

१ 'अनवस्थान' अर्थात् भ्रान्ति अर्थ में यह धातु दिवादिगणी होती है परन्तु विकल्प से शप् भी होता है। शबन्त होने पर इसके भ्रमति, भ्रमत, भ्रमन्ति इत्यादि रूप होते हैं।

भ्रमण करना या घूमना अर्थ होने पर यह धातु भ्वादिगणी होती है और इसके रूप पूर्वोक्त भ्रमति इत्यादि ही होते हैं। वहाँ यह विकल्प से दिवादि भी होती है और तब श्यन् जुड़ने पर भ्राम्यति इत्यादि रूप होते हैं।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बभ्राम | बभ्रमतु, भ्रेमतु | बभ्रमु, भ्रेमु |
| म० पु० | बभ्रमिथ, भ्रेमिथ | बभ्रमथु, भ्रेमथु | बभ्रम, भ्रेम |
| उ० पु० | बभ्राम, बभ्रम | बभ्रमिव, भ्रेमिव | बभ्रमिम, भ्रेमिम |
| लुङ् | अभ्रमत् | अभ्रमताम् | अभ्रमन् |

मन् (आत्म०)—समझना। लट्—मन्यते। लुट्—मन्ता। लृट्—मस्यते। आशी०—मसीष्ट। लिट्—मेने, मेनाते, मेनिरे। लुङ्—अमस्त, अमसाताम्, अमसत। अमस्था, अमसाथाम्, अमन्ध्वम्। अमसि, अमस्वहि, अमस्महि।

युध् (आ०)—संग्राम करना। लट्—युध्यते। लुट्—योद्धा। लृट्—योत्स्यते। आशी०—युत्सीष्ट। लृङ्—अयोत्स्यत। लिट्—युयुधे। लुङ्—अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत।

व्यध् (प०)—बेधना। लट्—विध्यति। लुट्—व्यद्धा। लृट्—व्यत्स्यति आशी०—विध्यात्।

**परोक्षभूत—लिट**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | विव्याध | विविधतु | विविधु |
| म० पु० | विव्यधिथ, विव्यद्ध | विविधथु | विविध |
| उ० पु० | विव्याध, विव्यध | विविधिव | विविधिम |

**सामान्यभूत—लुङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अव्यात्सीत् | अव्याद्धाम् | अव्यात्सु |
| म० पु० | अव्यात्सी | अव्याद्धम् | अव्याद्ध |
| उ० पु० | अव्यात्सम् | अव्यात्स्व | अव्यात्स्म |

शुष् (प०)—सूखना। लट्—शुष्यति। लुट्—शोष्टा। लृट्—शोक्ष्यति। आशी०—शुष्यात्। लिट्—शुशोष। लुङ्—अशुषत्।

सिध् (प०)—सिद्ध होना, कामयाब होना। लट्—सिध्यति। लुट्—सेद्धा। आशी०—सिध्यात्। लिट्—सिषेध। लुङ—असिधत्।

सिव् (प०)—सीना। लट्—सीव्यति। लुट्—सेविता। आशी०—सीव्यात्। लिट्—सिषेव। लुङ—असेवीत्।

हृष् (प०)—हर्षित होना। लट्—हृष्यति। लुट्—हर्षिता। लृट्—हर्षिष्यति। आशी०—हृष्यात्। लिट्—जहर्ष। लुङ—अहृषत्।

## (५) स्वादिगण

१४६—इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, इस कारण इसका नाम स्वादि पडा। इसमे ३५ धातुएँ हैं। धातु[1] और प्रत्यय के बीच मे इस गण मे श्नु (नु) जोडा जाता है। उदाहरणार्थ—सु+नु+ते=सुनुते आदि।

**नोट**—प्रत्यय के व, म से पूर्व विकल्प से नु का उ लुप्त हो जाता है, (जैसे—सु+नु+व =सुनुव, सुन्व, इसी प्रकार, सुनुम सुन्म। किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यजन हो तो उ नही हटाया जाता, (जैसे—साध्+नु+म =साध्नुम)।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओ के रूप दिये जाते हैं।

परस्मैपदी आप्—पाना

**वर्तमान—लट**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आप्नोति | आप्नुत | आप्नुवन्ति |
| म० पु० | आप्नोषि | आप्नुथ | आप्नुथ |
| उ० पु० | आप्नोमि | आप्नुव | आप्नुम |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आप्नोतु | आप्नुताम् | आप्नुवन्तु |
| म० पु० | आप्नुहि | आप्नुतम् | आप्नुत |
| उ० पु० | आप्नवानि | आप्नवाव | आप्नवाम |

१ स्वादिभ्य श्नु ।३।१।७३।

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आप्नुयात् | आप्नुयाताम् | आप्नुयु |
| म० पु० | आप्नुया | आप्नुयातम् | आप्नुयात |
| उ० पु० | आप्नुयाम् | आप्नुयाव | आप्नुयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आप्नोत् | आप्नुताम् | आप्नुवन् |
| म० पु० | आप्नो | आप्नुतम् | आप्नुत |
| उ० पु० | आप्नवम् | आप्नुव | आप्नुम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आप | आपतु | आपु |
| म० पु० | आपिथ | आप‌थु | आप |
| उ० पु० | आप | आपिव | आपिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आपत् | आपताम् | आपन् |
| म० पु० | आप | आपतम् | आपत |
| उ० पु० | आपम् | आपाव | आपाम |
| लुट् | आप्ता | आप्तारौ | आप्तार |
| लृट् | आप्स्यति | आप्स्यत | आप्स्यन्ति |
| आशी० | आप्यात् | आप्यास्ताम् | आप्यासु |
| लृङ् | आप्स्यत् | आप्स्यताम् | आप्स्यन् |

उभयपदी चि—इकट्ठा करना

परस्मैपदी

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिनोति | चिनुत | चिन्वन्ति |
| म० पु० | चिनोषि | चिनुथ | चिनुथ |
| उ० पु० | चिनोमि | चिनुव , चिन्व | चिनुम , चिन्म |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिनोतु, चिनुतात् | चिनुताम् | चिन्वन्तु |
| म० पु० | चिनु, चिनुतात् | चिनुतम् | चिनुत |
| उ० पु० | चिनवानि | चिनवाव | चिनवाम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिनुयात् | चिनुयाताम् | चिनुयु |
| म० पु० | चिनुया | चिनुयातम् | चिनुयात |
| उ० पु० | चिनुयाम् | चिनुयाव | चिनुयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचिनोत् | अचिनुताम् | अचिन्वन् |
| म० पु० | अचिनो | अचिनुतम् | अचिनुत |
| उ० पु० | अचिनवम् | अचिनुव, अचिन्व | अचिनुम, अचिन्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिकाय | चिक्यतु | चिक्यु |
| म० पु० | चिकयिथ, चिकेथ | चिक्यथु | चिक्य |
| उ० पु० | चिकाय, चिकय | चिक्यिव | चिक्यिम |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिचाय | चिच्यतु | चिच्यु |
| म० पु० | चिचयिथ, चिचेय | चिच्यथु | चिच्य |
| उ० पु० | चिचाय, चिचय | चिच्यिव | चिच्यिम |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचैषीत् | अचैष्टाम् | अचैषु |
| म० पु० | अचैषी | अचैष्टम् | अचैष्ट |
| उ० पु० | अचैषम् | अचैष्व | अचैष्म |
| लुङ | चेता | चेतारौ | चेतार |
| लृट् | चेष्यति | चेष्यत | चेष्यन्ति |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| आशी० | चीयात् | चीयास्ताम् | चीयासु |
| लृङ् | अचेष्यत् | अचेष्यताम् | अचेष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिनुते | चिन्वाते | चिन्वते |
| म० पु० | चिनुषे | चिन्वाथे | चिनुध्वे |
| उ० पु० | चिन्वे | चिनुवहे, चिन्वहे | चिनुमहे, चिन्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिनुताम् | चिन्वाताम् | चिन्वताम् |
| म० पु० | चिनुष्व | चिन्वाथाम् | चिनुध्वम् |
| उ० पु० | चिनवै | चिन्वावहै | चिन्वामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिन्वीत | चिन्वीयाताम् | चिन्वीरन् |
| म० पु० | चिन्वीथा | चिन्वीयाथाम् | चिन्वीध्वम् |
| उ० पु० | चिन्वीय | चिन्वीवहि | चिन्वीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचिनुत | अचिन्वाताम् | अचिन्वत |
| म० पु० | अचिनुथा | अचिन्वाथाम् | अचिनुध्वम् |
| उ० पु० | अचिन्वि | अचिनुवहि, अचिन्वहि | अचिनुमहि, अचिन्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिक्ये | चिक्याते | चिक्यिरे |
| म० पु० | चिक्यिषे | चिक्याथे | चिक्यिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | चिक्ये | चिक्यिवहे | चिक्यिमहे |

**अथवा**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिच्ये | चिच्याते | चिच्यिरे |
| म० पु० | चिच्यिषे | चिच्याथे | चिच्यिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | चिच्ये | चिच्यिवहे | चिच्यिमहे |

**सामान्यभूत—लुङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचेष्ट | अचेषाताम् | अचेषत |
| म० पु० | अचेष्ठा | अचेषाथाम् | अचेढ्वम् |
| उ० पु० | अचेषि | अचेष्वहि | अचेष्महि |
| लुट् | चेता | चेतारौ | चेतार |
| लृट् | चेष्यते | चेष्येते | चेष्यन्ते |
| आशी० | चेषीष्ट | चेषीयास्ताम् | चेषीरन् |
| लृङ् | अचेष्यत | अचेष्येताम् | अचेष्यन्त |

उभयपदी वृ[1]—चुनना, वरण करना

परस्मैपद

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृणोति | वृणुत | वृण्वन्ति |
| म० पु० | वृणोषि | वृणुथ | वृणुथ |
| उ० पु० | वृणोमि | वृणुव , वृण्व | वृणुम , वृण्म |

**आज्ञा—लोट**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृणोतु | वृणुताम् | वृण्वन्तु |
| म० पु० | वृणु | वृणुतम् | वृणुत |
| उ० पु० | वृणवानि | वृणवाव | वृणवाम |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृणुयात् | वृणुयाताम् | वृणुयु |
| म० पु० | वृणुया | वृणुयातम् | वृणुयात |
| उ० पु० | वृणुयाम् | वृणुयाच | वृणुयाम |

---

१ यह धातु इसी अर्थ मे क्र्यादिगण मे भी है। वहाँ इसके रूप वृणाति, वृणीते इत्यादि होते हैं।

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवृणोत् | अवृणुताम् | अवृण्वन् |
| म० पु० | अवृणो | अवृणुतम् | अवृणुत |
| उ० पु० | अवृणवम् | अवृणुव, अवृण्व | अवृणुम, अवृण्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ववार | वव्रतु | वव्रु |
| म० पु० | ववरिथ | वव्रथु | वव्र |
| उ० पु० | ववार, ववर | ववृव | ववृम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवारीत् | अवारिष्टाम् | अवारिषु |
| म० पु० | अवारी | अवारिष्टम् | अवारिष्ट |
| उ० पु० | अवारिषम् | अवारिष्व | अवारिष्म |
| लुट् | वरिता, वरीता | वरितारौ, वरीतारौ | वरितार, वरीतार |
| लृट् | वरिष्यति, वरीष्यति | वरिष्यत, वरीष्यत | वरिष्यन्ति, वरीष्यन्ति |
| आशी० | व्रियात | व्रियास्ताम् | विव्रयासु |
| लृङ् | अवरिष्यत्, अवरीष्यत् | अवरिष्यताम्, अवरीष्यताम् | अवरिष्यन्, अवरीष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृणुते | वृण्वाते | वृण्वते |
| म० पु० | वृणुषे | वृण्वाथे | वृणुध्वे |
| उ० पु० | वृण्वे | वृणुवहे, वृण्वहे | वृणुमहे, वृण्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृणुताम् | वृण्वाताम् | वृण्वताम् |
| म० पु० | वृणुष्व | वृण्वाथाम् | वृणुध्वम् |
| उ० पु० | वृणवै | वृण्वावहै | वृण्वामहै |

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वृण्वीत | वृण्वीयाताम् | वृण्वीरन् |
| म० पु० | वृण्वीथा | वृण्वीयाथाम् | वृण्वीध्वम् |
| उ० पु० | वृण्वीय | वृण्वीवहि | वृण्वीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवृणुत | अवृण्वाताम् | अवृण्वत |
| म० पु० | अवृणुथा | अवृण्वाथाम् | अवृणुध्वम् |
| उ० पु० | अवृण्वि | अवृण्वहि | अवृण्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | वव्रे | वव्राते | वव्रिरे |
| म० पु० | ववृषे | वव्राथे | ववृढ्वे |
| उ० पु० | वव्रे | ववृवहे | ववृमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवरिष्ट | अवरिषाताम् | अवरिषत |
| म० पु० | अवरिष्ठा | अवरिषाथाम् | अवरिध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अवरिषि | अवरिष्वहि | अवरिष्महि |

या

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पुं० | अवरीष्ट | अवरीषाताम् | अवरीषत |
| म० पु० | अवरीष्ठा | अवरीषाथाम् | अवरीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अवरीषि | अवरीष्वहि | अवरीष्महि |

अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अवृत | अवृषाताम् | अवृषत |
| म० पु० | अवृथा | अवृषाथाम् | अवृढ्वम् |
| उ० पु० | अवृषि | अवृष्वहि | अवृष्महि |
| लुट् | { वरिता<br>वरीता | { वरितारौ<br>वरीतारौ | { वरितार<br>वरीतार |
| लृट् | { वरिष्यते<br>वरीष्यते | { वरिष्येते<br>वरीष्येते | { वरिष्यन्ते<br>वरीष्यन्ते |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| आशी० | वरिषीष्ट<br>वृषीष्ट | वरिषीयास्ताम्<br>वृषीयास्ताम् | वरिषीरन्<br>वृषीरन् |
| लृङ | अवरिष्यत<br>अवरीष्यत | अवरिष्येताम्<br>अवरीष्येताम् | अवरिष्यन्त<br>अवरीष्यन्त |

परस्मैपदी शक्—सकना

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शक्नोति | शक्नुत | शक्नुवन्ति |
| म० पु० | शक्नोषि | शक्नुथ | शक्नुथ |
| उ० पु० | शक्नोमि | शक्नुव | शक्नुम |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शक्नोतु | शक्नुताम् | शक्नुवन्तु |
| म० पु० | शक्नुहि | शक्नुतम् | शक्नुत |
| उ० पु० | शक्नवानि | शक्नवाव | शक्नवाम |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शक्नुयात् | शक्नुयाताम् | शक्नुयु |
| म० पु० | शक्नुया | शक्नुयातम् | शक्नुयात |
| उ० पु० | शक्नुयाम् | शक्नुयाव | शक्नुयाम |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशक्नोत् | अशक्नुताम् | अशक्नुवन् |
| म० पु० | अशक्नो | अशक्नुतम् | अशक्नुत |
| उ० पु० | अशक्नवम् | अशक्नुव | अशक्नुम |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | शशाक | शेकतु | शेकु |
| म० पु० | शेकिथ, शशक्थ | शेकथु | शेक |
| उ० पु० | शशाक, शशक | शेकिव | शेकिम |

सामान्यभूत—लुङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अशकत् | अशकताम् | अशकन् |
| म० पु० | अशक | अशकतम् | अशकत |
| उ० पु० | अशकम् | अशकाव | अशकाम |
| लुट् | शक्ता | शक्तारौ | शक्तार |
| लृट् | शक्ष्यति | शक्ष्यत | शक्ष्यन्ति |
| आशी० | शक्यात् | शक्यास्ताम् | शक्यासु |
| लृङ | अशक्ष्यत् | अशक्ष्यताम् | अशक्ष्यन् |

## (६) तुदादिगण

१४७—इस गण की प्रथम धातु तुद् (पीडा पहुँचाना) है, इसी से इसका नाम तुदादिगण है। इसमे १५७ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच मे इसमे[1] श (अ) जोडा जाता है। भ्वादिगण मे भी अ जोडा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर का गुण प्राप्त होता है, यहाँ तुदादि-गण मे ऐसा नही होता। यहाँ अन्तिम इ, को इय्, उ, ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाता है, जैसे—रि+अ+ति=रियति। घु+अ+ति=घुवति। मृ+अ+ते=म्रियते। गॄ+अ+ति=गिरति। कृष् धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनो मे हैं, भ्वादि मे कर्षति आदि और तुदादि मे कृषति आदि रूप होते हैं।

नीचे मुख्य-मुख्य धातुओ के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी तुद्—पीडा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु | तुदति | तुदत | तुदन्ति |
| म० पु० | तुदसि | तुदथ | तुदथ |
| उ० पु० | तुदामि | तुदाव | तुदाम |

१ तुदादिभ्य श ।३।१।७७।

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुदतु, तुदतात् | तुदताम् | तुदन्तु |
| म० पु० | तुद, तुदतात् | तुदतम् | तुदत |
| उ० पु० | तुदानि | तुदाव | तुदाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुदेत् | तुदेताम् | तुदेयु |
| म० पु० | तुदे | तुदेतम् | तुदेत |
| उ० पु० | तुदेयम् | तुदेव | तुदेम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतुदत् | अतुदताम् | अतुदन् |
| म० पु० | अतुद | अतुदतम् | अतुदत |
| उ० पु० | अतुदम् | अतुदाव | अतुदाम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुतोद | तुतुदतु | तुतुदु |
| म० पु० | तुतोदिथ | तुतुदथु | तुतुद |
| उ० पु० | तुतोद | तुतुदिव | तुतुदिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतौत्सीत् | अतौत्ताम् | अतौत्सु |
| म० पु० | अतौत्सी | अतौत्तम् | अतौत्त |
| उ० पु० | अतौत्सम् | अतौत्स्व | अतौत्स्म |

लुट्—तोत्ता। लृट्—तोत्स्यति। आशी०—तुद्यात्। लृङ्—अतोत्स्यत्।

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुदते | तुदेते | तुदन्ते |
| म० पु० | तुदसे | तुदेथे | तुदध्वे |
| उ० पु० | तुदे | तुदावहे | तुदामहे |

**आज्ञा—लोट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुदताम् | तुदेताम् | तुदन्ताम् |
| म० पु० | तुदस्व | तुदेथाम् | तुदध्वम् |
| उ० पु० | तुदै | तुदावहै | तुदामहै |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुदेत | तुदेयाताम् | तुदेरन् |
| म० पु० | तुदेथा | तुदेयाथाम् | तुदेध्वम् |
| उ० पु० | तुदेय | तुदेवहि | तुदेमहि |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतुदत | अतुदेताम् | अतुदन्त |
| म० पु० | अतुदथा | अतुदेथाम् | अतुदध्वम् |
| उ० पु० | अतुदे | अतुदावहि | अतुदामहि |

**परोक्षभूत—लिट**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तुतुदे | तुदुदाते | तुतुदिरे |
| म० पु० | तुतुदिषे | तुतुदाथे | तुतुदिध्वे |
| उ० पु० | तुतुदे | तुतुदिवहे | तुतुदिमहे |

**सामान्यभूत—लुङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतुत्त | अतुत्साताम् | अतुत्सत |
| म० पु० | अतुत्था | अतुत्साथाम् | अतुद्ध्वम् |
| उ० पु० | अतुत्सि | अतुत्स्वहि | अतुत्स्महि |

लुट्—तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तार। तोत्तासे। लृट्—तोत्स्यते। आशी०—तोत्सीष्ट। लृङ—अतोत्स्यत।

**परस्मैपदी इष्—इच्छा करना**

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इच्छति | इच्छत | इच्छन्ति |
| म० पु० | इच्छसि | इच्छथ | इच्छथ |
| उ० पु० | इच्छामि | इच्छाव | इच्छाम |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इच्छतु | इच्छताम् | इच्छन्तु |
| म० पु० | इच्छ | इच्छतम् | इच्छत |
| उ० पु० | इच्छानि | इच्छाव | इच्छाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इच्छेत् | इच्छेताम् | इच्छेयु |
| म० पु० | इच्छे | इच्छेतम् | इच्छेत |
| उ० पु० | इच्छेयम् | इच्छेव | इच्छेम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऐच्छत् | ऐच्छताम् | ऐच्छन् |
| म० पु० | ऐच्छ | ऐच्छतम् | ऐच्छत |
| उ० पु० | ऐच्छम | ऐच्छाव | ऐच्छाम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | इयेप | ईषतु | ईषु |
| म० पु० | इयेषिथ | ईषथु | ईष |
| उ० पु० | इयेष | ईषिव | ईषिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ऐषीत् | ऐषिष्टाम् | ऐषिषु |
| म० पु० | ऐषी | ऐषिष्टम् | ऐषिष्ट |
| उ० पु० | ऐषिषम् | ऐषिष्व | ऐषिष्म |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एषिता / एष्टा | एपितारौ / एष्टारौ | एषितार / एष्टार |
| म० पु० | एषितासि / एष्टासि | एपितास्थ / एष्टास्थ | एषितास्थ / एष्टास्थ |
| उ० पु० | एषितास्मि / एष्टास्मि | एषितास्व / एष्टास्व | एषितास्म / एष्टास्म |

**सामान्यभविष्य---लृट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | एषिष्यति | एषिष्यत | एषिष्यन्ति |
| म० पु० | एषिष्यसि | एषिष्यथ | एषिष्यथ |
| उ० पु० | एषिष्यामि | एषिष्याव | एषिष्याम |
| आशी० | इष्यात्। | लृङ | ऐषिष्यत्। |

१४८---तुदादिगण की अन्य मुख्य धातुओं की सूची।

कृत् (प०)---काटना। लट्---कृन्तति। लुट्---कर्तिता। लृट्---कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। आशी०---कृत्यात्। लङ---अकर्तिष्यत्, अकर्त्स्यत्। लिट्---चकर्त चकृततु चकृतु। लुङ---अकर्तीत्।

कृष् (उ०)---जोतना। लट्---कृषति, कृषत। लुट्---कर्ष्टा, क्रष्टा। लृट्---कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यते। आशी०---कृष्यात्, कृक्षीष्ट। लङ---अकर्क्ष्यत्, अक्रक्ष्यत् अकर्क्ष्यत अक्रक्ष्यत। लिट्---चकर्ष, चकृषे। लुङ---अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत् अकृष्ट, अकृक्षत।

कॄ (प०)---तितर बितर करना। लट्---किरति। लुट्---करिता, करीता। लृट्---करिष्यति करीष्यति। आशी०---कीर्यात्। लृङ---अकरिष्यत्, अकरीष्यत्। लिट्---चकार, चकरतु चकरु। चकरिथ। लुङ---अकारीत्, अकारिष्टाम, अकारिषु।

गॄ (प०)---निगलना। लट्---गिरति, गिरत, गिरन्ति तथा गिलति, गिलत गिलन्ति। लुट्---गरिता, गरीता। गलिता, गलीता। लृट्---गरिष्यति, गरीष्यति। गलिष्यति, गलीष्यति। आशी०---गीयात लिट्---जगार, जगरतु, जगरु। जगाल, जगलतु, जगलु। जगरिथ जगलिथ। लुङ---अगारीत्, अगालीत्।

त्रुट्[1] (प०)---टूट जाना। लट्---त्रुटति। लुट्---त्रुटिता। लृट्---त्रुटिष्यति। आशी०---त्रुट्यात्। लिट्---तुत्रोट, तुत्रुटतु, तुत्रुटु।

---

१ इस धातु मे विकल्प श्यन् होने के कारण त्रुट्यति इत्यादि भी रूप होते है।

तुत्रुटिथ, तुत्रुटथु, तुत्रुट। तुत्रोट, तुत्रुटिव, तुत्रुटिम। लुङ्—अत्रुटीत्, अत्रुटिष्टाम्, अत्रुटिषु।

प्रच्छ (प०)—पूछना। लट्—पृच्छति, पृच्छत, पृच्छन्ति। लुट्—प्रष्टा, प्रष्टारौ, प्रष्टार। लृट्—प्रक्ष्यति। आशी०—पृच्छ्यात्। लृङ—अप्रक्ष्यत्।

**परोक्षभूत—लिट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | पप्रच्छ | पप्रच्छतु | पप्रच्छु |
| म० पु० | पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ | पप्रच्छथु | पप्रच्छ |
| उ० पु० | पप्रच्छ | पप्रच्छिव | पप्रच्छिम |

**सामान्यभूत—लुङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अप्राक्षीत् | अप्राष्टाम् | अप्राक्षु |
| म० पु० | अप्राक्षी | अप्राष्टम् | अप्राष्ट |
| उ० पु० | अप्राक्षम् | अप्राक्ष्व | अप्राक्ष्म |

मिल् (उ०)—मिलना। लट्—मिलति, मिलते। लिट्—मिमेल, मिमिलतु, मिमिलु। मिमेलिथ, मिमिलथु मिमिल। मिमेल, मिमिलिव, मिमिलिम। मिमिले, मिमिलाते, मिमिलिरे। लुङ—अमेलीत्, अमेलिष्टाम्, अमेलिषु। अमेलिष्ट, अमेलिषाताम्, अमेलिषत। लुट्—मेलिता। लृट्—मेलिष्यति, मेलिष्यते। आशी०—मिल्यात्, मेल्यात्, मेलिषीष्ट। लृङ—अमेलिष्यत्, अमेलिष्यत।

मुच (उ०)—छोडना। लट्—मुञ्चति[1], मुञ्चत, मुञ्चन्ति। मुञ्चते, मुञ्चेते, मुञ्चन्ते। लुट्—मोक्ता। लृट्—मोक्ष्यति, मोक्ष्यते। आशी०—मुच्यात्, मुक्षीष्ट। लृङ—अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यत।

---

१ शे मुचादीनाम् ।७।१।५९। मुच् इत्यादि धातुओ मे नुम् का आगम हो जाता है। वे धातुएँ निम्नलिखित हैं—मुच्, लुप् (लुम्पति), षिच् (सिञ्चति), कृत् (कृन्तति), खिद् (खिन्दति) और पिश् (पिशति)।

परोक्षभूत—लिट्

परस्मैपद

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | मुमोच | मुमुचतु | मुमुचु |
| म० पु० | मुमोचिथ, मुमोक्थ | मुमुचथु | मुमुच |
| उ० पु० | मुमोच | मुमुचिव | मुमुचिम |

परोक्षभूत—लिट्

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | मुमुचे | मुमुचाते | मुमुचिरे |
| म० पु० | मुमुचिषे | मुमुचाथे | मुमुचिध्वे |
| उ० पु० | मुमुचे | मुमुचिवहे | मुमुचिमहे |

सामान्यभूत—लुङ्

परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अमुचत् | अमुचताम् | अमुचन् |
| म० पु० | अमुच | अमुचतम् | अमुचत |
| उ० पु० | अमुचम् | अमुचाव | अमुचाम |

सामान्यभूत—लुङ्

आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अमुक्त | अमुक्षाताम् | अमुक्षत |
| म० पु० | अमुक्था | अमुक्षाथाम् | अमुग्ध्वम् |
| उ० पु० | अमुक्षि | अमुक्ष्वहि | अमुक्ष्महि |

लिख् (प०)—लिखना। लट्—लिखति। लुट्—लेखिता। लृट्—लेखिष्यति। आशी०—लिख्यात्। लृङ—अलेखिष्यत्। लिट्—लिलेख, लिलिखतु, लिलिखु। लिलेखिथ, लिलिखथु, लिलिख। लिलेख, लिलिखिव, लिलिखिम। लुङ—अलेखीत्।

लिप् (उ०)—लीपना। लट्—लिम्पति, लिम्पत, लिम्पन्ति। लिम्पते, लिम्पेते, लिम्पन्ते। लुट्—लेप्ता। लृट्—लेप्स्यति, लेप्स्यते। आशी०—

लिप्यात् । लिप्सीष्ट, लिप्सीयास्ताम्, लिप्सीरन् । लिट्—लिलेप लिलिपतु, लिलिपु । लिलिपे, लिलिपाते, लिलिपिरे । लुङ्—अलिपत्, अलिपताम्, अलिपन् । अलिपत, अलिपेताम्, अलिपन्त । अलिप्त, अलिप्साताम्, अलिप्सत ।

विश (प०)—घुसना । लट्—विशति । लुट्—वेष्टा । लृट्—वेक्ष्यति । आशी०—विश्यात् । लृङ्—अवेक्ष्यत् । लिट्—विवेश । लुङ—अविक्षत् ।

सद् (प०)—दुःखी होना, सहारा लेना, जाना । लट्—सीदति । लुट्—सत्ता । लृट्—सत्स्यति । आशी०—सद्यात् । लृङ्—असत्स्यत । लिट्—ससाद, सेदतु, सेदु । सेदिथ-ससत्थ, सेदथु, सेद । ससाद-ससद, सेदिव, सेदिम । लुङ्—असदत्, असदताम्, असदन् ।

सिच् (उ०)—छिडकना, सीचना । लट्—सिञ्चति, सिञ्चते । लुट्—सेक्ता । लट्—सेक्ष्यति, सेक्ष्यते । आशी०—सिच्यात्, सिक्षीष्ट । लिट्—सिषेच, सिषिचतु, सिषिचु । सिषेचिथ । सिषिचे सिषिचाते, सिषिचिरे । लुङ्—असिचत् । असिचत । असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । लट्—सृजति । लुट्—स्रष्टा । लृट्—स्रक्ष्यति, आशी०—सृज्यात् । लृङ्—अस्रक्ष्यत् । लिट्—ससर्ज, ससृजतु, ससृजु । लुङ्—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षु ।

स्पृश् (प०)—छूना । लट्—स्पृशति । लुट्—स्प्रष्टा, स्पर्ष्टा । लृट्—स्पर्क्ष्यति स्प्रक्ष्यति । आशी०—स्पृश्यात् । लिट्—पस्पर्श, पस्पृशतु, पस्पृशु । पस्पर्शिथ, पस्पृशथु, पस्पृश । पस्पर्श, पस्पृशिव, पस्पृशिम । लुङ्—अस्प्राक्षीत्, अस्प्राष्टाम्, अस्प्राक्षु । अस्प्राक्षी, अस्प्राष्टम्, अस्प्राष्ट । अस्प्राक्षम्, अस्प्राक्ष्व, अस्प्राक्ष्म, तथा—अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टाम्, अस्पार्क्षु और अस्पृक्षत्, अस्पृक्षताम्, अस्पृक्षन् ।

(प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । लट्—स्फुट् । लुट्—स्फुटिता । लृट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट्—पुस्फोट

पुस्फुटतु, पुस्फुटु। पुस्फुटिथ, पुस्फुटथु, पुस्फुट। पुस्फोट, पुस्फुटिव, पुस्फुटिम। लुङ्—अस्फुटीत्, अस्फुटिष्टाम्, अस्फुटिषु। अस्फुटी, अस्फुटिष्टम्, अस्फुटिष्ट। अस्फुटिषम्, अस्फुटिष्व, अस्फुटिष्म।

स्फुर् (प०)—काँपना, फडकना, लपलपाना, चमकना। लट्—स्फुरति। लुट्—स्फुरिता। लृट्—स्फुरिष्यति। आशी०—स्फुर्यात्। लिट्—पुस्फोर, पुस्फुरतु, पुस्फुरु। पुस्फुरिथ। लुङ्—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषु।

## (७) रुधादिगण

१४६—इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना, घेरना) है, इस कारण इसका नाम रुधादि है। इसमे २५ धातुएँ हैं। धातु के प्रथम स्वर के उपरान्त इस गण मे श्नम्[1] (न अथवा न्[2]) जोडा जाता है, जैसे—क्षुद्+ति=क्षु+न+द्+ति=क्षुण+द्+ति=क्षुणत्ति। क्षुद्+यात्=क्षु+न्+द्+यात्=क्षुन्द्यात्।

नीचे मुख्य-मुख्य धातुओ के रूप दिखाये जाते हैं।

उभयपदी रुध्—रोकना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुणद्धि | रुन्ध | रुन्धन्ति |
| म० पु० | रुणत्सि | रुन्ध | रुन्ध |
| उ० पु० | रुणध्मि | रुन्धव | रुन्धम |

आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुणद्धु | रुन्धाम् | रुन्धन्तु |
| म० पु० | रुन्धि | रुन्धम् | रुन्ध |
| उ० पु० | रुणधानि | रुणधाव | रुणधाम |

१ रुधादिभ्य श्नम् ।३।१।७८।

२ श्नसोरल्लोप ।६।४।१११। से कित् तथा ङित् सार्वधातुक मे न का अकार लुप्त हो जाता है, केवल न् ही जुडता है।

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुन्ध्यात् | रुन्ध्याताम् | रुन्ध्यु |
| म० पु० | रुन्ध्या | रुन्ध्यातम् | रुन्ध्यात |
| उ० पु० | रुन्ध्याम् | रुन्ध्याव | रुन्ध्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरुणत्, अरुणद् | अरुन्धाम् | अरुन्धन् |
| म० पु० | अरुण , अरुणत्-द् | अरुन्धम् | अरुन्ध |
| उ० पु० | अरुणधम् | अरुन्ध्व | अरुन्ध्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुरोध | रुरुधतु | रुरुधु |
| म० पु० | रुरोधिथ | रुरुधथु | रुरुध |
| उ० पु० | रुरोध | रुरुधिव | रुरुधिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरुधत् | अरुधताम् | अरुधन् |
| | अरौत्सीत् | अरौद्धाम् | अरौत्सु |
| म० पु० | अरुध | अरुधतम् | अरुधत |
| | अरौत्सी | अरौद्धम् | अरौद्ध |
| उ० पु० | अरुधम् | अरुधाव | अरुधाम |
| | अरौत्सम् | अरौत्स्व | अरौत्स्म |
| लुट् | रोद्धा | रोद्धारौ | रोद्धार |
| लृट् | रोत्स्यति | रोत्स्यत | रोत्स्यन्ति |
| आशी० | रुध्यात् | रुध्यास्ताम् | रुध्यासु |
| लृङ् | अरोत्स्यत् | अरोत्स्यताम् | अरोत्स्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुन्धे | रुन्धाते | रुन्धते |
| म० पु० | रुन्त्से | रुन्धाथे | रुन्ध्वे |
| उ० पु० | रुन्धे | रुन्ध्वहे | रुन्ध्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुन्धाम् | रुन्धाताम् | रुन्धताम् |
| म० पु० | रुन्त्स्व | रुन्धाथाम् | रुन्ध्वम् |
| उ० पु० | रुणधै | रुणधावहै | रुणधामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुन्धीत | रुन्धीयाताम् | रुन्धीरन् |
| म० पु० | रुन्धीथा | रुन्धीयाथाम् | रुन्धीध्वम् |
| उ० पु० | रुन्धीय | रुन्धीवहि | रुन्धीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरुन्ध | अरुन्धाताम् | अरुन्धत |
| म० पु० | अरुन्धा. | अरुन्ध्याथाम् | अरुन्ध्वम् |
| उ० पु० | अरुन्धि | अरुन्ध्वहि | अरुन्ध्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रुरुधे | रुरुधाते | रुरुधिरे |
| म० पु० | रुरुधिषे | रुरुधाथे | रुरुधिध्वे |
| उ० पु० | रुरुधे | रुरुधिवहे | रुरुधिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अरुद्ध | अरुत्साताम् | अरुत्सत |
| म० पु० | अरुद्धा | अरुत्साथाम् | अरुद्धवम् |
| उ० पु० | अरुत्सि | अरुत्स्वहि | अरुत्स्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोद्धा | रोद्धारौ | रोद्धार |
| म० पु० | रोद्धासे | रोद्धासाथे | रोद्धाध्वे |
| उ० पु० | रोद्धाहे | रोद्धास्वहे | रोद्धास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | रोत्स्यते | रोत्स्येते | रोत्स्यन्ते |
| म० पु० | रोत्स्यसे | रोत्स्येथे | रोत्स्यध्वे |
| उ० पु० | रोत्स्ये | रोत्स्यावहे | रोत्स्यामहे |
| आशी० | रुत्सीष्ट | रुत्सीयास्ताम् | रुत्सीरन् |
| लृङ् | अरोत्स्यत | अरोत्स्येताम् | अरोत्स्यन्त |

## उभयपदी छिद्—काटना

### परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिनत्ति | छिन्त | छिन्दन्ति |
| म० पु० | छिनत्सि | छिन्त्थ | छिन्त्थ |
| उ० पु० | छिनद्मि | छिन्द्व | छिन्द्म |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिनत्तु | छिन्ताम् | छिन्दन्तु |
| म० पु० | छिन्धि | छिन्तम् | छिन्त |
| उ० पु० | छिनदानि | छिनदाव | छिनदाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिन्द्यात् | छिन्द्याताम् | छिन्द्युः |
| म० पु० | छिन्द्याः | छिन्द्यातम् | छिन्द्यात |
| उ० पु० | छिन्द्याम् | छिन्द्याव | छिन्द्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अच्छिनत् | अच्छिन्ताम् | अच्छिन्दन् |
| म० पु० | अच्छिनः, अच्छिनत् | अच्छिन्तम् | अच्छिन्त |
| उ० पु० | अच्छिनदम् | अच्छिन्द्व | अच्छिन्द्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिच्छेद | चिच्छिदतुः | चिच्छिदुः |
| म० पु० | चिच्छेदिथ | चिच्छिदथुः | चिच्छिद |
| उ० पु० | चिच्छेद | चिच्छिदिव | चिच्छिदिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अच्छिदत् | अच्छिदताम् | अच्छिदन् |
| म० पु० | अच्छिद | अच्छिदतम् | अच्छिदत |
| उ० पु० | अच्छिदम् | अच्छिदाव | अच्छिदाम |

अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अच्छैत्सीत् | अच्छैत्ताम् | अच्छैत्सु |
| म० पु० | अच्छैत्सी | अच्छैत्तम् | अच्छैत्त |
| उ० पु० | अच्छैत्सम् | अच्छैत्स्व | अच्छैत्स्म |
| लुट् | छेत्ता | छेत्तारौ | छेत्तार |
| लृट् | छेत्स्यति | छेत्स्यत | छेत्स्यन्ति |
| आशी० | छिद्यात् | छिद्यास्ताम् | छिद्यासु |
| लृङ | अच्छेत्स्यत् | अच्छेत्स्याताम् | अच्छेत्स्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिन्ते | छिन्दाते | छिन्दते |
| म० पु० | छिन्त्से | छिन्दाथे | छिन्द्ध्वे |
| उ० पु० | छिन्दे | छिन्द्वहे | छिन्द्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिन्ताम् | छिन्दाताम् | छिन्दताम् |
| म० पु० | छिन्त्स्व | छिन्दाथाम् | छिन्द्ध्वम् |
| उ० पु० | छिनदै | छिनदावहै | छिनदामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | छिन्दीत | छिन्दीयाताम् | छिन्दीरन् |
| म० पु० | छिन्दीथा | छिन्दीयाथाम | छिन्दीध्वम् |
| उ० पु० | छिन्दीय | छिन्दीवहि | छिन्दीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अच्छिन्त | अच्छिन्दाताम् | अच्छिन्दत |
| म० पु० | अच्छिन्त्था | अच्छिन्दाथाम् | अच्छिन्द्ध्वम् |
| उ० पु० | अच्छिन्दि | अच्छिन्द्वहि | अच्छिन्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिच्छिदे | चिच्छिदाते | चिच्छिदिरे |
| म० पु० | चिच्छिदिषे | चिच्छिदाथे | चिच्छिदिध्वे |
| उ० पु० | चिच्छिदे | चिच्छिदिवहे | चिच्छिदिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अच्छित | अच्छित्साताम् | अच्छित्सत |
| म० पु० | अच्छित्था | अच्छित्साथाम् | अच्छिद्ध्वम् |
| उ० पु० | अच्छित्सि | अच्छित्स्वहि | अच्छित्स्महि |
| लुट् | छेत्ता | छेत्तारौ | छेत्तारः |
| लृट् | छेत्स्यते | छेत्स्येते | छेत्स्यन्ते |
| आशी० | छित्सीष्ट | छित्सीयास्ताम् | छित्सीरन् |
| लृङ् | अच्छेत्स्यत | अच्छेत्स्येताम् | अच्छेत्स्यन्त |

## परस्मैपद भञ्ज्—तोड़ना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भनक्ति | भङ्क्तः | भञ्जन्ति |
| म० पु० | भनक्षि | भङ्क्थः | भङ्क्थ |
| उ० पु० | भनज्मि | भञ्ज्वः | भञ्ज्मः |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भनक्तु, भङ्क्तात् | भङ्क्ताम् | भञ्जन्तु |
| म० पु० | भङ्ग्धि, भङ्क्तात् | भङ्क्तम् | भङ्क्त |
| उ० पु० | भनजानि | भनजाव | भनजाम |

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भञ्ज्यात् | भञ्ज्याताम् | भञ्ज्यु |
| म० पु० | भञ्ज्या | भञ्ज्यातम् | भञ्ज्यात |
| उ० पु० | भञ्ज्याम् | भञ्ज्याव | भञ्ज्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभनक् | अभङ्क्ताम् | अभञ्जन् |
| म० पु० | अभनक् | अभङ्क्तम् | अभङ्क्त |
| उ० पु० | अभनजम् | अभञ्ज्व | अभञ्ज्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बभञ्ज | बभञ्जतु | बभञ्जु |
| म० पु० | बभञ्जिथ / बभङ्क्थ | बभञ्जथु | बभञ्ज |
| उ० पु० | बभञ्ज | बभञ्जिव | बभञ्जिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभाङ्क्षीत् | अभाङ्क्ताम् | अभाङ्क्षु |
| म० पु० | अभाङ्क्षी | अभाङ्क्तम् | अभाङ्क्त |
| उ० पु० | अभाङ्क्षम् | अभाङ्क्ष्व | अभाङ्क्ष्म |
| लुट् | भङ्क्ता | भङ्क्तारौ | भङ्क्तार |
| लृट् | भङ्क्ष्यति | भङ्क्ष्यत | भङ्क्ष्यन्ति |
| आशी० | भज्यात् | भज्यास्ताम् | भज्यासु |
| लृङ् | अभङ्क्ष्यत् | अभङ्क्ष्यताम् | अभङ्क्ष्यन् |

### उभयपदी भुज्—रक्षा करना, खाना

### परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुनक्ति[1] | भुङ्क्त | भुञ्जान्त |
| म० पु० | भुनक्षि | भुङ्क्थ | भुङ्क्थ |
| उ० पु० | भुनज्मि | भुञ्ज्व | भुञ्ज्म |

१ रक्षा करने के अर्थ में भुज् धातु परस्मैपदी होती है।

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुनक्तु | भुङ्क्ताम् | भुञ्जन्तु |
| म० पु० | भुङ्ग्धि | भुङ्क्तम् | भुङ्क्त |
| उ० पु० | भुनजानि | भुनजाव | भुञ्ज्याम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुञ्ज्यात् | भुञ्ज्याताम् | भुञ्ज्यु |
| म० पु० | भुञ्ज्या | भुञ्ज्याताम् | भुञ्ज्यात |
| उ० पु० | भुञ्ज्याम् | भुञ्ज्याव | भुञ्ज्याम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभुनक् | अभुङ्क्ताम् | अभुञ्जन् |
| म० पु० | अभुनक् | अभुङ्क्तम् | अभुङ्क्त |
| उ० पु० | अभुनजम् | अभुञ्ज्व | अभुञ्ज्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बुभोज | बुभुजतु | बुभुजु |
| म० पु० | बुभोजिथ | बुभुजथु | बुभुज |
| उ० पु० | बुभोज | बुभुजिव | बुभुजिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभौक्षीत् | अभौक्ताम् | अभौक्षु |
| म० पु० | अभौक्षी | अभौक्ताम् | अभौक्त |
| उ० पु० | अभौक्षम् | अभौक्ष्व | अभौक्ष्म |
| लुट् | भोक्ता | भोक्तारौ | भोक्तार |
| लृट् | भोक्ष्यति | भोक्ष्यत | भोक्ष्यन्ति |
| आशी० | भुज्यात् | भुज्यास्ताम् | भुज्यासु |
| लृङ् | अभोक्ष्यत् | अभोक्ष्यताम् | अभोक्ष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुङ्क्ते[1] | भुञ्जाते | भुञ्जते |
| म० पु० | भुङ्क्षे | भुञ्जाथे | भुङ्ग्ध्वे |
| उ० पु० | भुञ्जे | भुञ्ज्वहे | भुञ्ज्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुङ्क्ताम् | भुञ्जाताम् | भुञ्जताम् |
| म० पु० | भुङ्क्ष्व | भुञ्जाथाम् | भुङ्ग्ध्वम् |
| उ० पु० | भुनजै | भुनजावहै | भुनजामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | भुञ्जीत | भुञ्जीयाताम् | भुञ्जीरन् |
| म० पु० | भुञ्जीथा | भुञ्जीयाथाम् | भुञ्जीध्वम् |
| उ० पु० | भुञ्जीय | भुञ्जीवहि | भुञ्जीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभुङ्क्त | अभुञ्जाताम् | अभुञ्जत |
| म० पु० | अभुङ्क्था | अभुञ्जाथाम् | अभुङ्ग्ध्वम् |
| उ० पु० | अभुञ्जि | अभुञ्जवहि | अभुञ्जमहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बुभुजे | बुभुजाते | बुभुजिरे |
| म० पु० | बुभुजिषे | बुभुजाथे | बुभुजिध्वे |
| उ० पु० | बुभुजे | बुभुजिवहे | बुभुजिमहे |

१ भुजोऽनवने ।१।३।६६। के अनुसार रक्षा से भिन्न (खाना, उपभोग करना) अर्थ होने पर भुज् धातु आत्मनेपद मे होती है। रक्षा करने के अर्थ मे भुनक्ति इत्यादि रूप होगे, जैसे—'मही भुनक्ति महीपाल ।

सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अमुक्त | अमुक्षाताम् | अमुक्षत |
| म० पु० | अमुक्था | अमुक्षाथाम् | अमुग्ध्वम् |
| उ० पु० | अमुक्षि | अमुक्ष्वहि | अमुक्ष्महि |
| लुट् | भोक्ता | भोक्तारौ | भोक्तार |
| लृट् | भोक्ष्यते | भोक्ष्येते | भोक्ष्यन्ते |
| आशी० | भुक्षीष्ट | भुक्षीयास्ताम् | भुक्षीरन् |
| लृङ् | अभोक्ष्यत | अभोक्ष्येताम् | अभोक्ष्यन्त |

## (८) तनादिगण

१५०—इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, इसलिए इसका नाम तनादि है। इसमे दस धातुएँ हैं। धातु[1] और प्रत्यय के बीच मे, इस गण मे उ जोडा जाता है, जैसे—तन्+उ+ते=तनुते।

[नोट—नियम १४६ मे उदाहृत नोट यहाँ भी लागू होता है।]

नीचे तन् और कृ धातुओ के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी तन्—फैलाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तनोति | तनुत | तन्वन्ति |
| म० पु० | तनोषि | तनुथ | तनुथ |
| उ० पु० | तनोमि | तनुव | तनुम |
| | | तन्व | तन्म |

आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तनोतु, तनुतात् | तनुताम् | तन्वन्तु |
| म० पु० | तनु, तनुतात् | तनुतम् | तनुत |
| उ० पु० | तनवानि | तनवाव | तनवाम |

१ तनादिकृञ्भ्य उ ।३।१।७९।

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तनुयात् | तनुयाताम् | तनुयु |
| म० पु० | तनुया | तनुयातम् | तनुयात |
| उ० पु० | तनुयाम् | तनुयाव | तनुयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतनोत् | अतनुताम् | अतन्वन् |
| म० पु० | अतनो | अतनुतम् | अतनुत |
| उ० पु० | अतनवम् | अतनुव | अतनुम |
| | | अतन्व | अतन्म |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ततान | तेनतु | तेनु |
| म० पु० | तेनिथ | तेनथु | तेन |
| उ० पु० | ततान, ततन | तेनिव | तेनिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतनीत् | अतनिष्टाम् | अतनिषु |
| म० पु० | अतनी | अतनिष्टम् | अतनिष्ट |
| उ० पु० | अतनिषम् | अतनिष्व | अतनिष्म |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतानीत् | अतानिष्टाम् | अतानिषु |
| म० पु० | अतानी | अतानिष्टम् | अतानिष्ट |
| उ० पु० | अतानिषम् | अतानिष्व | अतानिष्म |
| लुट् | तनिता | तनितारौ | तनितार |
| लृट् | तनिष्यति | तनिष्यत | तनिष्यन्ति |
| आशी० | तन्यात् | तन्यास्ताम् | तन्यासु |
| लृङ् | अतनिष्यत | अतनिष्यताम् | अतनिष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तनुते | तन्वाते | तन्वते |
| म० पु० | तनुषे | तन्वाथे | तनुध्वे |
| उ० पु० | तन्वे | तनुवहे, तन्वहे | तनुमहे, तन्महे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तनुताम् | तन्वाताम् | तन्वताम् |
| म० पु० | तनुष्व | तन्वाथाम् | तनुध्वम् |
| उ० पु० | तनवै | तनवावहै | तनवामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तन्वीत | तन्वीयाताम् | तन्वीरन् |
| म० पु० | तन्वीथा | तन्वीयाथाम् | तन्वीध्वम् |
| उ० पु० | तन्वीय | तन्वीवहि | तन्वीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतनुत | अतन्वाताम् | अतन्वत |
| म० पु० | अतनुथा | अतन्वाथाम् | अतनुध्वम् |
| उ० पु० | अतन्वि | अतनुवहि, अतन्वहि | अतनुमहि, अतन्महि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | तेने | तेनाते | तेनिरे |
| म० पु० | तेनिषे | तेनाथे | तेनिध्वे |
| उ० पु० | तेने | तेनिवहे | तेनिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अतत, अतनिष्ट[1] | अतनिषाताम् | अतनिषत |
| म० पु० | अतथा, अतनिष्ठा | अतनिषाथाम् | अतनिध्वम् |
| उ० पु० | अतनिषि | अतनिष्वहि | अतनिष्महि |

---

१ अतानिष्ट इत्यादि भी रूप होंगे ।

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लुट् | तनिता | तनितारौ | तनितार |
| लृट् | तनिष्यते | तनिष्येते | तनिष्यन्ते |
| आशी० | तनिषीष्ट | तनिषीयास्ताम् | तनिषीरन् |
| लृङ | अतनिष्यत | अतनिष्येताम् | अतनिष्यन्त |

उभयपदी कृ—करना

परस्मैपद

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | करोति | कुरुत | कुर्वन्ति |
| म० पु० | करोषि | कुरुथ | कुरुथ |
| उ० पु० | करोमि | कुर्व | कुर्म |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | करोतु, कुरुतात् | कुरुताम् | कुर्वन्तु |
| म० पु० | कुरु, कुरुतात् | कुरुतम् | कुरुत |
| उ० पु० | करवाणि | करवाव | करवाम |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुर्यात् | कुर्याताम् | कुर्यु |
| म० पु० | कुर्या | कुर्यातम् | कुर्यात |
| उ० पु० | कुर्याम् | कुर्याव | कुर्याम |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकरोत् | अकुरुताम् | अकुर्वन् |
| म० पु० | अकरो | अकुरुतम् | अकुरुत |
| उ० पु० | अकरवम् | अकुर्व | अकुर्म |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चकार | चक्रतु | चक्रु |
| म० पु० | चकर्थ | चक्रथु | चक्र |
| उ० पु० | चकार, चकर | चकृव | चकृम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकार्षीत् | अकार्ष्टाम् | अकार्षु |
| म० पु० | अकार्षी | अकार्ष्टम् | अकार्ष्ट |
| उ० पु० | अकार्षम् | अकार्ष्व | अकार्ष्म |
| लुट् | कर्त्ता | कर्त्तारौ | कर्त्तार |
| लृट् | करिष्यति | करिष्यत | करिष्यन्ति |
| आशी० | क्रियात् | क्रियास्ताम् | क्रियासु |
| लृङ | अकरिष्यत् | अकरिष्यताम् | अकरिष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुरुते | कुर्वाते | कुर्वते |
| म० पु० | कुरुषे | कुर्वाथे | कुरुध्वे |
| उ० पु० | कुर्वे | कुर्वहे | कुमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुरुताम् | कुर्वाताम् | कुर्वताम् |
| म० पु० | कुरुष्व | कुर्वाथाम् | कुरुध्वम् |
| उ० पु० | करवै | करवावहै | करवामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कुर्वीत | कुर्वीयाताम् | कुर्वीरन् |
| म० पु० | कुर्वीथा | कुर्वीयाथाम् | कुर्वीध्वम् |
| उ० पु० | कुर्वीय | कुर्वीवहि | कुर्वीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकुरुत | अकुर्वाताम् | अकुर्वत |
| म० पु० | अकुरुथा | अकुर्वाथाम् | अकुरुध्वम् |
| उ० पु० | अकुर्वि | अकुर्वहि | अकुर्महि |

परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चक्रे | चक्राते | चक्रिरे |
| म० पु० | चकृषे | चक्राथे | चकृढ्वे |
| उ० पु० | चक्रे | चकृवहे | चकृमहे |
| | **सामान्यभूत—लुङ्** | | |
| प्र० पु० | अकृत | अकृषाताम् | अकृषत |
| म० पु० | अकृथा | अकृषाथाम् | अकृढ्वम् |
| उ० पु० | अकृषि | अकृष्वहि | अकृष्महि |
| लुट् | कर्त्ता | कर्त्तारौ | कर्त्तार |
| लृट् | करिष्यते | करिष्येते | करिष्यन्ते |
| आशी० | कृषीष्ट | कृषीयास्ताम् | कृषीरन् |
| लृङ् | अकरिष्यत् | अकरिष्येताम् | अकरिष्यन्त |

## (९) क्र्यादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, इस कारण इसका नाम क्र्यादिगण पडा। इसमे ६१ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच इस गण मे श्ना (ना) जोडा जाता[1] है। किन्ही प्रत्ययो के पूर्व यह 'ना' 'न' हो जाता है, और किन्ही के पूर्व 'नी'। धातु की उपधा मे यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है।

व्यञ्जनान्त धातुओ के उपरान्त आज्ञा के म० पु० एकवचन मे 'हि' प्रत्यय के स्थान मे 'आन' होता है, जैसे—मुष्+हि=मुष्+आन=मुषाण।

नीचे मुख्य धातुओ के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी क्री—खरीदना

परस्मैपद

**वर्तमान—लट**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणाति | क्रीणीत | क्रीणन्ति |
| म० पु० | क्राणासि | क्रीणीथ | क्रीणीथ |
| उ० पु० | क्रीणामि | क्रीणीव | क्रीणीम |

१ क्र्यादिभ्य श्ना।३।१।८१।

### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणातु, क्रीणीतात् | क्रीणीताम् | क्रीणन्तु |
| म० पु० | क्रीणीहि | क्रीणीतम् | क्रीणीत |
| उ० पु० | क्रीणानि | क्रीणीव | क्रीणीम |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणीयात् | क्रीणीयाताम् | क्रीणीयु |
| म० पु० | क्रीणीया | क्रीणीयातम् | क्रीणीयात |
| उ० पु० | क्रीणीयाम् | क्रीणीयाव | क्रीणीयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रीणात् | अक्रीणीताम् | अक्रीणन् |
| म० पु० | अक्रीणा | अक्रीणीतम् | अक्रीणीत |
| उ० पु० | अक्रीणाम् | अक्रीणीव | अक्रीणीम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिक्राय | चिक्रियतु | चिक्रियु |
| म० पु० | चिक्रयिथ, चिक्रेथ | चिक्रियथु | चिक्रिय |
| उ० पु० | चिक्राय, चिक्रय | चिक्रियिव | चिक्रियिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रैषीत् | अक्रैष्टाम् | अक्रैषु |
| म० पु० | अक्रैषी | अक्रैष्टम् | अक्रैष्ट |
| उ० पु० | अक्रैषम् | अक्रैष्व | अक्रैष्म |
| लुट् | क्रेता | क्रेतारौ | क्रेतार |
| लृट् | क्रेष्यति | क्रेष्यत | क्रेष्यन्ति |
| आशी० | क्रीयात् | क्रीयास्ताम् | क्रीयासु |
| लृङ् | अक्रेष्यत् | अक्रेष्यताम् | अक्रेष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणीते | क्रीणाते | क्रीणते |
| म० पु० | क्रीणीषे | क्रीणाथे | क्रीणीध्वे |
| उ० पु० | क्रीणे | क्रीणीवहे | क्रीणीमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणीताम् | क्रीणाताम् | क्रीणताम् |
| म० पु० | क्रीणीष्व | क्रीणाथाम् | क्रीणीध्वम् |
| उ० पु० | क्रीणै | क्रीणावहै | क्रीणामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रीणीत | क्रीणीयाताम् | क्रीणीरन् |
| म० पु० | क्रीणीथा | क्रीणीयाथाम् | क्रीणीध्वम् |
| उ० पु० | क्रीणीय | क्रीणीवहि | क्रीणीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रीणीत | अक्रीणाताम् | अक्रीणत |
| म० पु० | अक्रीणीथा | अक्रीणाथाम् | अक्रीणीध्वम् |
| उ० पु० | अक्रीणि | अक्रीणीवहि | अक्रीणीमहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिक्रिये | चिक्रियाते | चिक्रियिरे |
| म० पु० | चिक्रियिषे | चिक्रियाथे | चिक्रिध्वे-ढ्वे |
| उ० पु० | चिक्रिये | चिक्रियिवहे | चिक्रियिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रेष्ट | अक्रेषाताम् | अक्रेषत |
| म० पु० | अक्रेष्ठा | अक्रेषाथाम् | अक्रेढ्वम् |
| उ० पु० | अक्रेषि | अक्रेष्वहि | अक्रेष्महि |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लुट् | क्रेता | क्रेतारौ | क्रेतार |
| लृट् | क्रेष्यते | क्रेष्येते | क्रेष्यन्ते |
| आशी० | क्रेषीष्ट | क्रेषीयास्ताम् | क्रेषीरन् |
| लृङ | अक्रेष्यत | अक्रेष्येताम् | अक्रेष्यन्त |

## उभयपदी ग्रह्—लेना

### परस्मैपद

#### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णाति | गृह्णीत | गृह्णन्ति |
| म० पु० | गृह्णासि | गृह्णीथ | गृह्णीथ |
| उ० पु० | गृह्णामि | गृह्णीव | गृह्णीम |

#### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णातु | गृह्णीताम् | गृह्णन्तु |
| म० पु० | गृहाण | गृह्णीतम् | गृह्णीत् |
| उ० पु० | गृह्णानि | गृह्णाव | गृह्णाम |

#### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णीयात् | गृह्णीयताम् | गृह्णीयु |
| म० पु० | गृह्णीया | गृह्णीयातम् | गृह्णीयात |
| उ० पु० | गृह्णीयाम् | गृह्णीयाव | गृह्णीयाम |

#### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगृह्णात् | अगृह्णीताम् | अगृह्णन् |
| म० पु० | अगृह्णा | अगृह्णीतम् | अगृह्णीत |
| उ० पु० | अगृह्णाम् | अगृह्णीव | अगृह्णीम |

#### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जग्राह | जगृहतु | जगृहु |
| म० पु० | जग्रहिथ | जगृहथु | जगृह |
| उ० पु० | जग्राह, जग्रह | जगृहिव | जगृहिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अग्रहीत् | अग्रहीष्टाम् | अग्रहीषु |
| म० पु० | अग्रही | अग्रहीष्टम् | अग्रहीष्ट |
| उ० पु० | अग्रहीषम् | अग्रहीष्व | अग्रहीष्म |
| लुट् | ग्रहीता | ग्रहीतारौ | ग्रहीतार |
| लृट् | ग्रहीष्यति | ग्रहीष्यत | ग्रहीष्यन्ति |
| आशी० | गृह्यात् | गृह्यास्ताम् | गृह्यासु |
| लृङ् | अग्रहीष्यत् | अग्रहीष्यताम् | अग्रहीष्यन् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णीते | गृह्णाते | गृह्णते |
| म० पु० | गृह्णीषे | गृह्णाथे | गृह्णीध्वे |
| उ० पु० | गृह्णे | गृह्णीवहे | गृह्णीमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णीताम् | गृह्णाताम् | गृह्णताम् |
| म० पु० | गृह्णीष्व | गृह्णाथाम् | गृह्णीध्वम् |
| उ० पु० | गृह्णै | गृह्णावहै | गृह्णामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | गृह्णीत | गृह्णीयाताम् | गृह्णीरन् |
| म० पु० | गृह्णीथा | गृह्णीयाथाम् | गृह्णीध्वम् |
| उ० पु० | गृह्णीय | गृह्णीवहि | गृह्णीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अगृह्णीत | अगृंह्णीताम् | अगृह्णत |
| म० पु० | अगृह्णीथा | अगृह्णीथाम् | अगृह्णीध्वम् |
| उ० पु० | अगृह्णि | अगृह्णीवहि | अगृह्णीमहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जगृहे | जगृहाते | जगृहिरे |
| म० पु० | जगृहिषे | जगृहाथे | जगृहिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | जगृहे | जगृहिवहे | जगृहिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अग्रहीष्ट | अग्रहीषाताम् | अग्रहीषत |
| म० पु० | अग्रहीष्ठा | अग्रहीषाथाम् | अग्रहीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अग्रहीषि | अग्रहीष्वहि | अग्रहीष्महि |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | ग्रहीता |
| लृट् | प्र० पु० | एकवचन | ग्रहीष्यते |
| आशी० | प्र० पु० | एकवचन | ग्रहीषीष्ट |
| लृङ् | प्र० पु० | एकवचन | अग्रहीष्यत |

## उभयपदी ज्ञा—जानना

### परस्मैपद

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जानाति | जानीत | जानन्ति |
| म० पु० | जानासि | जानीथ | जानीथ |
| उ० पु० | जानामि | जानीव | जानीम |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जानातु, जानीतात् | जानीताम् | जानन्तु |
| म० पु० | जानीहि, जानीतात् | जानीतम् | जानीत |
| उ० पु० | जानानि | जानाव | जानाम |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जानीयात् | जानीयाताम् | जानीयु |
| म० पु० | जानीया | जानीयातम् | जानीयात |
| उ० पु० | जानीयाम् | जानीयाव | जानीयाम |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजानात् | अजानीताम् | अजानन् |
| म० पु० | अजाना | अजानीतम् | अजानीत |
| उ० पु० | अजानाम् | अजानीव | अजानीम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जज्ञौ | जज्ञतु | जज्ञु |
| म० पु० | जज्ञिथ, जज्ञाथ | जज्ञथु | जज्ञ |
| उ० पु० | जज्ञौ | जज्ञिव | जज्ञिम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अज्ञासीत् | अज्ञासिष्टाम् | अज्ञासिषु |
| म० पु० | अज्ञासी | अज्ञासिष्टम् | अज्ञासिष्ट |
| उ० पु० | अज्ञासिषम् | अज्ञासिष्व | अज्ञासिष्म |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | ज्ञाता |
| लृट् | ,, ,, | ,, ,, | ज्ञास्यति |
| आशी० | ,, ,, | ,, ,, | ज्ञेयात्, ज्ञायात् |
| लृङ् | ,, ,, | ,, ,, | अज्ञास्यत् |

## आत्मनेपदी

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जानीते | जानाते | जानते |
| म० पु० | जानीषे | जानाथे | जानीध्वे |
| उ० पु० | जाने | जानीवहे | जानीमहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जानीताम् | जानातम् | जाननाम् |
| म० पु० | जानीष्व | जानाथाम् | जानीध्वम् |
| उ० पु० | जानै | जानावहै | जानामहै |

### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु | जानीत | जानीयाताम् | जानीरन् |
| म० पु० | जानीथा | जानीयाथाम् | जानीध्वम् |
| उ० पु० | जानीय | जानीवहि | जानीमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अजानीत | अजानाताम् | अजानत |
| म० पु० | अजानीथा | अजानाथाम् | अजानीध्वम् |
| उ० पु० | अजानि | अजानीवहि | अजानीमहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जज्ञे | जज्ञाते | जज्ञिरे |
| म० पु० | जज्ञिषे | जज्ञाथे | जज्ञिध्वे |
| उ० पु० | जज्ञे | जज्ञिवहे | जज्ञिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अज्ञास्त | अज्ञासाताम् | अज्ञासत |
| म० पु० | अज्ञास्था | अज्ञासाथाम् | अज्ञाध्वम् |
| उ० पु० | अज्ञासि | अज्ञास्वहि | अज्ञास्महि |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | ज्ञाता |
| लृट् | ,, ,, | ,, ,, | ज्ञायस्ते |
| आशी० | ,, ,, | ,, ,, | ज्ञासीष्ट |
| लृङ् | ,, ,, | ,, ,, | अज्ञास्यत |

### परस्मैपदी—बन्ध्—बांधना

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बध्नाति | बध्नीत | बध्नन्ति |
| म० पु० | बध्नासि | बध्नीथ | बध्नीथ |
| उ० पु० | बध्नामि | बध्नीव | बध्नीम |

## आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बध्नातु, बध्नीतात् | बध्नीताम् | बध्नन्तु |
| म० पु० | बधान, ,, | बध्नीतम् | बध्नीत |
| उ० पु० | बध्नानि | बध्नाव | बध्नाम |

## विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बध्नीयात् | बध्नीयाताम् | बध्नीयु |
| म० पु० | बध्नीया | बध्नीयातम् | बध्नीयात |
| उ० पु० | बध्नीयाम् | बध्नीयाव | बध्नीयाम |

## अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अबध्नात् | अबध्नीताम् | अबध्नन् |
| म० पु० | अबध्ना | अबध्नीतम् | अबध्नीत |
| उ० पु० | अबध्नाम् | अबध्नीव | अबध्नीम |

## परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | बबन्ध | बबन्धतु | बबन्धु |
| म० पु० | बबन्धिथ, बबन्ध | बबन्धथु | बबन्ध |
| उ० पु० | बबन्ध | बबन्धिव | बबन्धिम |

## सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अभान्त्सीत् | अबान्धाम् | अभान्त्सु |
| म० पु० | अभान्त्सी | अबान्धम् | अबान्ध |
| उ० पु० | अभान्त्सम् | अभान्त्स्व | अभान्त्स्म |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | बन्धा |
| लृट् | ,, ,, | ,, ,, | भन्त्स्यति |
| आशी० | ,, ,, | ,, ,, | बन्ध्यात् |
| लृङ् | ,, ,, | ,, ,, | अभन्त्स्यत् |

## (१०) चुरादिगण

१५२—इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, इस कारण इसका नाम चुरादिगण पडा। धातुपाठ मे इस गण की ४११ धातुएँ पठित हैं। इसमे धातु और प्रत्यय के बीच मे अय जोड दिया जाता है,[१] तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा मे ऐसा अ हो जिसके अनन्तर सयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ—चुर्+अय+ति=चोरयति। तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति।

नीचे चुर् धातु के रूप दिये जाते है।

उभयपदी चुर्—चुराना

परस्मैपद

**वर्तमान—लट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयति | चोरयत | चोरयन्ति |
| म० पु० | चोरयसि | चोरयथ | चोरयथ |
| उ० पु० | चोरयामि | चोरयाव | चोरयाम |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयतु, चोरयतात् | चोरयताम् | चोरयन्तु |
| म० पु० | चोरय, चोरयतात् | चोरयतम् | चोरयत |
| उ० पु० | चोरयाणि | चोरयाव | चोरयाम |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयेत् | चोरयेताम् | चोरयेयु |
| म० पु० | चोरये | चोरयेतम् | चोरयेत |
| उ० पु० | चोरयेयम् | चोरयेव | चोरयेम |

१ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ।३।१।२५। अर्थात् सत्य इत्यादि प्रातिपदिको के आगे धातु के अर्थ मे तथा चुरादिगण की धातुओ के आगे स्वार्थ (अपने ही अर्थ) मे णिच् प्रत्यय (अय्) जुडता है।

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचोरयत् | अचोरयताम् | अचोरयन् |
| म० पु० | अचोरय | अचोरयतम् | अचोरयत् |
| उ० पु० | अचोरयम् | अचोरयाव | अचोरयाम |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयामास | चोरयामासतु | चोरयामासु |
| म० पु० | चोरयामासिथ | चोरयामासथ | चोरयामास |
| उ० पु० | चोरयामास | चोरयामासिव | वोरयामासिम |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयाम्बभूव | चोरयाम्बभूवतु | चोरयाम्बभूवु |
| म० पु० | चोरयाम्बभूविथ | चोरयाम्बभूवथु | चोरयाम्बभूव |
| उ० पु० | चोरयाम्बभूव | चोरयाम्बभूविव | चोरयाम्बभूविम |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयाञ्चकार | चोरयाञ्चक्रतु | चोरयाञ्चक्रु |
| म० पु० | चोरयाञ्चकथ | चोरयाञ्चक्रथु | चोरयाञ्चक्र |
| उ० पु० | { चोरयाञ्चकार<br>चोरयाञ्चकर | चोरयाञ्चकृव | चोरयाञ्चकृम |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचूचुरत् | अचूचुरताम् | अचूचुरन् |
| म० पु० | अचूचुर | अचूचुरतम् | अचूचुरत |
| उ० पु० | अचूचुरम् | अचूचुराव | अचूचुराम |
| लुट् | प्र० पु० | एकवचन | चोरियिता |
| लृट् | ,, ,, | ,, ,, | चोरयिष्यति |
| आशी० | ,, ,, | , ,, | चोर्यात् |
| लृङ् | ,, ,, | ,, ,, | अचोरयिष्यत् |

## आत्मनेपद

### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयते | चोरयेते | चोरयन्ते |
| म० पु० | चोरयसे | चोरयेथे | चोरयध्वे |
| उ० पु० | चोरये | चोरयावहे | चोरयामहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयताम् | चोरयेताम् | चोरयन्ताम् |
| म० पु० | चोरयस्व | चोरयेथाम् | चोरयध्वम् |
| उ० पु० | चोरयै | चोरयावहै | चोरयामहै |

### विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयेत | चोरयेयाताम् | चोरयेरन् |
| म० पु० | चोरयेथा | चोरयेयाथाम् | चोरयेध्वम् |
| उ० पु० | चोरयेय | चोरयेवहि | चोरयेमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचोरयत | अचोरयेताम् | अचोरयन्त |
| म० पु० | अचोरयथा | अचोरयेथाम् | अचोरयध्वम् |
| उ० पु० | अचोरये | अचोरयावहि | अचोरयामहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चोरयाञ्चक्रे | चोरयाञ्चक्राते | चोरयाञ्चक्रिरे |
| म० पु० | चोरयाञ्चकृषे | चोरयाञ्चक्राथे | चोरयाञ्चकृढ्वे |
| उ० पु० | चोरयाञ्चक्रे | चोरयाञ्चकृवहे | चोरयाञ्चकृमहे |
| | चोरयामास | इत्यादि | |
| | चोरयाम्बभूव | इत्यादि | |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचूचुरत | अचूचुरेताम् | अचूचुरन्त |
| म० पु० | अचूचुरथा | अचूचुरेथाम् | अचूचुरध्वम् |
| उ० पु० | अचूचुरे | अचूचुरावहि | अचूचुरामहि |
| लुट्— | प्र० पु० | एकवचन | चोरयिता |
| लृट्— | ,, ,, | ,, ,, | चोरयिष्यते |
| आशी०— | ,, ,, | ,, ,, | चोरयिषीष्ट |
| लृङ— | ,, ,, | ,, ,, | अचोरयिष्यत |

१५३—चुरादिगण की मुख्य-मुख्य धातुओ की सूची।

उभयपदी अर्च[1]—पूजा करना।

लट्—अर्चयति, अर्चयते। लोट्—अर्चयतु, अर्चयताम्। विधि—अर्चयेत्, अर्चयेत। लङ—आर्चयत्, आर्चयत। लिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्बभूव, अर्चयाञ्चकार, अर्चयाञ्चक्रे।

लुङ—परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आर्चिचत् | आर्चिचेताम् | आर्चिचन् |
| म० पु० | आर्चिच | आर्चिचतम् | आर्चिचत |
| उ० पु० | आर्चिचम् | आर्चिचाव | आर्चिचाम |

## आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आर्चिचत | आर्चिचेताम् | आर्चिचन्त |
| म० पु० | आर्चिचथा | आर्चिचेथाम् | आर्चिचध्वम् |
| उ० पु० | आर्चिचे | आर्चिचावहि | आर्चिचामहि |

लुट्—अर्चयिता। लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते। आशी०—अर्च्यात्, अर्चयिषीष्ट। लृङ—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत।

---

१ यह धातु भ्वादिगणी भी है। वहाँ पर यह परस्मैपदी होती है और इसके रूप अर्चति इत्यादि होते है।

अर्ज (उभयपदी—कमाना, पैदा करना) के रूप अर्च के समान चलते है।

अर्थ (आत्मनेपदी—प्राथना करना) के रूप अर्च के समान होते है। केवल सामान्यभूत (लुङ) मे भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया जाता है।

लट्—अर्थयते। लोट्—अर्थयताम्। विधि—अर्थयेत। लङ—आर्थयत। लिट्—अथयामास, अर्थयाम्बभूव, अर्थयाञ्चक्रे। लुट्—अथयिता। लृट्—अर्थयिष्यते। आशी०—अर्थयिषीट। लृङ—आथयिष्यत।

### लुङ

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | आर्तथत | आतथेताम् | आर्तथन्त |
| म० पु० | आतथथा | आतथेथाम् | आतर्थध्वम् |
| उ० पु० | आतथे | आर्तथावहि | आतथामहि |

### उभयपदी कथ् (कहना)

लट्—कथयति, कथयते। लोट्—कथयतु, कथयताम्। विधि—कथयेत्, कथयेत। लङ—अकथयत्, अकथयत। लिट्—कथयामास, कथयाम्बभूव, कथायाञ्चकार, कथयाञ्चक्रे। लुट्—कथयिता। लृट्—कथयिष्यति, कथयिष्यते। आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट। लृङ—अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत।

### लुङ—परस्मैपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचकथत् | अचकथताम् | अचकथन् |
| म० पु० | अचकथ | अचकथतम् | अचकथत् |
| उ० पु० | अचकथम् | अचकथाव | अचकथाम |

### आत्मनेपद

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचकथत | अचकथेताम् | अचकथन्त |
| म० पु० | अचकथथा | अचकथेथाम् | अचकथध्वम् |
| उ पु० | अचकथे | अचकथावहि | अचकथामहि |

उभयपदी **क्षल्** (धोना, साफ करना)

लट्—क्षालयति, क्षालयते। लिट्—क्षालयामास, क्षालयाम्बभूव, क्षालयाञ्चकार, क्षालयाञ्चक्रे। लुट्—क्षालयिता। लृट्—क्षालयिष्यति, क्षालयिष्यते। आशी०—क्षाल्यात्, क्षालयिषीष्ट। लृङ—अक्षालयिष्यत्, अक्षलयिष्यत। लुङ—अचिक्षलत्, अचिक्षलताम्, अचिक्षलन्। अचिक्षल, अचिक्षलतम्, अचिक्षलत। अचिक्षलम्, अचिक्षलाव, अचिक्षलाम। आत्मनेपद मे—अचिक्षलत, अचिक्षलेताम्, अचिक्षवन्त इत्यादि।

उभयपदी **गण्** (गिनना)

लट्—गणयति, गणयते। लिट्—गणयाम्बभूव, गणयामास, गणयाञ्चकार, गणयाञ्चक्रे। लुङ—अजीगणत्, अजीगणताम्, अजीगणन् तथा अजगणत् अजगणताम्, अजगणन्। अजीगणत, अजीगणेताम्, अजीगणन्त तथा अजगणत, अजगणेताम्, अजगणन्त। लुट्—गणयिता। लृट्—गणयिष्यति, गणयिष्यते। आशी०—गण्यात्, गणयिषीष्ट। लृङ—गणयिष्यत्, अगणयिष्यत।

उभयपदी **चिति**[1] (विचारना)

लट्—चिन्तयति, चिन्तयते। लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्बभूव, चिन्तयाञ्चकार, चिन्तयाञ्चक्रे। लुङ—अचिचिन्तत्, अचिचिन्तताम्, अचिचिन्तन्। अचिचिन्तत, अचिचिन्तेताम्, अचिचिन्तन्त। लुट्—चिन्तयिता। लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते। आशी०—चिन्त्यात्, चिन्तयिषीष्ट। लृट्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तियिष्यत।

उभयपदी **तड्** (मारना)

लट्—ताडयति, ताडयते। लिट्—ताडयामास, ताडयाम्बभूव, ताडयाञ्चकार, ताडयाञ्चक्रे। लुङ—अतीतडत्, अतीतडताम्, अतीतडन्। अतीतडत, अतीतडेताम्, अतीतडन्त। लुट्—ताडयिता। लृट्—ताडयिष्यति, ताडयिष्यते। आशी०—ताड्यात्, ताडयिषीष्ट।

---

१ चिन्त के स्थान मे इकारान्त चिति पाठ नुमागम के अतिरिक्त यह चित करने के लिए किया गया है कि यह धातु विकल्प से णिजन्त होती है। णिच न लगने पर इसके रूप चिन्तति, चिन्तत इत्यादि होते हे। 'चिन्त' इति पठितव्ये इदित्करण णिच पाक्षिकत्वे लिङ्गम्—सि० कौ०।

### उभयपदी तप् (गरम करना)

तप् के रूप सर्वथा तड् के समान होते हैं। तापयति-तापयते इत्यादि।

### उभयपदी तुल् (तौलना)

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि। लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे। लुङ—अतूतुलत्, अतूतुलताम्, अतूतुलन्। अतूतुलत, अतूतुलेताम्, अतूतुलन्त। लट्—तोलयिता। लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आशी०—तोल्यात्, तोलयिषीष्ट।

### उभयपदी दण्ड् (दण्ड देना)

लट्—दण्डयति, दण्डयते। लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चक्रे, दण्डयामास, दण्डयाम्बभूव। लुङ—अददण्डत्, अददण्डताम्, अददण्डन्। अददण्डत, अददण्डेताम् अददण्डन्त। लुट्—दण्डयिता। लृट्—दण्डयिष्यति, दण्डयिष्यत। आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट।

उ० पा—(पालना, रक्षा करना) लुङ—अपीपलत्, अपीपलत।

उ० पीड्—(दुःख देना) ,, —अपिपीडत्, अपिपीडत, अपीपिडत्, अपीपिडत।

उ० पूज्—(पूजा करना) ,, —अपूपुजत्, अपूपुजत।

### उभयपदी प्री (खुश करना)

लट्—प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि। लुङ—अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत।

### आत्मनेपदी भर्त्स् (धमकाना, डाटना)

लट्—भर्त्सयते। लिट्—भर्त्सयाञ्चक्रे। लुङ—अबभर्त्सत, अबभर्त्सेताम्, अबभर्त्सन्त। अबभर्त्सथा, अबभर्त्सेथाम्, अबभर्त्सध्वम्। अबभर्त्से, अबभर्त्सावहि, अबभर्त्सामहि। लुट्—भर्त्सयिता। लृट्—भर्त्सयिष्यते। आशी०—भर्त्सयिषीष्ट।

### उभयपदी भक्ष् (खाना)

लट्—भक्षयति, भक्षयते। लिट्—भक्षयामास, भक्षयाम्बभूव, भक्षयाञ्चकार, भक्षयाञ्चक्रे। लुङ—अबभक्षत्, अबभक्षत। लुट्—भक्षयिता। लृट्—भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यते। आशी०—भक्ष्ययिषीष्ट।

### उभयपदी भूष् (सजाना)

लट्—भूषयति, भूषयते। लिट्—भूषयामास, भूषयाम्बभूव, भूषयाञ्चकार, भूषयाञ्चक्रे। लुङ—अबुभूषत्, अबुभूषत। लुट्—भूषयिता। लृट्—भूषयिष्यति, भूषयिष्यते। आशी०—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट।

### आ० मन्त्रि[1] (सलाह करना या देना)

लट्—मन्त्रयते। लिट्—मन्त्रयाञ्चक्रे। लुङ—अममन्त्रत, अममन्त्रेताम्, अममन्त्रन्त। अममन्त्रथा, अममन्त्रेथाम्, अममन्त्रध्वम्। अममन्त्रे, अममन्त्रावहि, अममन्त्रामहि। लुट्—मन्त्रयिता। लृट्—मन्त्रयिष्यते। आशी०—मन्त्रयिषीष्ट।

### उभयपदी मार्ग् (खोजना)

लट्—मार्गयति, मार्ग्यते। लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मार्गयाञ्चकार, मार्गयाञ्चक्रे। लुङ—अममार्गत्, अममार्गत। लुट्—मार्गयिता। लृट्—मार्गयिष्यति, मार्गयिष्यते। आशी०—मार्ग्यात्, मार्गयिषीष्ट।

### मार्ज्[2] (शुद्ध करना, पोछना)

लट्—मार्जयति, मार्जयते। लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार, मार्जयाञ्चक्रे। लुङ—अममार्जत्, अममार्जत। लुट्—मार्जयिता। लृट्—मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते। आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट।

### परस्मैपदी मान[3] (आदर करना)

लट्—मानयति। लिट्—मानयाञ्चकार। लुङ—अमीमनत्, अमीमनताम्, अमीमनन्।

---

१ इकारान्त पाठ होने से यह भी 'चिति' की भाँति अणिजन्त होती है और तब मन्त्रति इत्यादि रूप होते है।

२ मार्ज और मृजू दोनो हो धातुएँ चुरादिगण की हैं। मार्ज 'शब्द करने' क अर्थ मे होती है और मृजू शुद्ध करना, अलकृत करना इत्यादि अर्थ मे होती है, जैसा कि भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी मे लिखा है —'मृज्', शौचालङ्कारयो।' मृजू अणिजन्त मे होती है, तब इसके रूप मार्जति इत्यादि होते है।

३ यह अणिजन्त भी होती है। तब इसके रूप मानति इत्यादि होते है। 'स्तम्भन' अर्थ मे यह आत्मनेपदी भी होती है और मान्यते इत्यादि इसके रूप होते हैं।

### उभयपदी रच् (बनाना)

लट्—रचयति, रचयते। लुङ—अररचत्, अररचत। लुट्—रचयिता। लृट्—रचयिष्यति, रचयिष्यते। आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट।

### उभयपदी वर्ण् (वर्णन करना या रँगना)

लट्—वर्णयति, वर्णयते। लुङ—अववर्णत्, अववर्णत। लुट्—वर्णयिता। लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते। आशी०—वर्ण्यात्, अवर्णयिषीष्ट।

### आत्मनेपदी वञ्च् (धोखा देना)

लट्—वञ्चयते। लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्बभूव, वञ्चयाञ्चक्रे। लुङ—अववञ्चत, अववञ्चेताम्, अववञ्चन्त। लुट्—वञ्चयिता। लृट्—वञ्चयिष्यते। आशी०—वञ्चयिषीष्ट।

### उभयपदी वृज् (छोडना, निकालना)

लट्—वर्जयति, वर्जयते। लुङ—अवीवृजत् अवीवृजताम्, अवीवृजन्। अववर्जत्, अववर्जताम्, अववर्जन्। अवीवृजत, अवीवजेताम्, अवीवृजन्त। अववर्जत, अववर्जेताम्, अववर्जन्त।

### उभयपदी स्पृह् (चाहना)

लट्—स्पृहयति, स्पृहयते। लिट्—स्पृहयामास, स्पृहयाम्बभूव, स्पृहयाञ्चकार, स्पृहयाञ्चक्रे। लुङ—अपस्पृहत्, अपस्पृहेताम्, अपस्पृहन्। अपस्पृहत, अपस्पृहेताम्, अपम्पृहन्त। लुट्—स्पृहयिता। लृट्—स्पृहयिष्यति, स्पृहयिष्यते, आशी०—स्पृहयिषीष्ट।

---

# दशम सोपान

## क्रिया-विचार (उत्तरार्ध)

१५४—ऊपर (सेक्सन १३५ मे) कह चुके है कि सस्कृत म तीन वाच्य होते है—कर्तृवाच्य, कमवाच्य और भाववाच्य। धातुओ के कर्तृवाच्य के रूप दसो गणो के सभी लकारो मे पिछले सोपान मे दिखाये जा चुके है। यह भी बताया जा चुका है कि कर्मवाच्य केवल सकमक धातुओ मे और भाववाच्य केवल अकमक धातुओ मे हो सकता है। इन दोनो वाच्यो के रूप केवल आत्मनेपद मे होते है[1], धातु चाहे जिस पद की हो। आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसो लकारो के हैं, वे ही प्रत्यय जोडे जाते है। कमवाच्य तथा भाववाच्य के रूप बनाते समय नीचे लिखे नियमो का पालन किया जाता है—

(१) धातु और प्रत्ययो के बीच मे सार्वधातुक लकारो मे यक् (य) जोडा जाता है, जैसे—भिद् और ते के बीच मे य जोड कर भिद्यते रूप बनता है।

(२) धातु मे यक् के पूर्व कोई विकार नही होता, जैसे गम्+य+ते= गम्यते। कर्तृवाच्य मे सार्वधातुक लकारो मे धातुओ के स्थान मे धात्वादेश (जैसे गम् का गच्छ) नही होता। इसी प्रकार गुण और वृद्धि भी नही होती।

(३) दा, दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा, सो और हा धातुओ का अन्तिम स्वर ई मे बदल जाता है, जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, गीयते, सीयते, हीयते। और धातुओ का वैसे ही रहता है, जैसे—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते। बहुत-सी धातुओ के बीच का अनुस्वार कमवाच्य के रूपो मे निकाल दिया जाता है, जैसे—बन्ध् से बध्यते, शस् से शस्यते इन्ध् से इध्यते।

(४) अन्य छ लकारो म कमवाच्य तथा भाववाच्य म कतृवाच्य (आत्मनेपद) के रूप होते है, जैसे—परोक्षभूत म—निन्ये, बभूवे, जज्ञे आदि,

---

१ भावकर्मणो ।१।३।१३।

अथवा कृ धातु के रूप जोड कर, जैसे—ईक्षाञ्चक्रे, अथवा अस् धातु के रूप लगाकर, कथयामासे आदि।

(५) स्वरान्त धातुओ के तथा हन्, ग्रह्, दृश् धातुओ के दोनो भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ मे वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययो के पूर्व इ जोडकर बनते हैं, जैसे—दा से दायिता अथवा दाता। दायिष्यते अथवा दास्यते। अदायिष्यत अथवा अदास्यत। दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट।

(क) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं। जैसा ऊपर नवे सोपान मे बता चुके हैं, कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन मे कर्म के अनुसार होते हैं। भाववाच्य का अर्थ है—केवल किसी क्रिया का होना दिखाना। यह सदा प्रथम पुरुष एकवचन मे होता है, कर्त्ता के अनुसार इसके रूप नही बदलते, जैसे—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तै भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्या भूयते, युष्माभि भूयते, मया भूयते, आवाभ्या भूयते, अस्माभि भूयते। इसी प्रकार भूयताम्, भूयात, अभूयत।

१५५—मुख्य धातुओ के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप।

पठ्—लट्—पठ्यते, पठ्येते, पठ्यन्ते। लोट्—पठ्यताम्, पठ्येताम् पठ्यन्ताम्। विधि०—पठ्येत्, पठ्येयाताम्, पठ्येरन्। लङ—अपठ्यत, अपठ्येताम्, अपठ्यन्त। लिट्—पेठे, पेठाते, पेठिरे। लुङ—अपाठि, अपाठिषाताम्, अपाठिषत। लुट्—पठिता, पठितारौ, पठितार। पठितासे। लृट्—पठिष्यते। आशी०—पठिषीष्ट।

मुच्—लट्—मुच्यते, मुच्येते, मुच्यन्ते। लोट्—मुच्यताम्, मुच्येताम्, मुच्यन्ताम्। विधि—मुच्येत, मुच्येयाताम्, मुच्येरन्। लङ—अमुच्यत, अमुच्येताम्, अमुच्यन्त।

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लिट् | मुमुचे | मुमुचाते | मुमुचिरे |
| | मुमुचिषे | मुमुचाथे | मुमुचिध्वे |
| | मुमुचे | मुमुचिवहे | मुमुचिमहे |

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| लुङ् | अमोचि | अमुक्षाताम् | अमुक्षत |
| | अमुक्था | अमुक्षाथाम् | अमुग्ध्वम् |
| | अमुक्षि | अमुक्ष्वहि | अमुक्ष्महि |
| लुट् | मोक्ता | मोक्तारौ | मोक्तार |
| लृट् | मोक्ष्यते | मोक्ष्येते | मोक्ष्यन्ते |
| आशी० | मुक्षीष्ट | मुक्षीयास्ताम् | मुक्षीरन् |
| लृङ् | अमोक्ष्यत | अमोक्ष्येताम् | अमोक्ष्यन्त |

### सकर्मक दा—कर्मवाच्य

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीयते | दीयेते | दीयन्ते |
| म० पु० | दीयसे | दीयेथे | दीयध्वे |
| उ० पु० | दीये | दीयावहे | दीयामहे |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीयताम् | दीयेताम् | दीयन्ताम् |
| म० पु० | दीयस्व | दीयेथाम् | दीयध्वम् |
| उ० पु० | दीयै | दीयावहै | दीयामहै |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दीयेत | दीयेयाताम् | दीयेरन् |
| म० पु० | दीयेथा | दीयेयाथाम् | दीयेध्वम् |
| उ० पु० | दीयेय | दीयेवहि | दीयेमहि |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदीयत | अदीयेताम् | अदीयन्त |
| म० पु० | अदीयथा | अदीयेथाम् | अदीयध्वम् |
| उ० पु० | अदीये | अदीयावहि | अदीयामहि |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ददे | ददाते | ददिरे |
| म० पु० | ददिषे | ददाथ | ददिध्वे |
| उ० पु० | ददे | ददिवहे | ददिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदायि | अदायिषाताम्<br>अदिषाताम् | अदायिषत<br>अदिषत |
| म० पु० | अदायिष्ठा<br>आदिथा | अदायिषाथाम्<br>अदिषाथाम् | अदायिध्वम्<br>अदिध्वम् |
| उ० पु० | अदायिषि<br>अदिषि | अदायिष्वहि<br>अदिष्वहि | अदायिष्महि<br>अदिष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दाता | दातारौ | दातार |
| म० पु० | दातासे | दातासाथे | दाताध्वे |
| उ० पु० | दाताहे | दातास्वहे | दातास्महे |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दायिता | दायितारौ | दायितार |
| म० पु० | दायितासे | दायितासाथे | दायिताध्वे |
| उ० पु० | दायिताहे | दायितास्वहे | दायितास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दास्यते | दास्येते | दास्यन्ते |
| म० पु० | दास्यसे | दास्येथे | दास्यध्वे |
| उ० पु० | दास्ये | दास्यावहे | दास्यामहे |

### अथवा

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दायिष्यते | दायिष्येते | दायिष्यन्ते |
| म० पु० | दायिष्यसे | दायिष्येथे | दायिष्यध्वे |
| उ० पु० | दायिष्ये | दायिष्यावहे | दायिष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दासीष्ट | दासीयास्ताम् | दासीरन् |
| म० पु० | दासीष्ठा | दासीयास्थाम् | दासीध्वम् |
| उ० पु० | दासीय | दासीवहि | दासीमहि |

**अथवा**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | दायिषीष्ट | दायिषीयास्ताम् | दायिषीरन् |
| म० पु० | दायिषीष्ठा | दायिषीयास्थाम् | दायिषीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | दायिषीय | दायिषीवहि | दायिषीमहि |

**क्रियातिपत्ति—लृङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदास्यत | अदास्येताम् | अदास्यन्त |
| म० पु० | अदास्यथा | अदास्येथाम् | अदास्यध्वम् |
| उ० पु० | अदास्ये | अदास्यावहि | अदास्यामहि |

**अथवा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अदायिष्यत | अदायिष्येताम् | अदायिष्यन्त |
| म० पु० | अदायिष्यथा | अदायिष्येथाम् | अदायिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अदायिष्ये | अदायिष्यावहि | अदायिष्यामहि |

पा—लट्—पीयते, पीयेते, पीयन्ते। पीयसे, पीयेथे, पीयध्वे। पीये, पीयावहे, पीयामहे। लोट्—पीयताम्, पीयेताम्, पीयन्ताम्। पीयस्व, पीयेथाम्, पीयध्वम्। पीयै, पीयावहै, पीयामहै। विधि—पीयेत, पीयेयाताम्, पीयेरन्। पीयेथा, पीयेयाथाम् पीयेध्वम्। पीयेय, पीयेवहि, पीयेमहि। लङ—अपीयत, अपीयेताम्, अपीयन्त। अपीयथा, अपीयेथाम्, अपीयध्वम्। अपीये, अपीयावहि, अपीयामहि। लिट्—पपे, पपाते, पपिरे। पपिषे, पपाथे, पपिध्वे। पपे, पपिवहे, पपिमहे। लुङ—अपायि, अपायिषाताम्, अपायिषत। अपायिष्ठा, अपायिषाथाम्, अपायिध्वम्। अपायिषि, अपायिष्वहि, अपायिष्महि। लुट्—पाता, पातारौ, पातार। लृट्—पास्यते, पास्येते, पास्यन्ते। आशी०—पासीष्ट। लृङ—अपास्यत।

**अकर्मक स्था—भाववाच्य**

स्थीयते, स्थीयेते, स्थीयन्ते, इत्यादि। लोट्—स्थीयताम्। विधि—स्थीयेत। लङ—अस्थीयत, अस्थीयेताम्, अस्थीयन्त। लिट्—तस्थे, तस्थाते, तस्थिरे। तस्थिषे, तस्थाथे तस्थिध्वे। तस्थे, तस्थिवहे, तस्थिमहे। लुङ—

अस्थायि, अस्थायिषाताम्, अस्थायिषत। अस्थायिष्ठा, अस्थायिषाथाम्, अस्थायिड्ढ्वम्। अस्थायिषि, अस्थायिष्वहि, अस्थायिष्महि। लुट्—स्थाता। लृट्—स्थास्यते। आशी०—स्थासीष्ट।

हा—हीयते इत्यादि। लिट्—जहे, जहाते, जहिरे। लुङ्—अहायि, अहायिषाताम्, अहायिषत इत्यादि।

### सकर्मक ज्ञा—कर्मवाच्य

#### वर्तमान—लट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञायते | ज्ञायेते | ज्ञायन्ते |
| म० पु० | ज्ञायसे | ज्ञायेथे | ज्ञायध्वे |
| उ० पु० | ज्ञाये | ज्ञायावहे | ज्ञायामहे |

#### आज्ञा—लोट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञायताम् | ज्ञायेताम् | ज्ञायन्ताम् |
| म० पु० | ज्ञायस्व | ज्ञायेथाम् | ज्ञायध्वम् |
| उ० पु० | ज्ञायै | ज्ञायावहै | ज्ञायामहै |

#### विधिलिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञायेत | ज्ञायेयाताम् | ज्ञायेरन् |
| म० पु० | ज्ञायेथा | ज्ञायेयाथाम् | ज्ञायेध्वम् |
| उ० पु० | ज्ञायेय | ज्ञायेवहि | ज्ञायेमहि |

#### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अज्ञायत | अज्ञायताम् | अज्ञायन्त |
| म० पु० | अज्ञायथा | अज्ञायेथाम् | अज्ञायध्वम् |
| उ० पु० | अज्ञाये | अज्ञायावहि | अज्ञायामहि |

#### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | जज्ञे | जज्ञाते | जज्ञिरे |
| म० पु० | जज्ञिषे | जज्ञाथे | जज्ञिध्वे |
| उ० पु० | जज्ञे | जज्ञिवहे | जज्ञिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अज्ञायि | अज्ञायिषाताम्<br>अज्ञासाताम् | अज्ञायिषत<br>अज्ञासत |
| म० पु० | अज्ञायिष्ठा<br>अज्ञास्था | अज्ञायिषाथाम्<br>अज्ञासाथाम् | अज्ञायिध्वम्<br>अज्ञाध्वम् |
| उ० पु० | अज्ञायिषि<br>अज्ञासि | अज्ञायिष्वहि<br>अज्ञास्वहि | अज्ञायिष्महि<br>अज्ञास्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञाता<br>ज्ञायिता | ज्ञातारौ<br>ज्ञायितारौ | ज्ञातार<br>ज्ञायितार |
| म० पु० | ज्ञातासे<br>ज्ञायितासे | ज्ञातासाथे<br>ज्ञायितासाथे | ज्ञाताध्वे<br>ज्ञायिताध्वे |
| उ० पु० | ज्ञाताहे<br>ज्ञायिताहे | ज्ञातास्वहे<br>ज्ञायितास्वहे | ज्ञातास्महे<br>ज्ञायितास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञास्यते<br>ज्ञायिष्यते | ज्ञास्येते<br>ज्ञायिष्येते | ज्ञास्यन्ते<br>ज्ञायिष्यन्ते |
| म० पु० | ज्ञास्यसे<br>ज्ञायिष्यसे | ज्ञास्येथे<br>ज्ञायिष्येथे | ज्ञास्यध्वे<br>ज्ञायिष्यध्वे |
| उ० पु० | ज्ञास्ये<br>ज्ञायिष्ये | ज्ञास्यावहे<br>ज्ञायिष्यावहे | ज्ञास्यामहे<br>ज्ञायिष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | ज्ञासीष्ट | ज्ञासीयास्ताम् | ज्ञासीरन् |
| | ज्ञायिषीष्ट | ज्ञायिषीयास्ताम् | ज्ञायिषीरन् |
| म० पु० | ज्ञासीष्ठा | ज्ञासीयास्थाम् | ज्ञासीध्वम् |
| | ज्ञायिषीष्ठा | ज्ञायिषीयास्थाम् | ज्ञायिषीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | ज्ञासीय | ज्ञासीवहि | ज्ञासीमहि |
| | ज्ञायिषीय | ज्ञायिषीवहि | ज्ञायिषीमहि |

### क्रियातिपत्ति—लृङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अज्ञास्यत | अज्ञास्येताम् | अज्ञास्यन्त |
| | अज्ञायिष्यत | अज्ञायिष्येताम् | अज्ञायिष्यन्त |
| म० पु० | अज्ञास्यथा | अज्ञास्येथाम् | अज्ञास्यध्वम् |
| | अज्ञायिष्यथा | अज्ञायिष्येथाम् | अज्ञायिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अज्ञास्ये | अज्ञास्यावहि | अज्ञास्यामहि |
| | अज्ञायिष्ये | अज्ञायिष्यावहि | अज्ञायिष्यामहि |

ध्यै—लट्—ध्यायते, ध्यायेते, ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम्, ध्यायेताम्, ध्यायन्ताम्। विधि०—ध्यायेत, ध्यायेयाताम्, ध्यायेरन्। लङ—अध्यायत, अध्यायेताम्, अध्यायन्त। लिट्—दध्ये, दध्याते, दध्यिरे। लुङ—अध्यायि, अध्यायिषाताम्-अध्यासाताम्, अध्यायिषत-अध्यासत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

### सकमक चि—कमवाच्य

### वर्तमान—लट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चीयते | चीयेते | चीयन्ते |
| म० पु० | चीयसे | चीयेथे | चीयध्वे |
| उ० पु० | चीये | चीयावहे | चीयामहे |

### आज्ञा—लोट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चीयताम् | चीयेताम् | चीयन्ताम् |
| म० पु० | चीयस्व | चीयेथाम् | चीयध्वम् |
| उ० पु० | चीयै | चीयावहै | चीयामहै |

### विधिलिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चीयेत | चीयेयाताम् | चीयेरन् |
| म० पु० | चीयेथा | चीयेयाथाम् | चीयेध्वम् |
| उ० पु० | चीयेय | चीयेवहि | चीयेमहि |

**अनद्यतनभूत—लङ्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचीयत | अचीयेताम् | अचीयन्त |
| म० पु० | अचीयथा | अचीयेथाम् | अचीयध्वम् |
| उ० पु० | अचीये | अचीयावहि | अचीयामहि |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चिक्ये | चिक्याते | चिक्यिरे |
| म० पु० | चिक्यिषे | चिक्याथे | चिक्यिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | चिक्ये | चिक्यिवहे | चिक्यिमहे |

**सामान्यभूत—लुङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचायि | अचायिषाताम्<br>अचेषाताम् | अचायिषत<br>अचेषत |
| म० पु० | अचायिष्ठा<br>अचेष्ठा | अचायिषाथाम्<br>अचेषाथाम् | अचायिध्वम्, ढ्वम्<br>अचेध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | अचायिषि<br>अचेषि | अचायिष्वहि<br>अचेष्वहि | अचायिष्महि<br>अचेष्महि |

**अनद्यतनभविष्य—लुट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चेता<br>चायिता | चेतारौ<br>चायितारौ | चेतारः<br>चायितारः |
| म० पु० | चेतासे<br>चायितासे | चेतासाथे<br>चायितासाथे | चेताध्वे<br>चायिताध्वे |
| उ० पु० | चेताहे<br>चायिताहे | चेतास्वहे<br>चायितास्वहे | चेतास्महे<br>चायितास्महे |

**सामान्यभविष्य—लृट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चेष्यते<br>चायिष्यते | चेष्येते<br>चायिष्येते | चेष्यन्ते<br>चायिष्यन्ते |
| म० पु० | चेष्यसे<br>चायिष्यसे | चेष्येथे<br>चायिष्येथे | चेष्यध्वे<br>चायिष्यध्वे |
| उ० पु० | चेष्ये<br>चायिष्ये | चेष्यावहे<br>चायिष्यावहे | चेष्यामहे<br>चायिष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चेषीष्ट | चेषीयास्ताम् | चेषीरन् |
| | चायिषीष्ट | चायिषीयास्ताम् | चायिषीरन् |
| म० पु० | चेषीष्ठा | चेषीयास्थाम् | चेषीढ्वम् |
| | चायिषीष्ठा | चायिषीयास्थाम् | चायिषीध्वम्, ढ्वम् |
| पु० | चेषीय | चेषीवहि | चेषीमहि |
| | चायिषीय | चायिषीवहि | चायिषीमहि |

### लृङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अचेष्यत | अचेष्येताम् | अचेष्यन्त |
| | अचायिष्यत | अचायिष्येताम् | अचायिष्यन्त |
| म० पु० | अचेष्यथा | अचेष्येथाम् | अचेष्यध्वम् |
| | अचायिष्यथा | अचायिष्येथाम् | अचायिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अचेष्ये | अचेष्यावहि | अचेष्यामहि |
| | अचायिष्ये | अचायिष्यावहि | अचायिष्यामहि |

**जि**—लट्—जीयते, जीयेते, जीयन्ते। लोट्—जीयताम्, जीयेताम्, जीयन्ताम्। विधि०—जीयेत, जीयेयाताम्, जीयेरन्। लङ—अजीयत, अजीयेताम्, अजीयन्त। लिट्—जिग्ये, जिग्याते, जिग्यिरे। जिग्यिषे, जिग्याथे, जिग्यिध्वे। जिग्ये, जिग्यिवहे, जिग्यिमहे। लुङ—अजायि, अजायिषाताम्-अजेषाताम्, अजायिषत-अजेषत। अजायिष्ठा-अजेष्ठा अजायिषाथाम्-अजेषाथाम्, अजायिढ्वम्-अजेढ्वम्। अजायिषि-अजेषि, अजायिष्वहि अजेष्वहि, अजायिष्महि-अजेष्महि। लुट्—जेता-जयिता। लृट्—जेष्यते-जायिष्यते। आशी०—जेषीष्ट-जायिषीष्ट। लृङ—अजेष्यत-अजायिष्यत।

**श्रि**—लट्—श्रीयते, श्रीयेते, श्रीयन्ते। लोट्—श्रीयताम्, श्रीयेताम्, श्रीयन्ताम्। विधि०—श्रीयेत। लङ—अश्रीयत, अश्रीयेताम्, अश्रीयन्त। लिट्—शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे। शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्वे-ढ्वे। शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे। लुङ—अश्रायि,

अश्रायिषाताम्-अश्रयिषाताम्, अश्रायिषत-अश्रयिषत। अश्रायिष्ठा-अश्रयिष्ठा, अश्रायिषाथाम्-अश्रयिषाथाम्, अश्रायिष्वम्, ढ्वम्, अश्रयिष्वम्-अश्रयिढ्वम्। अश्रायिषि-अश्रयिषि, अश्रायिष्वहि-अश्रयिष्वहि, अश्रायिष्महि-अश्रयिष्महि। लुट्—श्रयिता, श्रायिता। लृट्—श्रयिष्यते-श्रायिष्यते। आशी०—श्रयिषीष्ट-श्रायिषीष्ट। लृङ—अश्रयिष्यत-अश्रायिष्यत।

सकर्मक नी—कर्मवाच्य

**वर्तमान—लट्**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नीयते | नीयेते | नीयन्ते |
| म० पु० | नीयसे | नीयेथे | नीयध्वे |
| उ० पु० | नीये | नीयावहे | नीयामहे |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नीयताम् | नीयेताम् | नीयन्ताम् |
| म० पु० | नीयस्व | नीयेथाम् | नीयध्वम् |
| उ० पु० | नीयै | नीयावहै | नीयामहै |

**विधिलिङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नीयेत | नीयेयाताम् | नीयेरन् |
| म० पु० | नीयेथा | नीयेयाथाम् | नीयेध्वम् |
| उ० पु० | नीयेय | नीयेवहि | नीयेमहि |

**अनद्यतनभूत—लङ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनीयत | अनीयेताम् | अनीयन्त |
| म० पु० | अनीयथा | अनीयेथाम् | अनीयध्वम् |
| उ० पु० | अनीये | अनीयावहि | अनीयामहि |

**परोक्षभूत—लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | निन्ये | निन्याते | निन्यिरे |
| म० पु० | निन्यिषे | निन्याथे | निन्यिध्वे, ढ्वे |
| उ० पु० | निन्ये | निन्यिवहे | निन्यिमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनायि | अनायिषाताम्<br>अनेषाताम् | अनायिषत<br>अनेषत |
| म० पु० | अनायिष्ठा<br>अनेष्ठा | अनायिषाथाम्<br>अनेषाथाम् | अनायिध्वम्, ढ्वम<br>अनेढ्वम् |
| उ० पु० | अनायिषि<br>अनेषि | अनायिष्वहि<br>अनेष्वहि | अनायिष्महि<br>अनेष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेता | नेतारौ | नेतार |
| म० पु० | नेतासे | नेतासाथे | नेताध्वे |
| उ० पु० | नेताहे | नेतास्वहे | नेताम्महे |

तथा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नायिता | नायितारौ | नायितार |
| म० पु० | नायितासे | नायितासाथे | नायिताध्वे |
| उ० पु० | नायिताहे | नायितास्वहे | नायितास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेष्यते | नेष्येते | नेष्यन्ते |
| म० पु० | नेष्यसे | नेष्येथे | नेष्यध्वे |
| उ० पु० | नेष्ये | नेष्यावहे | नेष्यामहे |

तथा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नायिष्यते | नायिष्येते | नायिष्यन्ते |
| म० पु० | नायिष्यसे | नायिष्येथे | नायिष्यध्वे |
| उ० पु० | नायिष्ये | नायिष्यावहे | नायिष्यामहे |

### आशीर्लिङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नेषीष्ट | नेषीयास्ताम् | नेषीरन् |
| म० पु० | नेषीष्ठा | नेषीयास्थाम् | नेषीढ्वम |
| पु० | नेषीय | नेषीवहि | नेषीमहि |

**तथा**

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | नायिषीष्ट | नायिषीयास्ताम् | नायिषीरन् |
| म० पु० | नायिषीष्ठा | नायिषीयास्थाम् | नायिषीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | नायिषीय | नायिषीवहि | नायिषीमहि |

**क्रियातिपत्ति—लृङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनेष्यत | अनेष्येताम् | अनेष्यन्त |
| म० पु० | अनेष्यथा | अनेष्येथाम् | अनेष्यध्वम् |
| उ० पु० | अनेष्ये | अनेष्यावहि | अनेष्यामहि |

**तथा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अनायिष्यत | अनायिष्येताम् | अनायिष्यन्त |
| म० पु० | अनायिष्यथा | अनायिष्येथाम् | अनायिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अनायिष्ये | अनायिष्यावहि | अनायिष्यामहि |

**सकर्मक कृ—कर्मवाच्य**

**वर्तमान—लट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रियते | क्रियेते | क्रियन्ते |
| म० पु० | क्रियसे | क्रियेथे | क्रियध्वे |
| उ० पु० | क्रिये | क्रियावहे | क्रियामहे |

**आज्ञा—लोट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रियताम् | क्रियेताम् | क्रियन्ताम् |
| म० पु० | क्रियस्व | क्रियेथाम् | क्रियध्वम् |
| उ० पु० | क्रियै | क्रियावहै | क्रियामहै |

**विधिलिङ्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | क्रियेत | क्रियेयाताम् | क्रियेरन् |
| म० पु० | क्रियेथा | क्रियेयाथाम् | क्रियेध्वम् |
| उ० पु० | क्रियेय | क्रियेवहि | क्रियेमहि |

### अनद्यतनभूत—लङ्

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अक्रियत | अक्रियेताम् | अक्रियन्त |
| म० पु० | अक्रियथा | अक्रियेथाम् | अक्रियध्वम् |
| उ० पु० | अक्रिये | अक्रियावहि | अक्रियामहि |

### परोक्षभूत—लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | चक्रे | चक्राते | चक्रिरे |
| म० पु० | चकृषे | चक्राथे | चकृढ्वे |
| उ० पु० | चक्रे | चकृवहे | चकृमहे |

### सामान्यभूत—लुङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकारि | अकारिषाताम् | अकारिषत |
| | | अकृषाताम् | अकृषत |
| म० पु० | अकारिष्ठा | अकारिषाथाम् | अकारिध्वम्, ढ्वम् |
| | अकृथा | अकृषाथाम् | अकृढ्वम् |
| उ० पु० | अकारिषि | अकारिष्वहि | अकारिष्महि |
| | अकृषि | अकृष्वहि | अकृष्महि |

### अनद्यतनभविष्य—लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कर्त्ता | कर्तारौ | कर्तार |
| | कारिता | कारितारौ | कारितार |
| म० पु० | कर्तासि | कर्तासाथे | कर्ताध्वे |
| | कारितासे | कारितासाथे | कारिताध्वे |
| उ० पु० | कर्ताहि | कर्तास्वहे | कर्तास्महे |
| | कारिताहे | कारितास्वहे | कारितास्महे |

### सामान्यभविष्य—लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | करिष्यते | करिष्येते | करिष्यन्ते |
| म० पु० | करिष्यसे | करिष्येथे | करिष्यध्वे |
| उ० पु० | करिष्ये | करिष्यावहे | करिष्यामहे |

तथा

| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कारिष्यते | कारिष्येते | कारिष्यन्ते |
| म० पु० | कारिष्यसे | कारिष्येथे | कारिष्यध्वे |
| उ० पु० | कारिष्ये | कारिष्यावहे | कारिष्यामहे |

आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | कृषीष्ट | कृषीयास्ताम् | कृषीरन् |
| | कारिषीष्ट | कारिषीयास्ताम् | कारिषीरन् |
| म० पु० | कृषीष्ठा | कृषीयास्थाम् | कृषीढ्वम् |
| | कारिषीष्ठा | कारिषीयास्थाम् | कारिषीध्वम्, ढ्वम् |
| उ० पु० | कृषीय | कृषीवहि | कृषीमहि |
| | कारिषीय | कारिषीवहि | कारिषीमहि |

क्रियातिपत्ति—लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० पु० | अकरिष्यत | अकरिष्येताम् | अकरिष्यन्त |
| | अकारिष्यत | अकारिष्येताम् | अकारिष्यन्त |
| म० पु० | अकरिष्यथा | अकरिष्येथाम् | अकरिष्यध्वम् |
| | अकारिष्यथा | अकारिष्येथाम् | अकारिष्यध्वम् |
| उ० पु० | अकरिष्ये | अकरिष्यावहि | अकरिष्यामहि |
| | अकारिष्ये | अकारिष्यावहि | अकारिष्यामहि |

धृ—लट्—ध्रियते, ध्रियेते, ध्रियन्ते। लोट्—ध्रियताम्, ध्रियेताम्, ध्रियन्ताम्। विधि—ध्रियेत, ध्रियेयाताम्, ध्रियेरन्। लङ—अध्रियत, अध्रियेताम्, अध्रियन्त। लिट्—दध्रे, दध्राते, दध्रिरे। लुङ—धारि, अधारिषाताम्-अधृषाताम्, अधारिषत-अधृषत। लुट्—धर्ता, धरिता। लृट्—धरिष्यते-धारिष्यते। आशी०—धृषीष्ट, धारिषीष्ट। लृङ—अधरिष्यत-अधारिष्यत।

भृ—भ्रियते इत्यादि। लिट्—बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे। बभृषे, बभ्राथे, बभृढ्वे। बभ्रे, बभृवहे बभृमहे। लुङ—अभारि, अभारिषाताम्-अभृषाताम अभारिषत-अभृषत।

वृ—व्रियते इत्यादि ।
हृ—ह्रियते इत्यादि
वच्—उच्यते । लङ—औच्यत ।
वद्—उद्यते । लङ—औद्यत ।
वप्—उप्यते । लङ—औप्यत ।
वस्—उष्यते । लङ—औष्यत ।
वह्—उह्यते । लङ—औह्यत ।

चुरादिगण की धातुओ का गुण तथा वृद्धि जो कि लट्, लोट्, विधि और लङ मे साधारणत होता है, कर्मवाच्य मे भी बना रहता है ।

इस गण का 'अय्' लट्, लोट्, विधि और लङ मे तथा लुङ के प्रथम पुरुष के एकवचन मे निकाल दिया जाता है लिट् मे बना रहता है और शेष लकारो मे विकल्प रूप से निकाल दिया जाता है । जैसे चुर् का—चोर्यते, चोर्येते, चोर्यन्ते ।

लिट्—चोरयाञ्चक्रे । चोरयाम्बभूवे । चोरयामासे । लुङ—अचोरि, अचोरिषाताम्-अचोरयिषाताम्, अचोरिषत-अचोरयिषत । अचोरिष्ठा-अचोरयिष्ठा, अचोरिषाथाम्-अचोरयिषाथाम्, अचोरिढ्वम्-अचोरयिढ्वम् । अचोरिषि-अचोरयिषि, अचोरिष्वहि-अचोरयिष्वहि, अचोरिष्महि-अचोरयिष्महि ।

लुट्—चोरिता । लृट्—चोरिष्यते-चोरयिष्यते ।
आशी०—चोरिषीष्ट-चोरयिषीष्ट । लृङ—अचोरिष्यत-अचोरियिष्यत ।

## प्रत्ययान्त धातुएँ

१५६—धातुओ मे विशेष प्रत्यय जोड कर धातु के अर्थ के साथ-साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है । जैसे हिन्दी मे 'मै जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मै जाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे । इसमे दो धातुओ ('जाना' और 'चाहना') का प्रयोग हुआ, किन्तु सस्कृत मे गम् धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है, जैसे गम्—जाना, जिगमिष्—जाने की इच्छा करना (अहं गच्छामि—अहं जिग-

मिषामि)। 'जिगमिष्' को सन्-प्रत्ययान्त धातु कहेगे। 'सन्' आदि प्रत्यय धातु और लिङ प्रत्ययो के बीच मे जोडे जाते है, तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएँ चार प्रकार की होती है—

(१) णिजन्त—णिच् प्रत्यय मे अन्त होने वाली।

(२) सन्नन्त—सन् प्रत्यय मे अन्त होने वाली।

(३) यङन्त—यङ प्रत्यय मे अन्त होने वाली (यङलुङन्त धातुएँ भी एक प्रकार से यङन्त ही कही जायँगी) तथा

(४) नामधातु—किसी प्रातिपदिक को धातु रूप देकर बनाई हुई धातु।

## णिजन्त धातु

१५७—किसी धातु मे जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णिच् प्रत्यय जोड देते है। करना से कराना, पढना से पढाना, पकाना से पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ है। सादी धातु मे जो कर्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक धातु मे स्वय कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य करता है, जैसे 'राम पकाता है' इस वाक्य मे राम स्वय पकाने का काम करता है, किन्तु 'राम पकवाता है' इस वाक्य मे राम स्वय नही पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। णिच् प्रत्यय लगकर अकर्मक धातु कभी-कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी-कभी उसके अर्थ मे परिवर्तन भी हो जाता है और णिजन्त धातु से परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनो प्रकार के तिङ प्रत्यय जुटते ही है।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओ के समान चलते हैं, धातु और तिङ प्रत्ययो के बीच मे अय् जोड दिया जाता है।

तथा नियम १५२ मे उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है, जैसे—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (१) बुध् | (बोधति) | से | प्रेरणार्थक | बोधयति |
| (२) अद् | (अत्ति) | से | ,, | आदयति |
| (३) हु | (जुहोति) | से | ,, | हावयति |
| (४) दिव् | (दीव्यति) | से | ,, | देवयति |
| (५) सु | (सुनोति) | से | ,, | सावयति |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (६) तुद् | (तुदति) | से | प्रेरणार्थक | तोदयति |
| (७) रुध् | (रुणद्धि) | से | „ | रोधयति |
| (८) तन् | (तनोति) | से | „ | तानयति |
| (९) अश् | (अश्नाति) | से | „ | आशयति |
| (१०) चुर् | (चोरयति) | से | „ | चोरयति |

चुरादिगण की धातुओ के रूप प्रेरणार्थक मे भी वैसे ही होते हैं, जैसे सादे मे।

(ख) कुछ धातुओ के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नही होते। मुख्य-मुख्य धातुओ के भेद ये हैं—

अम् मे अन्त होने वाली धातुओ मे (अम्, कम्, चम्, शम् और यम् को छोडकर) उपधा के अकार को वृद्धि नही होती, जैसे—गम् से गमयति, किन्तु कम् से कामयते होना है।

बहुधा आकारान्त (और ऐसी ए, ऐ, ओ मे अन्त होने वाली धातुएँ जो आकारान्त हो जाती है) धातुओ के अनन्तर अय् के पूर्व प् जोड दिया जाता है, जैसे—दा से दापयति, स्ना मे स्नापयति, गै से गापयति। मि, मी, दी, जि, क्री मे भी प् जोड दिया जाता है और इकार का अकार हो जाता है, जैसे मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ग) नीचे लिखी धातुओ के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं—

इण्[1] (जाना) से गमयति। परन्तु प्रति के साथ प्रत्याययति। अधि+इङ से अध्यापयति।

| | | | |
|---|---|---|---|
| चि | (इकट्ठा करना) | से | चाययति-ते, चापयति-ते। |
| जागृ | (जागना) | से | जागरयति। |
| दुष् | (दोषी होना) | से | दूषयति-ते, दोषयति-ते। |
| प्री | (प्रसन्न होना) | से | प्रीणयति। |
| रुह् | (उगना) | से | रोहयति-ते, रोपयति-ते। |
| वा | (डोलना) | से | वापयति, वाजयति। |
| हन् | (मारना) | से | घातयति। |

१ णौ गमिरबोधने।२।४।४६।—इण् धातु मे णिच् जुडने पर इण् के स्थान मे गम् हो जाता है और गमयति रूप बनता है, परन्तु जहाँ बोध कराने या समझाने का अर्थ होता है, वहाँ इण् के स्थान मे गम् नही होगा, जैसे—प्रत्याययति।

(घ) प्रेरणार्थक धातुओ के रूप चुरादिगणी धातुओ के समान दसो लकारो, तीनो वाच्यो और दोनो पदो मे चलते हैं। उदाहरणार्थ, बुध् धातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचन मे दिखाये जाते हैं। कर्तृवाच्य मे—लट्—बोधयति, बोधयते। लोट्—बोधयतु, बोधयताम्। विधि०—बोधयेत्, बोधयेत। लङ—अबोधयत्, अबोधयत। लिट्—बोधयाञ्चकार, बोधयाम्बभूव, बोधयामास बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ—अबूबुधत्, अबूबुधत। लुट्—बोधयिता। लृट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते। आशी०—बोध्यात्, बोधयिषीष्ट। लृङ—अबोधयिष्यत्, अबोधयिष्यत।

कर्मवाच्य मे—लट्—बोध्यते। लोट्—बोध्यताम्। विधि०—बोध्येत। लङ—अबोध्यत। लिट्—बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ—अबोधि। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यते। आशी०—बोधिषीष्ट। लृङ—अबोधिष्यत।

## सन्नन्त धातु

१५८—[1]किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—'मै जाना चाहता हूँ'। यहाँ मै जाने की इच्छा करता हूँ, इसलिए 'जाने' का बोध कराने वाली धातु के अनन्तर सस्कृत मे सन् प्रत्यय जोडकर 'जाना चाहता हूँ' यह अर्थ निकल आयेगा' (गम् से जिगमिष्)। जो कर्ता जाने की क्रिया का होगा, वही इच्छा करने वाला होना चाहिए। यदि दूसरा कर्त्ता होगा तो सन् प्रत्यय नही लग सकता, जैसे—'मै इच्छा करता हूँ कि वह जावें' इस वाक्य मे इच्छा करने वाला 'मैं' हूँ और जाने वाला 'वह', यहाँ सन् लगना असम्भव होगा। किन्तु मै उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य मे सन् लग सकता है, क्योकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनो क्रियाओ का कर्त्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक धातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहें तो यही अर्थ इष्, अभिलष् आदि चाहने का अर्थ बतलाने वाली क्रियाओ के प्रयोग

---

१ धातो कर्मण समानकर्तृकादिच्छायां वा।३।१।७।

से भी लाया जा सकता है, जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ' का अनुवाद चाहे 'अहं जिगमिषामि' करे चाहे 'अहं गन्तुमिच्छामि' या 'अहं गन्तुमभिलषामि' आदि करे, दोनो ढंग ठीक होंगे।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य की इच्छा की जाती है, वह इच्छा करने की क्रिया का कर्मस्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नही। ऊपर 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य मे 'चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है, तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है। यदि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे खाने से बल बढे' इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ 'खाने से' करण कारक है, तो ऐसी दशा मे 'खाने' की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नही कराया जा सकता।

(क) सन् प्रत्यय का स् धातु मे जोडा जाता है, यह स् सन्धि के (२४वे) नियम के अनुसार कही-कही ष् हो जाता है। स् जोडने के पूर्व धातु को पृष्ठ ३१० मे उल्लेख किये हुए नियमो के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है। अभ्यास मे यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है, जैसे—पठ्+सन्=पठ्+पठ्+सन्=प+पठ्+स्=पिपठ्+इ+ष्। धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है परन्तु कभी-कभी किसी-किसी धातु मे नही भी आता, यदि वेट हो तो बहुधा इच्छानुसार इकार आता है, और यदि अनिट् हो तो बहुधा नही आता, जैसे—सेट् पठ् धातु का सन्नन्त रूप पिपठ्+इ+ष्=पिपठिष् हुआ, किन्तु सेट् भू धातु का बुभुष् हुआ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई सन्नन्त धातु के रूप धातु के पद के अनुसार दसो लकारो मे चलते है। परोक्षभूत मे आम् जोड कर कृ, भू और अस् धातुओ के रूप जोड दिये जाते है।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप दिये जाते हैं—

| | कर्तृवाच्य | | कर्मवाच्य |
|---|---|---|---|
| लट् | बुबोधिषति | बुबोधिषते | बुबोधिष्यते |
| लोट् | बुबोधिषतु | बुबोधिषताम् | बुबोधिष्यताम् |
| विधि० | बुबोधिषेत् | बुबोधिषेत | बुबोधिष्येत |
| लङ | अबुबोधिषत् | अबुबोधिषत | अबुबोधिष्यत |

| | | | |
|---|---|---|---|
| लिट् | बुबोधिषाञ्चकार | बुबोधिषाञ्चक्रे | बुबोधिषाञ्चक्रे |
| | बुबोधिषाम्बभूव | बुबोधिषाम्बभूवे | बुबोधिषाम्बभूवे |
| | बबोधिषामास | बुबोधिषामासे | बुबोधिषामासे |
| लुङ | अबुबोधिषीत् | अबुबोधिषिष्ट | अबुबोधिषि |
| लुट् | बुबोधिषिता | बुबोधिषिता | बुबोधिषिता |
| लृट् | बुबोधिषिष्यति | बुबोधिषिष्यते | बुबोधिषिष्यते |
| आशी० | बुबोधिष्यात् | बुबोधिषिषीष्ट | बुबोधिषिषीष्ट |
| लृङ | अबुबोधिषिष्यत् | अबुबोधिषिष्यत | अबुबोधिषिष्यत |

(ग) नीचे कुछ धातुओ के सन्नन्त रूप दिये जाते हैं।

पठ् + सन् = पिपठिष् (पिपठिषति)
ग्रह् + सन् = जिघृक्ष् (जिघृक्षति)
प्रच्छ् + सन् = पिपृच्छिष् (पिपृच्छिषति)
कृ + सन् = चिकरिषु (चिकरिषति)
गृ + सन् = जिगरिष्, जिगलिष् (जिगरिषति, जिगलिषति)
धृङ + सन् = दिधरिष् (दिधरिषते)
हन् + सन् = जिघास् (जिघासिषति)
गम् + सन् = जिगमिष् (जिगमिषति)
इण् + सन् = जिगमिष् ( ,, )

**नोट**—सन्[1] लगने पर बोध से भिन्न अर्थ होने पर इण् का गम् आदेश हो जाता है। बोध अर्थ मे प्रतिषिषति रूप होता है।

ज्ञा + सन् = जिज्ञास् (जिज्ञासते)
श्रु + सन् = शुश्रूष् (शुश्रूषते)
दृश् + सन् = दिदृक्ष् (दिदृक्षते)
पा + सन् = पिपास् (पिपासते)
भू + सन् = बुभुष् (बुभूषते)
आप् + सन् = ईप्स् (ईप्सति)

१ सनि च ।२।४।४७।

**नोट**—सन्[1] लगने पर आप् के आ के स्थान मे ई हो जाता है और अभ्यास का लोप हो जाता है।

अद् + सन् = जिघत्स् (जिघत्सति)

## यङन्त धातु

१५६—व्यञ्जन[2] से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय दसवें गण की (सूच्, सूत्र, मूत्र इत्यादि कुछ धातुओ को छोडकर) किसी धातु के अनन्तर नही लगता, केवल प्रथम नौ गणो की धातुओ के उपरान्त लग सकता है, जैसे, नेनीयते—बार-बार ले जाता है, देदीयते—खूब देता है।

यङ प्रत्यय धातु मे दो प्रकार से जोडा जाता है। एक को जोडने से परस्मैपद मे रूप चलते हैं और दूसरे को जोडने से आत्मनेपद मे। परस्मैपद वाले रूप वैदिक सस्कृत मे ही प्राय मिलते हैं, इसलिए उसका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपो का दिग्दर्शन कराया जाता है।

(क) धातु मे पहले यङ का य् जोडा जाता है, जैसे—नी+यङ=नीय, इसी प्रकार भूय, नन्द्य इत्यादि। नियम १५४ (३) मे उल्लिखित किसी-किसी धातु का विकृत रूप यहाँ भी हो जाता है, जैसे—दा+यङ=दीय, बन्ध+यङ= वध्य।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यङन्त रूप का अभ्यास पृष्ठ ३१० पर लिखे हुए नियमो के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यास अक्षर के अ का, आ, इ अथवा ई का ए तथा उ अथवा ऊ का ओ जाता है, जैसे—व्रज्+यङ=वव्रज्य=वाव्रज्य, दीय=देदीय, नेनीय, वोभूय। इसके अतिरिक्त[3] जिन धातुओ की उपधा मे ऋ हो, उनके अभ्यास मे री का आगम हो जाता है, जैसे नरीनृत्यते, वरीवृत्यते इत्यादि।

---

१ आप्ज्ञप्यृधामीत् ।७।४।५५। एषामच ईत्स्यात्सनि।

२ धातोरेकाचो हलादे क्रियासमभिहारे यङ ।३।१।२३। पौन पुन्य भृशार्थश्व क्रिया-समभिहार। तस्मिन्द्योत्ये यङ स्यात्। सि० कौ०

३ रीगृदुपधस्य च ।७।४।९०।

(ख) इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनेपद मे दसो लकारो मे रूप चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन मे दिए जाते हैं—

| लकार | कर्तृवाच्य | कर्मवाच्य |
|---|---|---|
| लट् | बोबुध्यते | बोबुध्यते |
| लोट् | बोबुध्यताम् | बोबुध्यताम् |
| विधि० | बोबुध्येत | बोबुध्येत |
| लङ | अबोबुध्यत | अबोबुध्यत |
| लिट् | बोबाञ्चक्रे | बोधाञ्चक्रे |
| लुङ | अबोबुधिष्ट | अबोबुधि |
| लुट् | बोबुधिता | बोबुधिता |
| लृट् | बोबुधिष्यते | बोबुधिष्यते |
| आशी० | बोबुधिषीष्ट | बोबुधिषीष्ट |
| लृङ | अबोबुधिष्यत | अबोबुधिष्यत |

(ग)—नियम १५६ क्रियासमभिहार मे ही यङ का विधान करता है। परन्तु कहो-कही इससे भिन्न अर्थ मे भी लगता है। नीचे ऐसे कुछ स्थल दिखाए जाते हैं—

गत्यर्थक[1] धातुओ मे कौटिल्य के अर्थ मे यङ प्रत्यय जुडता है, बार-बार या अधिक अर्थ मे नही, जैसे—कुटिल व्रजति इति वाव्रज्यते।

लुप्[2], सद्, चर्, जप्, जभ्, दह्, दश्, गृ धातुओ के आगे गर्हित अर्थ मे यङ प्रत्यय लगता है, जैसे—गर्हित लुम्पति इति लोलुप्यते।

जप[3], जभ, दह, दश, भञ्ज, पश धातुओ मे लङ जुडने पर अभ्यास मे न का आगम हो जाता है, जैसे—गर्हित जपति इति जञ्जप्यते। इसी प्रकार जञ्जभ्यते, दन्दह्यते, दन्दश्यते, पम्पश्यते।

---

१ नित्य कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३।

२ लुपसदचरजपजभदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ।३।१।२४।

३ अपजभदहभञ्जपशा च ।७।४।८६।

**नोट**—माधवीयधातुवृत्ति मे पशि के स्थान मे 'पसि' पाठ है। परन्तु काशिका मे 'पशि' पाठ भी मिलता है।

गृ[1] धातु मे यङ जुडने पर रेफ के स्थान मे लकार हो जाता है, जैसे—गर्हित गिरति इति जेगिल्यते।

# नाम-धातु

१६०—जब किसी सुबन्त (सज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड कर उसे धातु बना लेते है, तो उसे नामधातु कहते है। नाम सज्ञा को ही कहते हैं, इसीलिए यह नाम पडा। नाम धातुओ के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं, जैसे—पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णति (कृष्ण+क्विप्)——कृष्ण के समान आचरण करता है, लोहितायते (लोहित+क्यच्)—लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्)—मूडता है इत्यादि।

नाम-धातुओ के रूप सभी लकारो मे चल सकते है, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल मे ही होता है।

नीचे नाम-धातुओ के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते है।

१६१—क्यच् प्रत्यय

(क) जिस[2] वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर क्यच् लगाया जाता है।

(ख) क्यच् (य) जुडने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर मे परिवर्तन हो जाता है, अ तथा आ का इ, ई का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अव् और औ का आव्। अन्तिम ङ, ञ्, ण् तथा न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त[3] शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर क्यच् जुडता ही नही।

उदाहरणार्थ—

पुत्रम् आत्मन इच्छति=पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—अपने लिए पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मन इच्छति=गङ्गीयति (गङ्गा+क्यच्)—

१ ग्रो यङ।८।२।२०।

२ सुप आत्मन क्यच्।३।१।८।

३ मान्तप्रकृतिवसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न। वा०। इदमिच्छति, स्वरिच्छति सि० कौ०।

अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार कवीयति (कवि+क्यच्), नदीयति (नदी+क्यच्), विष्णूयति (विष्णु+क्यच्), वधूयति (वधू+क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ+क्यच्), गव्यति (गो+क्यच्), नाव्यति (नौ+क्यच्), राजीयति (राजन्+क्यच्) इत्यादि।

(ग) क्यच् प्रत्यय[1] किसी चीज को किसी के समान समझकर या मानकर उसके सम्बन्ध मे आचरण करने के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। इस दशा मे जो या जिसके समान समझा जाय अर्थात् जो उपमान हो उसके अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगता है और वह उपमान कर्म होना चाहिए, जैसे वह वि र्थी को पुत्र समझता है अर्थात् उसके साथ पुत्र का-सा व्यवहार करता है। यहाँ त्र के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगेगा—गुरु छात्र पुत्रीयति, एव विष्णूयति द्विजम् —ब्राह्मण को विष्णु के समान समझता है। उपमान के अधिकरण होने पर भी उसमे क्यच् जुडता है, जैसे प्रासादीयति कुट्या भिक्षु —भिखारी कुटी को महल समझता है, कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है।

(घ) क्यच् मे अन्त होने वाली धातु के रूप परस्मैपद मे सब लकारो मे चलते है, यदि प्रत्यय के पूर्व मे व्यजन हो तो लट्, लोट्, विधि और लङ को छोडकर शेष लकारो मे यकार का लोप कर दिया जाता है, जैसे समिध्यति, समिधिष्यति आदि।

## १६२—क्यङ

(क) किसी[2] सुबन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है, वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ (य) प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाते हैं।

(ख) इसके रूप आत्मनेपद मे चलते हैं। इस प्रत्यय के 'य' के पूर्व सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर

१ उपमानादाचारे ।३।१।१०। अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् ।

२ कर्तु क्यङ सलोपश्च ।३।१।११। ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषा विभाषया। वा०।

जैसे क्यच् के पूर्व (१६१ ख) बदलते हैं, वैसे ही बदलते हैं। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से (किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य) लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—

कृष्ण इवाचरति=कृष्णायते—कृष्ण के समान आचरण करता है। इसी प्रकार, ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है। गर्दभी अप्सरायते—गदही अप्सरा के समान आचरण करती है। यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है। विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

(ग) स्त्री-प्रत्ययान्त[1] शब्द का (यदि वह "क" मे अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष मे क्यङ जुडता है, जैसे, कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

क[2] मे अन्त होने पर स्त्री प्रत्यय का लोप नही होता, जैसे—पाचिकेव आचरति—पाचिकायते।

(घ) कर्मभूत[3] रोमन्थ और तपस् शब्दो के अनन्तर वर्तन और चरण अर्थ मे क्यङ प्रत्यय जुडता है, जैसे, रोमन्थ वर्तयति इति 'रोमन्थायते', तपश्चरतीति 'तपस्यति'।

(ङ) कर्मभूत[4] वाष्प और ऊष्मा शब्दो के अनन्तर उद्वमन अर्थ मे क्यङ जुडता है, जैसे, वाष्पमुद्वमतीति 'वाष्पायते'। इसी प्रकार ऊष्माणमुद्वमतीति 'ऊष्मायते'। फेन शब्द के बाद भी इसी अर्थ मे यङ जुडता है, जैसे, फेनमुद्वमतीति 'फेनायते'।

(च) शब्द[5], वैर, कलह, अभ्र, कण्व (पाप) और मेघ के अनन्तर क्यङ जुडता है, यदि ये कर्मभूत हो और 'इन्हें करने' का अर्थ प्रकट करना हो, जैसे, शब्द करोति=शब्दायते। इसी प्रकार वैरायते, कलहायते इत्यादि।

---

१ क्यङ्मानिनोश्च ।६।३।३६।

२ न कोपधाया ।६।३।३७।

३ कर्मणो रोमन्थतपोभ्या वर्तिचरो ।३।१।१५।(तपस परस्मैपद च—वा०)।

४ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ।३।१।१६। फेनाच्चेति वाच्यम्—वा०—।

५ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्य करणे ।३।१।१७।

(छ) कर्ममत[1] सुख इत्यादि के अनन्तर भी वेदना या अनुभव अर्थ मे क्यङ जुडता है (यदि वेदना के कर्ता को ही सुख इत्यादि हो तो), जैसे, सुख वेदयते=सुखायते। 'परस्य सुख वेदयते'—यहाँ क्यङ नही जुडेगा।

## पदव्यवस्था

१६३—ऊपर नियम १३४ (घ) मे बता चुके हैं कि सस्कृत भाषा मे धातुएँ दो पदो मे रक्खी जाती हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। कुछ एक पद की ही होती हैं, कुछ दूसरे की ही और कोई-कोई दोनो पदो की। किन ‥‥ओ मे धातु एक पद को छोडकर दूसरे की हो जाती हैं, यह यहाँ दिखाने का यत्न किया जायगा।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य मे धातु केवल आत्मनेपद मे रहती है, कर्तृवाच्य मे चाहे वह परस्मैपद मे हो चाहे आत्मनेपद मे।

दो चार मोटे-मोटे नियम यहाँ दिए जाते हैं—

(क) यदि[2] बुध्, युध्, नश्, जन्, (अधिपूर्वक) इङ, प्रु, द्रु तथा स्रु धातुओ का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती हैं, जैसे—छात्र अधीते, गुरु छात्रमध्यापयति। इसी प्रकार प्रावयति, स्रावयति, नाशयति, जनयति, द्रावयति, बोधयति, योधयति इत्यादि।

(ख) कृ[3] धातु उभयपदी है। परन्तु यदि 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपदी होती है (अनुकरोति, पराकरोति)। नीचे लिखी दशाओ मे वह केवल आत्मनेपद मे होती है—

'अधि' उपसर्ग लगाकर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ मे, जैसे, शत्रुमधिकुरुते—वैरी को क्षमा कर देता है अथवा उस पर कब्जा कर लेता है, विपूर्वक होने पर उसका कर्म जब कोई शब्द हो तब, जैसे, स्वरान् विकुरुते

---

१ सुखादिभ्य कर्तृवेदनायाम् ।३।१।१८।

२ बध्ययध्नशजनेङप्रद्रुस्रुभ्यो णे ।१।३।८६।

३ अनुपराभ्या कृञ ।१।३।७९। अधे प्रसहने। वे शब्दकर्मण॰। अकर्मकाच्च ।१।३।३३—३५। गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञ ।१।३।३२।

(उच्चारयतीत्यर्थं) शब्द से भिन्न कर्म होने पर परस्मैपदी ही होगी, जैसे= चित्त विकरोति काम। अकर्मक होने पर भी आत्मनेपदी होगी, जैसे छात्रा विकुर्वते—विकार लभन्ते। जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना), अवक्षेपण (निन्दा, भर्त्सना), सेवन, साहसिक कर्म, प्रतियत्न (किसी गुण का स्थापन), प्रकथन अथवा धर्मार्थ मे लग जाने के बाद कोई उपसर्ग जोड कर कराया जाय, तब भी कृ आत्मनेपदी होगी, जैसे—

उत्कुरुते (सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाता है)। श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते (बाज बटेर को डराता है)। हरिमपकुरुते (विष्णु की सेवा करता है)। परदारान् प्रकुर्वते (वे पराई स्त्रियो पर साहस से अत्याचार करते है)। एध उदकस्य उपस्कुरुते (ईंधन पानी की शीतलता ले लेता हे)। गाथा प्रकुरुते (गाथाएँ कहता है)। शत प्रकुरुते (सौ रुपए धर्मार्थ लगाता है)।

(ग) क्रम[1] धातु उभयपदी है, किन्तु अप्रतिहत गति, उत्साह तथा स्फीतता (स्पष्टता) के अर्थों मे आत्मनेपदी होती है और इन्ही अर्थों मे उप और परा के साथ भी आत्मनेपदी होती है। जैसे —ऋचि क्रमते बुद्धि (न प्रतिहन्यते), अध्ययनाय क्रमते (उत्सहते), क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (स्फीतानि भवन्ति)। इसी प्रकार उपक्रमते और पराक्रमते प्रयोग भी होगे। आङ के साथ सूर्य आदि के निकलने के अर्थ मे ('सूर्य आक्रमते' उदयते इत्यर्थं) प्र और उप के साथ आरभ करने के अर्थ मे भी आत्मनेपद (वक्तु प्रक्रमते-उपक्रमते) मे ही होती है।

(घ) क्री[2] के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते।

(ङ) क्रीड्[3] धातु के पूर्व यदि अनु, आ, परि अथवा सम् मे से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—अन-परि-आ-स-क्रीडते।

---

१ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रम। उपराभ्याम् आङ उद्गमने (ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्) ।१।३।३८।—४०। प्रोपाभ्या समर्थाभ्याम् ।१।३।४२।

२ परिव्यवेभ्य क्रिय ।१।३।१८।

३ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च ।१।३।२१।

(च) क्षिप्[1] के पूर्व यदि अभि, प्रति, अति मे से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है, जैसे—अभि-अति-प्रति-क्षिपति।

(छ) गम्[2] के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और वह अकर्मक हो तथा मिलने या उपयुक्त होने का अर्थ दिखाता हो तो आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे सखीभि सङ्गच्छते—सखियो से मिलती है। इय वार्ता सगच्छते—यह बात ठीक है। सकर्मक होने पर परस्मैपदी ही होगी, जैसे—ग्राम सगच्छति। इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋच्छ् भी आत्मनेपदी होती है, जैसे—समृच्छिष्यते।

(ज) चर्[3] के पूर्व यदि उद् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम्-पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे, धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है, किन्तु, वाष्पमुच्चरति—आँसू निकालता है, रथेन सञ्चरते—रथ पर चलता है।

(झ) जि[4] के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे शत्रून् विजयते, पराजयते वा, अध्ययनात् पराजयते—पढने से हार जाता है।

(ञ) ज्ञा[5], श्रु, स्मृ तथा दृश् धातुएँ सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती हैं, जैसे—धर्मं—जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, विष्णु दिदृक्षते। नीचे लिखी दशाओ मे भी ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है—

यदि 'अप' पूर्वक हो तो अपह्नव (इनकारी) का अर्थ बताती हो (शतमपजानीते—सौ रुपयो से इनकार करता है), यदि सकर्मक हो (सर्पिषो जानीते), यदि 'प्रति'-पूर्वक हो तथा प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो (शत प्रतिजानीते—सौ रुपये की प्रतिज्ञा करता है), यदि 'सम्'-पूर्वक हो तथा आशा करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुई हो (शत सञ्जानीते—सौ रुपये की आशा करता है)।

---

१ अभिप्रत्यतिभ्य क्षिप ।१।३।८०।

२ समो गम्यृच्छिभ्याम् ।१।३।२९।

३ उदश्चर सकर्मकात्। समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५३,५४।

४ विपराभ्या जे ।१।३।१९।

५ ज्ञाश्रुस्मृदृशा सन ।१।३।५७। अपह्नवे ज्ञ । अकर्मकाच्च। सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ।१।३।४४—४६।

(ट) दा[1] के पूर्व यदि आङ् उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है, किन्तु मुंह खोलने के अर्थ मे नही, जैसे—नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम्, किन्तु, सुख व्याददाति।

(ठ) 'सम्'[2] पूर्वक ऋ, श्रु तथा दृश् धातुएँ यदि अकर्मक हो तो आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, सम्पश्यते—भली प्रकार सोचता है, सश्रृणुते—अच्छी प्रकार सुनता है, मा समरत।

(ड) नी[3] धातु से जब सम्मान करने, उठाने, उपनयन करने, ज्ञात करने, वेतन देकर काम मे लगाने, कर (टैक्स) आदि अदा करने (चुकाने) अथवा भले कार्य मे खर्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे—(क्रम से) शास्त्रे शिष्य नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा), दण्डमुन्नयते (डडा ऊपर उठाता है), माणवकमुपनयते (लडके का उपनयन करता है), तत्त्व नयते (तत्त्व का निश्चय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है), कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है), कर विनयते (टैक्स चुकाता है), तथा शत विनयते (सौ रुपये अच्छी तरह खर्च करता है)।

(ढ) प्रच्छ्[4] धातु के पूर्व 'आ' लगाकर जब अनुमति लेने का अर्थ निकालना हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—(आपृच्छस्व प्रियसखममुम्) (इस प्रिय मित्र से जाने की अनुमति ले लो।) 'सम्' लगा कर जब यह धातु अकर्मक होती है, तब भी आत्मनेपदी हो जाती है (सम्पृच्छते) । आपूर्वक नु धातु भी आत्मनेपदी होती है, जैसे—आनुते।

(ण) भुज्[5] धातु रक्षा करने के अर्थ मे परस्मैपदी होती है, अन्य सब अर्थों मे आत्मनेपदी, जैसे—मही भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है) मही बुभुजे (पृथ्वी का भोग किया)।

---

१ आङो दोऽनास्यविहरणे।१।३।२०।

२ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्। वा०।

३ सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु निय।१।३।३६।

४ आङि नुप्रच्छ्योः। वा०।

५ भुजोऽनवने।१।३।६६।

(त) रम्[1] आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आङ, परि और उप उपसर्गों के अनन्तर परस्मैपदी हो जाती है, जैसे—वत्सैतस्माद्विरम, आरमति, परिमति यज्ञदत्तम् उपरमति (रमयति)। किन्तु जब उपपूर्वक रम् धातु अकर्मक होती है तो विकल्प से आत्मनेपदी भी होती है, जैसे—स उपरमति, उपरमते वा (निवर्तते)।

(थ) वद्[2] नीचे लिखे अर्थों मे आत्मनेपदी होती है—

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र मे चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शात करना) भृत्यानुपवदते (नौकरो को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत मे उद्योग करता है), विमति—परस्पर विवदन्ते स्मृतय (स्मृतियाँ परस्पर झगडा करती हैं), उपमन्त्रण—दातारम् उपवदते (दाता की प्रशसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ मे—अपवदते (निन्दा करता है)।

(द) विश्[3] धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—निविशते, अभिनिविशते।

(ध) 'आ'[4] अथवा 'प्रति' के अनन्तर श्रु परस्मैपदी ही रहती है (आशुश्रूषति, प्रतिशुश्रूषति)।

(न) स्था[5] धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि मे से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—सतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते और वितिष्ठते। प्रतिज्ञा करने के अर्थ मे 'आङ' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है,

---

१ व्याङपरिभ्यो रम । उपाच्च । विभाषाऽकर्मकात् ।१।३।८३—८५।

२ भासनोपसभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वद ।१।३।४७।
अपाद्वद ।१।३।७३।

३ नेर्विश ।१।३।१७।

४ प्रत्याङ्भ्या श्रुव ।१।३।५९।

५ समवप्रविभ्य स्थ ।१।३।२२। आङ प्रतिज्ञायामुपसख्यानम्। वा०। उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ।१।३।२४। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्। वा०। वा लिप्सायाम्। वा०।

जैसे—शब्द नित्यम् आतिष्ठते (शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करता है) 'उद्'-पूर्वक स्था धातु का यदि 'ऊपर उठना' अर्थ न हो तथा उप-पूर्वक उसका देवपूजा, मिलना, मित्र बनाना, सडक का जाना अर्थ हो तो नित्य रूप से तथा लिप्सा अर्थ हो तो विकल्प से आत्मनेपदी होती है।

मुक्तावुत्तिष्ठते, (किन्तु पीठादुत्तिष्ठति), आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य को पूजता है), गङ्गा यमुनामतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है), रथिकानुपतिष्ठते (रथ वालो से मित्रता करता है), पन्था काशीमुपतिष्ठते (रास्ता काशी को जाता है), भिक्षुक प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा (भिखारी 'लालच से' मालिक के पास जाता है)।

---

# एकादश सोपान

## कृदन्त-विचार

१६४—धातु[1] मे जिस प्रत्यय को जोड कर सज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय बनता है, उसको कृत् प्रत्यय कहते है और इसके द्वारा जो शब्द सिद्ध होता है, उसको कृदन्त (जिसके अन्त मे कृत् हो) कहते हैं, जैसे—कृ धातु से तृच् प्रत्यय जोडकर 'कर्तृ' शब्द बना। यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है। यह सज्ञा है और इसके रूप अन्य सज्ञाओ की तरह विभक्तियो मे चलेगे।

कृत्[2] और तिङ प्रत्ययो मे यह अन्तर है कि कृदन्त सज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं, क्रिया नही, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत् और तद्धित मे यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध सज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोडकर अन्य सज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिए होता है, किन्तु 'कृत्' धातु मे ही जोडा जाता है।

जो कृदन्त सज्ञा अथवा विशेषण होते हैं, उनके रूप चलते हैं और जो अव्यय होते हैं, वे एकरूप रहते हैं, जैसे—गम् धातु से तृच् लगाकर गन्तृ बना, इसके रूप चलेगे, किन्तु क्त्वा लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई-कोई कृदन्त भी कभी-कभी क्रिया का काम देते हैं, जैसे—स गत (वह गया) मे 'गत' शब्द। वस्तुत यह विशेषण है और इस वाक्य मे क्रिया छिपी हुई है—स गत (अस्ति)।

इसमे प्रमाण यह है कि विशेषण के लिङ्ग, वचन और कारक वही होते हैं, जो उसके विशेष्य के, और यहाँ पर 'गत' पद (पुल्लिङ्ग का प्रथमा एकवचन का रूप) 'स' के कारण ही सम्भव हो सकता है।

कृत् प्रत्ययो के मुख्य तीन भेद हैं —कृत्य, कृत् और उणादि।

---

१ धातो ।३।१।६१।

२ कृदतिङ ।३।१।९३।

## कृत्य प्रत्यय

१६५—कृत्य[1] प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत् । ये[2] प्रत्यय सदा भाववाच्य और कमवाच्य मे ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य मे नही। ये विभिन्न[3] अर्थों मे भी प्रयुक्त होते है। अँगरेजी मे जो काम पोटेंशल् पार्टिसिप्ल ( Potential Participle ) से लिया जाता है, वही काम सस्कृत-प्रत्ययान्त शब्द करते हैं। इनको सज्ञाओ के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग मे लाते हैं, जैसे पक्तव्या माषा —उडद जो पकाये जाने चाहिए, कर्तव्य कर्म—वह काम जिसे करना चाहिए, प्राप्तव्या सम्पत्ति —वह सम्पत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए, गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, स्नानीय चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय, दानीयो विप्र —दान देने योग्य ब्राह्मण इत्यादि। इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि हिन्दी मे जो अर्थ 'चाहिए' 'योग्य' इत्यादि द्वारा प्रकट किया जाता है, प्राय वही सस्कृत मे कृत्य-प्रत्ययान्त शब्द द्वारा होता है। 'चाहिए' वाला भाव कर्तृवाच्य मे बहुधा विधिलिङ से भी सूचित होता है, जैसे राम सीता पुन गृह्णीयात्—राम को चाहिए कि सीता को फिर ग्रहण करे अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करें, भृत्य स्वामिन सेवेत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है, इत्यादि। यदि इस प्रकार की विधिलिङ की क्रिया को कतृवाच्य से कर्मवाच्य मे पलटना हो तो कृत्यान्त शब्द प्रयोग मे लाना चाहिए, जैसे, रामेण सीता पुनग्रहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीय आदि। ऊपर कह आये है कि कृदन्त क्रिया नही होते, इन प्रयोगो मे भी 'ग्रहीतव्या' और 'सेवनीय' क्रिया नही है, किन्तु विशेषण है। अँगरेजी मे इनको प्रेडिकेटिव् ऐड्जेक्टिव् (Predicative adjective) कहते है। कृत्यान्त शब्दो के रूप सज्ञाओ की तरह तीनो लिङ्गो मे चलते है—पुल्लिङ्ग और नपुसक मे अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग मे आकारान्त।

---

१ कृत्या ।३।१।६५।

२ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ।३।४।७०।

३ कृत्यल्युटोबहुलम् ।३।३।११३।

१६६—तव्यत्[1] (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) —ये प्राय सब धातुओ मे लगाये जा सकते हैं। तव्यत् और तव्य मे कोई विशेष अन्तर नही है, तव्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनीयर् मे अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। किन्तु स्वर की बारीकियाँ केवल वैदिक सस्कृत मे काम आती हैं, भाषा की सस्कृत मे नही। इसलिए तव्यत् और तव्य को बराबर ही समझना चाहिए और अनीयर् को 'अनीय्'। केलिमर् के क् और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम' धातुओ मे जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्राय कुछ सकर्मक धातुओ मे ही जुडा हुआ प्रयोग मे मिलता है।

इन प्रत्ययो के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर का अथवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते है। जो धातुएँ सेट् होती हैं, उनमे प्रत्यय और धातु के बीच मे इ आ जाती है, जो अनिट् होती हैं उनमे नही, और जो वेट होती हैं, उनमे विकल्प से आती है। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिए जाते हैं—

| धातु | तव्य | अनीय | एलिम |
|---|---|---|---|
| पठ् | पठितव्य | पठनीय | |
| भू | भवितव्य | भवनीय | |
| गम् | गन्तव्य | गमनीय | |
| नी | नेतव्य | नयनीय | |
| चि | चेतव्य | चयनीय | |
| चर् | चरितव्य | चरणीय | |
| दा | दातव्य | दानीय | |
| भुज् | भोक्तव्य | भोजनीय | |
| अद् | अत्तव्य | अदनीय | |
| भक्ष् | भक्षितव्य | भक्षणीय | |
| शस् | शसितव्य | शसनीय | |

१ तव्यत्तव्यानीयर ।३।१।९२। केलिमर उपसख्यानम्। वा०।

| धातु | तव्य | अनीय | एलिम |
|---|---|---|---|
| सृज् | स्रष्टव्य | सर्जनीय | |
| छिद् | छेतव्य | छेदनीय | छिदेलिम |
| भिद् | भेत्तव्य | भेदनीय | भिदेलिम |
| पच् | पक्तव्य | पचनीय | पचेलिम |
| कथ् | कथितव्य | कथनीय | |
| चुर् | चोरितव्य | चोरणीय | |
| पूज् | पूजितव्य | पूजनीय | |
| जिगमिष् | जिगमिषितव्य | जिगमिषणीय | |
| बुबोधिष् | बुबोधिषितव्य | बुबोधिषणीय, इत्यादि । | |

१६७—कृत्य[1] प्रत्यय यत् (य) केवल ऐसी धातुओ मे जोडा जाता है जिनके अन्त मे कोई स्वर हो अथवा जिनके अन्त मे पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा मे अकार हो।

यत् के पूर्व स्वर को गुण होता है। यदि[2] आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण (ए) होता है। यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ अथवा औ हो तो, वह ई हो जाता है और फिर गुण होता है, जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| दा+यत्=द्+ई+य | =द्+ए+य | = | देय |
| धा+यत्=धी+य | = धे+य | = | धेय |
| गै+यत्=गी+य | = गे+य | = | गेय |
| छो+यत्=छी+य | = छे+य | = | छेय |
| चि+यत्=चे+य | | = | चेय |
| नी+यत्=ने+य | | = | नेय |
| शप्+यत्=शप्+य | | = | शप्य |
| जप्+यत्=जप्+य | | = | जप्य |
| लप्+यत्=लप्+य | | = | लप्य |
| लभ्+यत्=लभ+य | | = | लभ्य |

१ अचो यत् ।३।१।९७। पोरदुपधात् ।३।१।९८।

२ ईद्यति ।६।४।६५।

आ+लभ्+यत् =आलम्भ्य
उप+लभ्+यत् =उपलम्भ्य

यदि[1] लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा प्रशंसा-वाचक उप उपसर्ग हो और आगे यकारादि प्रत्यय हो तो बीच मे नुम् (न्=म) आ जाता है, जैसे, 'उपलम्भ्य साधु' अर्थात् साधु प्रशंसनीय होता है। प्रशंसा या स्तुति का अर्थ न होने पर 'उपलभ्य' ही रूप बनेगा। इसका अर्थ 'उलाहना योग्य' होगा।

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त धातुओ मे लगता है, जिनमे मुख्य ये है—

[2]तक् (हँसने)—तक्य। शस् (हिंसायाम्)—शस्य। चते (याचने)—चत्य। यत्—सत्य। जन्—जन्य।

[3]हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)। इसमे विकल्प से ण्यत् लगकर 'घात्य' भी बनता है। [4]शक्—शक्य, सह्—सह्य, [5]गद्—गद्य, मद्—मद्य, चर्—चर्य, यम्—यम्य।

[6]वह+यत्=वह्य शकटम् (वहन्ति अनेनेति) अर्थात् ढोने की गाडी।

[7]ऋ+यत्=अर्य अर्थात् स्वामी या वैश्य। इन्ही अर्थों मे 'ऋ' मे 'यत्' लगेगा। ब्राह्मण के लिए प्रयोग होने पर 'आर्य' (प्राप्तव्य इत्यर्थ) होगा।

न+जॄ+यत्=अजर्य—यह तभी बनेगा जब जॄ के पूर्व नञ् हो और सिद्ध शब्द संगत का विशेषण हो, जैसे 'अजर्यं (स्थायि, अविनाशि वा) सङ्गतम्'।

६८—क्यप् (य) कुछ ही धातुओ मे लगता है। इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच

---

१ आङो यि। उपात्प्रशंसायाम् ।७।१।६५—६६।।
२ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्य । वा०।
३ हनो वा यद्वधश्च वक्तव्य । वा०।
४ शकिसहोश्च ।३।१।९९।
५ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ।३।१।१००।
६ वह्यं करणम् ।३।१।१०२।
७ अर्यः स्वामिवैश्ययो ।३।१।१०३।
८ अजर्यं संगतम् ।३।१।१०५।

मे त आ जाता है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य। इसके साथ गुण नही होता।

जिन 'धातुओं'[1] मे क्यप् लगता है, उनमे ये मुख्य है—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| इ (जाना) | + | क्यप् | = | इत्य (जाने योग्य) |
| स्तु | | ,, | = | स्तुत्य |
| शास् | | ,, | = | शिष्य |
| वृ | | ,, | = | वृत्य (वरणीय) |
| दृ | | ,, | = | (आ+) दृत्य (आदरणीय) |
| जुष् | | ,, | = | जुष्य (सेव्य) |
| मृज् | | ,, | = | मृज्य (पवित्र करने योग्य) |
| भृ | | ,, | = | भृत्य (नौकर) |
| कृ | | ,, | = | कृत्य |
| वृष् | | ,, | = | वृष्य (सींचने योग्य) |

**नोट**—मृज्, भृ, कृ तथा वृष् मे विकल्प से ही क्यप् लगता है। क्यप् न लगने पर ण्यत् लगेगा और क्रमश मार्ग्य, भार्या, कार्य तथा वर्ष्य शब्द बनेंगे।

१६९—ऐसी[2] धातुएँ जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा व्यञ्जन हो, उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय ण्यत् (य) लगता है। इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा मे अकार हो, तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और यदि कोई स्वर हो, तो वह बहुधा गुण को प्राप्त होता है।

ण्यत्[3] तथा घित् (जिसमे घ इत् हो)प्रत्यय लगने पर पूर्व के च् और ज् के स्थान मे क् और ग् यथाक्रम हो जाते हैं, किन्तु[4] यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गर्ज्), तो यह परिवर्तन न होगा।

---

१ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ।३।१।१०९। मृजेर्विभाषा ।३।१।११३। भृञोऽसंज्ञायाम् ।३।१।११२। विभाषा कृवृषोः ।३।१।१२०।

२ ऋहलोर्ण्यत् ।३।१।१२४।

३ चजोः कु घिण्यतोः ।७।३।५२।

४ न क्वादेः ।७।३।५९।

'यत्' का विचार करते समय कह आए हैं कि 'स्वरान्त धातुओ के अनन्तर यत् लगता है', किन्तु यहाँ 'ऋकारान्त धातुओ के उपरान्त ण्यत् लगता है'—ऐसा नियम रक्खा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओ को छोड कर अन्य स्वरान्त धातुओ मे यत् लगता है, ऋकारान्त मे ण्यत्। इसी प्रकार उन व्यंजनान्त धातुओ को छोड कर जिनमे यत् और क्यप् लगता है, शेष मे ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थ—

कृ+ण्यत्=क्+आर् (वृद्धि)+य=कार्य।

पठ्+ण्यत्=प्+आ+ठ्+य=पाठ्य (उपधा के अ को वृद्धि)।

वृष्+ण्यत्=व्+अर्+ष्+य=वर्ष्य (उपधा के ऋ को गुण)।

पच्=ण्यत्+प+आ+क्+य=पाक्य- पकाने योग्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् को क्)।

मृज्+ण्यत्=म्+आर्+ग+य=मार्ग्य—पवित्र करने योग्य (उपधा के ऋ की वृद्धि और ज् को ग्)।

च[1] और ज का क् और ग् हो जाने वाला नियम यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच्, त्यज् धातुओ मे नही लगता—याज्य (यज्ञ मे देने योग्य, पूज्य), याच्य (माँगने योग्य), रोच्य (प्रकाश करने योग्य), प्रवाच्य (ग्रन्थविशेष—सि० कौ०), अर्च्य (पूज्य), त्याज्य।

भुज्[2] के दोनो रूप बनते है—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य), वच्[3] के भी वाच्य (कहने योग्य) और वाक्य (पद-समूह)—ये दो रूप होते हैं।

उपरान्त[4] अथवा ऊकारान्त धातुओ के अनन्तर भी ण्यत् प्रत्यय लगता है (यदि आवश्यकता का बोध कराना हो, तो), जैसे—

श्रू+ण्यत्=श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)

पू+ण्यत्=पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)

---

१ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ।७।३।६६। त्यजेश्च । वा०।

२ भोज्य भक्ष्ये ।७।३।६९। भोग्यमन्यत्।

३ वचोऽशब्दसज्ञायाम् ।७।३।६७।

४ ओरावश्यके ।३।१।१२५।

यु+ण्यत्=याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)

लू+ण्यत्=लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

१७०—ऊपर[1] कह आए हैं कि कृत्यप्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य मे ही प्रयोग मे आते है, किन्तु थोडे से ऐसे शब्द हैं, जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य मे भी प्रयुक्त होते हैं। वे ये है—

वस्+तव्य=वास्तव्य (बसने वाला)—इस अर्थ मे णिच् भी हो जाता है, जिसके कारण वृद्धि रूप 'वास्' हो गया।

भू+यत्=भव्य (होने वाला)

गै+यत्=गेय (गाने वाला)

प्रवच्+अनीयर्=प्रवचनीय (व्याख्यान करने वाला)

उपस्था+अनीयर्=उपस्थानीय (निकट होने वाला)

जन्+यत्=जन्य (पैदा करने वाला)

आप्लु+ण्यत्=आप्लाव्य (तैरने वाला)

आपत्+ण्यत्=आपात्य (गिरने वाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक के शब्द विकल्प से कर्तृवाच्य मे प्रयुक्त होते है। कृत्यान्त होने के कारण कर्म और भाववाच्य मे तो प्रयुक्त होते ही हैं, जैसे, गेय साम्नामयम्=यह साम का गाने वाला है (कर्तृवाच्य), गेय सामानेन (कर्मवाच्य)। इसी प्रकार भव्योऽय भव्यमनेन वा। अन्य के विषय में भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

## कृत् प्रत्यय

१७१—यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनो प्रकार के प्रत्ययों का बोध होता है, तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, शेष कृत् प्रत्ययो को ही भेद प्रकट करने के लिए कभी-कभी कृत् कहते हैं। इन कृत् प्रत्ययो मे कुछ ऐसे हैं, जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नही। जिनके रूप नही चलते, उनके

---

१ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च। वा०। भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।३।४।६८।

विषय मे ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा। शेष के रूप चलते है, ऐसा समझना चाहिए।

## भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७२—भूतकाल के कृत् प्रत्ययो को अंग्रेजी मे पास्ट् पार्टिसिप्ल् (Past Participle) कहते हैं। इस[1] अर्थ मे प्रधानत दो प्रत्यय है—क्त (त) और क्तवतु (तवत्), इन दोनो प्रत्ययो को "निष्ठा" कहते है। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है—'समाप्ति'। क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते है, इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते है, जैसे, 'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् धातु मे क्त प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया, सोऽपराध कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। साराश यह कि क्त और क्तवतु समाप्तिबोधक प्रत्यय है। ये दोनो प्रत्यय प्राय सभी धातुओ के अनन्तर भूतकाल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इनके क् और उ का लोप हो जाता है और 'त' तथा 'तवत्' शेष रह जाते है। इनके रूप तीनो लिङ्गो मे और सातो विभक्तियो मे विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुल्लिङ्ग हुआ तो पुल्लिङ्ग, स्त्री० और नपुसक० तो स्त्री० नपुसक०। क्त-प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग मे अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग मे आकारान्त होते है। क्तवतु मे अन्त होने वाले शब्द पुल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग मे तकारान्त (श्रीमत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग मे ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओ के क्तान्त और क्तवन्त रूप तीनो लिङ्गो मे प्रथमा के एकवचन मे दिए जाते हैं—

**क्त-प्रत्ययान्त**

| पु० | न० | स्त्री० |
|---|---|---|
| पठ्—पठित | पठितम् | पठिता |
| स्ना—स्नात | स्नातम् | स्नाता |
| पा—पात | पातम् | पाता |

१ भूते ।३।२।८४। क्तक्तवतू निष्ठा ।१।१।२६।

| | | |
|---|---|---|
| भू—भूत | भूतम् | भूता |
| कृ—कृत | कृतम् | कृता |
| त्यज्—त्यक्त | त्यक्तम् | त्यक्ता |
| तृप्—तृप्त | तृप्तम् | तृप्ता |
| शक्—शक्त | शक्तम् | शक्ता |
| सिच्—सिक्त | सिक्तम् | सिक्ता |

**क्तवतु–प्रत्ययान्त**

| | | |
|---|---|---|
| पठितवान् | पठितवत् | पठितवती |
| स्नातवान् | स्नातवत् | स्नातवती |
| पातवान् | पातवत् | पातवती |
| भूतवान् | भूतवत् | भूतवती |
| कृतवान् | कृतवत् | कृतवती |
| त्यक्तवान् | त्यक्तवत् | त्यक्तवती |
| तृप्तवान् | तृप्तवत् | तृप्तवती |
| शक्तवान् | शक्तवत् | शक्तवती |
| सिक्तवान् | सिक्तवत् | सिक्तवती |

(१) निष्ठा[1] प्रत्ययो के पूर्व जिन धातुओ मे सम्प्रसारण होता है, उनमे निष्ठा प्रत्यय जुडने पर भी सम्प्रसारण हो जाता है, अर्थात् यदि प्रथम वर्ण य, र, ल, व हो, तो उसके स्थान मे क्रम से इ, ऋ, लृ, उ हो जाते हैं, जैसे ब्रू+क्त=वच्+त=उक्त, ब्रू+क्तवतु=वच्+तवत्=उक्तवत्, वस्+क्त=उषित, वस्+क्तवतु=उषितवत्।

(२) यदि[2] निष्ठा प्रत्यय ऐसी धातु के उपरान्त आवे जिसके अन्त मे र् अथवा द् हो (और निष्ठा तथा धातु के बीच मे सेट् अथवा वेट् की "इ" न आवे, जैसे—चर्+क्त=चर्+इ+त=चरित) तो निष्ठा के त् के स्थान मे न् हो जाता है और उसके पूर्व के द् को भी न् हो जाता है, जैसे—शॄ से शीर्ण,

१ इग्यण सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।

२ रदाभ्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द ।८।२।४२।

शीर्णवत्, जॄ से जीर्ण, जीर्णवत्, छिद् से छिन्न, छिन्नवत्, भिद् से भिन्न, भिन्नवत्।

सयुक्ताक्षर[1] से आरम्भ होने वाली और आकार मे अन्त होने वाली तथा कही न कही य्, र्, ल्, व् मे से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, घ्यान। किन्तु कुछ मे नही भी होता—ख्यात, घ्यात आदि।

१७३—क्तवतु[2] प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवाच्य मे प्रयोग मे आते हैं, अर्थात् कर्ता (Agent) के विशेषण होते हैं, जैसे—स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु, इत्यादि। खल्[3] तथा कृत्य प्रत्ययो की ही भाँति क्त प्रत्यय भी कर्मवाच्य और भाववाच्य मे प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म (Object) का विशेषण होता है, जैसे—तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम्, दत्त धनम् (दिया हुआ धन)। परन्तु[4] गत्यथक धातुओ मे तथा अकमक धातुओ मे का 'क्त' कर्तृवाच्य के अर्थ मे भी प्रयोग मे आता है, जैसे—स गत, चलित, ग्लान। इसी प्रकार श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, तथा जॄ धातुओ के क्तान्त शब्द भी कर्तृवाच्य का बोध कराते हैं—लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरि=हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, हरि शेषमधिशयति, हरि शेष (नाग) पर सोये, हरि वैकुण्ठमधिष्ठित, शिवमुपासित हरि—हरि ने शिव को पूजा, बालक रामनवमीमुपोषित—लडके ने रामनवमी को उपवास किया। राममनुजात, गरुडमारूढ, विश्वमनुजीर्ण इत्यादि प्रयोग भी इसी प्रकार होगे।

नपुसकलिङ्ग[5] मे क्तान्त शब्द कभी-कभी उस क्रिया से बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्बल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग मे आता है, जैसे—तस्य गत वरम् (उसका चला जाना अच्छा है)।

---

१ सयोगादेरातोधातोर्यण्वत ।८।२।४३।

२ कर्तरि कृत् ।३।४।६७।

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ।३।४।७०।

४ अगत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ।३।४।७२।

५ नपुसके भावे क्त ।३।३।११४।

यहाँ 'गत' 'गमन' के अर्थ मे आया है। इसी प्रकार पठितम्=पठनम्, सुप्तम् स्वाप, इत्यादि।

लिट्[1] (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस्) और कानच् (आन) हैं। क्वसु परस्मैपद है, अत परस्मैपदी धातु के अनन्तर जोडा जाता है और कानच् आत्मनेपद है, अत आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द प्राय वैदिक सस्कृत मे ही मिलते हैं, किन्तु कभी-कभी भाषा-सस्कृत मे भी प्रयोग मे आते दिखाई पडते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन मे प्रत्यय लगने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन मे रूप हुआ जग्मु, इसमे 'जग्म्' धातु का रूप हुआ, इसी प्रकार ददु से दद् इत्यादि) इसमे ये प्रत्यय जोडे जाते हैं। यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त मे आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच मे इ हो जाती है, उदाहरणार्थ—

| धातु— | क्वसु | कानच् |
|---|---|---|
| गम्— | जग्मिवस | |
| नी– | निनीवस् | निन्यान |
| दा— | ददिवस् | ददान |
| वच् | ऊचिवस् | ऊचान |
| कृ— | चकृवस् | चक्राण |
| दृश्— | ददृश्वस् (या ददृशिवस्) | |

इनके रूप तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग सज्ञाओ के समान चलते हैं, जैसे, स जग्मिवान्—वह गया, त तस्थिवास नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खडे हुए उसको, श्रेयासि सर्वाण्यधिजग्मिवास्त्वम्—तुमने सब अच्छी बातें प्राप्त की थी।

## वर्तमान काल के कृत् प्रत्यय

१७४—इनको अँग्रेजी मे प्रेजेंट पार्टिसिप्ल् (present participle) कहते हैं। इस[2] अर्थ का बोध कराने के लिए शतृ (अत्) और शानच् (आन)

१ लिट कानज्वा। क्वसुश्च ।३।२।१०६—७।

२ लट शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ।३।२।१२४। तौ सत ।३।२।१२७।

मुख्य है। इन दोनो को सस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते है। 'सत्' का अर्थ है—'विद्यमान', 'वर्तमान'। ये दोनो प्रत्यय किसी धातु मे जुडकर उस धातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषणरूप से कराते है, जैसे, स गच्छन्—वह जात हुआ (है) अर्थात् वह जाता रहा है, स पठन् (अस्ति)—वह पढ रहा है। इन प्रयोगो से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का अर्थ सत् प्रत्ययो से सूचित किया जाता है।

**१७५**—शतृ परस्मैपदी धातुओ के अनन्तर तथा शानच् आत्मनेपदी धातुओ के अनन्तर जोडा जाता है। धातुओ का वर्तमान काल के अन्यपुरुष के बहुवचन मे प्रत्यय लगने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे, गच्छन्ति—गच्छ, ददति—दद् आदि), उसी मे सत् प्रत्यय जोडे जाते हैं। यदि धातु के रूप के अन्त मे अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है। यदि शानच्[1] के पूर्व अकारान्त धातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जुडता है, अन्यथा 'आन'। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिये जाते है—

| | परस्मै० | आत्मने० | कमवाच्य |
|---|---|---|---|
| पठ् | पठत् | | पठ्यमान |
| कृ | कुर्वत् | कुर्वाण | क्रियामाण |
| गम् | गच्छत् | | गम्यमान |
| नी | नयत् | नयमान | नीयमान |
| दा | ददत् | ददान | दीयमान |
| चुर् | चोरयत् | चोरयमाण | चोर्यमाण |
| पिपठिष् | पिपठिषत् | पिपठिमाण | पिपठिष्यमाण |

आस्[2] धातु के बाद शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है—आस्+शानच्=आसीन।

विद्[3] धातु के बाद शतृ प्रत्यय जुडता है और शतृ के ही अर्थ मे विकल्प

१ आने मुक् ।७।२।८२।

२ ईदास ।७।२।८३।

३ विदे शतुर्वसु ।७।१।३६।

से 'वसु' आदेश हो जाता है। इस प्रकार विद्+शतृ=विदन्, विद् वसु=विद्वस्, जिसके रूप विद्वान् इत्यादि होंगे। स्त्रीलिङ्ग मे विदुषी बनेगा।

सत् मे अन्त होने वाले शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो में अलग-अलग चलते हैं।

(क) वर्तमान[1] का ही अर्थ प्रकट करने के लिए पू (पवित्र करना) तथा यज् धातुओ के बाद शानन् प्रत्यय जोडते हैं, जैसे—पू+शानन्=पवमान। यज्+शानन्=यजमान ।

(ख) चानश्[2] (आन) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनो प्रकार की धातुओ मे किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोडा जाता है, जैसे, भोग भुञ्जान —भोग भोगने की आदत वाला। कवच बिभ्राण —कवच धारण करने की अवस्था वाला (अर्थात् तरुण) शत्रु निघ्नान — शत्रु को मारने वाला (अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला)।

## भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१७६—भविष्यकाल[3] के प्रत्यय जिनको अँग्रेजी मे फ्यूचर् पार्टिसिप्ल् (Future Participle) कहते है, सस्कृत मे दो हैं—वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि ये भविष्य (लृट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन मे जो धातु-रूप होता है, उसके अनन्तर जोडे जाते हैं, जैसे भविष्यन्ति के 'भविष्य' मे अत् और मान जोडने पर 'भविष्यत्' और 'भविष्यमाण' रूप बनते हैं। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्ययो को कभी-कभी 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिये जाते हैं—

| | परस्मै० | आत्मने० | कर्मवाच्य |
|---|---|---|---|
| पठ् | पठिष्यत् | | पठिष्यमाण |
| कृ | करिष्यत् | करिष्यमाण | करिष्यमाण |
| गम | गमिष्यत् | | गमिष्यमाण |
| नी | नेष्यत | नेष्यमाण | नेष्यमाण |
| दा | दास्यत् | दास्यमान | दास्यमान |

१ पूङ्यजो शानन् ।३।२।१२८।

२ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ।३।२।१२९।

३ लृट सद्वा ।३।३।१४।

| | | | |
|---|---|---|---|
| चुर् | चोरयिष्यत | चोरयिष्यमाण | चोरयिष्यमाण |
| पिपठिष् | पिपठिष्यत् | पिपठिष्यमाण | पिपठिष्यमाण |

इन प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो के रूप भी तीनो लिङ्गो मे अलग-अलग सज्ञाओ के समान चलते हैं।

## तुमुन् प्रत्यय

१७७—जब[1] कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता है, तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है, उसकी धातु मे तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है, जैसे कृष्ण द्रष्टु याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है। इस वाक्य मे दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। 'जाने' का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश् मे तुमुन् (तुम) जोडकर "द्रष्टुम्" बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है, उसकी अपेक्षा सदा बाद को होती है, ऊपर के उदाहरण मे देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्ण द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य मे जाने की क्रिया की समाप्ति के उपरान्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य मे होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का बोध अँग्रेजी मे जेरिण्डियल् इन्फिनिटिव् (Gerundial Infinitive) से होता है, जैसे—He goes to see Krishna वाक्य मे to see का अर्थ है 'देखने के लिये'। किन्तु अँग्रेजी मे इन्फिनिटिव् सज्ञा को तरह भी प्रयोग मे आता है और तब उसको नाउन् इन्फिनिटिव् या सिम्पिल इन्फिनिटिव् कहते हैं। सस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउन इन्फिनिटिव् की तरह कभी भी प्रयोग मे नही आती, इतना ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे To go to see Krishna is good—कृष्ण को देखने के लिये जाना अच्छा है।

---

१ तुमुन्ण्वुलौ क्रियाया क्रियार्थायाम्।३।३।१०। जिस क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है, उसकी धातु मे भविष्यत् अर्थ प्रकट करने के लिए तुमुन् और जैण्वुल (अक) होते हैं। जैसे 'कृष्ण द्रष्टु दर्शको वा याति।'

इस वाक्य मे दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। इनमे से दो के लिए अँग्रेजी मे इन्फिनिटिव् प्रयोग मे आया है, एक का अर्थ है 'जाना', दूसरे का 'देखने के लिए'। इनमे से 'देखने के लिए'—इस अर्थ के लिए सस्कृत मे तुमुनन्त क्रिया आवेगी, 'जाना' के लिए कोई सज्ञा। सस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्ण द्रष्टु गमन वरमस्ति। इस वाक्य मे 'द्रष्टु' तुमुनन्त क्रिया है और 'गमन' सज्ञा। इस प्रकार, नाउन् इन्फिनिटिव की तरह, सस्कृत के शब्द को प्रयोग मे नही ला सकते, ला सकते है तो केवल जेरण्डियल् इन्फिनिटिव् की तरह।

(क) जिस[1] क्रिया के साथ तुमुनन्त शब्द आता है, उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न कर्ता होने से तुमुनन्त शब्द प्रयोग मे नही लाया जा सकता, जैसे, राम पठितु विद्यालय गच्छति—इस वाक्य मे 'पठितु' और 'गच्छति' दोनो का कर्ता राम ही है। यदि दोनो का कर्ता अलग-अलग होता तो तुमुनन्त शब्द प्रयोग मे न आता।

(ख) कालवाची[2] शब्दो (काल, समय, बेला)के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग मे आता है, जैसे गन्तुम् कालोऽयमस्ति—यह समय जाने के लिए है। यहाँ दो शब्द क्रियावाचक है—'है' और 'जाने के लिए'। 'है' का कर्त्ता है 'काल' और 'जाने के लिए' का कर्त्ता कोई और किन्तु, यहाँ तब भी तुमुनन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, भोक्तु वेला, अध्येतु समय, द्रष्टु काल इत्यादि प्रयोग होते है।

तुमुनन्त[3] शब्द अव्यय होता है, इसके रूप नही चलते।

## पूर्वकालिक क्रिया

**१७८**—जब किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ होती है, तब हो गई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी मे इसका बोध 'कर'

---

१ समानकर्तृकेषु तुमुन् ।३।३।१५८।

२ कालसमयवेलासु तुमुन् ।३।३।१६७।

३ मान्तत्वादव्ययत्वम । सि० कौ०।

अथवा 'करके' लगा कर होता है, जैसे, राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—इस वाक्य मे राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्वकालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया और उसके साथ वाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य मे 'मारकर' और 'दिया' दोनो का कर्ता 'राम' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नही हो सकता, जैसे, 'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया'—यह वाक्य अशुद्ध है क्योकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

[1]पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत मे धातु के आगे क्त्वा (त्वा) प्रत्यय जोडा जाता है। ऊपर के हिन्दी वाक्य का अनुवाद संस्कृत मे इस प्रकार होगा—राम रावण हत्वा विभीषणाय राज्य ददौ। परन्तु[2] यदि धातु के पूर्व मे कोई उपसर्ग हो अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो क्त्वा के स्थान मे ल्यप् (य) आदेश हो जाता है, परन्तु नञ् के पूर्व होने पर नही।

उदाहरणार्थ—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| गम् | + | क्त्वा | = | गत्वा, |
| किन्तु अवगम् | + | ल्यप् | = | अवगत्य, अवगत्वा नही। |
| पठ् | + | क्त्वा | = | पठित्वा, |
| किन्तु प्रपठ् | + | ल्यप् | = | प्रपठ्य, प्रपठित्वा नही। |

परन्तु नञ् पूर्व पद रहने पर अगत्वा ही होगा अगत्य नही।

पूर्वकालिक क्रिया के रूप नही चलते। यह अव्यय है।

(क) क्त्वा का 'त्वा' प्राय धातु मे जैसा का तैसा जोडा जाता है जैसे स्ना—स्नात्वा, ज्ञा—ज्ञात्वा, नी—नीत्वा, भू—भूत्वा, कृ—कृत्वा, धृ—धृत्वा, ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमे सेट् या वेट् की इ नही जुडती, न् का

१ समानकर्तृकयो पूर्वकाले।३।४।२१।

२ समासेऽनञ्पूर्वे ल्यप्।७।१।३७।

लोप करके जोडी जाती हैं, जैसे हन्—हत्वा, मन्—मत्वा, किन्तु जन्—जनित्वा, खन्—खनित्वा। धातु का प्रथम अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो बहुधा क्रम से इ, ऋ, ल, उ हो जाता है, जैसे, यज्+क्त्वा=इष्ट्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा, वप्—उप्त्वा। यदि धातु और प्रत्यय के बीच मे इ आ जावे तो पूर्व का स्वर गुण-रूप धारण करता है, जैसे—शी+क्त्वा=श्+ए+इ+त्वा=शे+इ+त्वा=शयित्वा, इसी प्रकार जागरित्वा आदि।

[1]जान्त धातुओ और नश् धातु के बाद क्त्वा जुडने पर विकल्प से 'न' का लोप होता है, जैसे—भुञ्ज्+क्त्वा=भुक्त्वा, भुङ्क्त्वा, रञ्ज्+क्त्वा=रक्त्वा, रङ्क्त्वा, नश्+क्त्वा=नष्ट्वा, नष्ट्वा। इसका नशित्वा भी रूप होगा।

ल्यप् के पूर्व यदि स्वर ह्रस्व हो तो 'य' न जुडकर 'त्य' जुडता है, अर्थात्[2] धातु और ल्यप् के 'य' के बीच मे त् जुड जाता है, जैसे, निश्चित्य, अवकृत्य, विजित्य, किन्तु आ+दा+ल्यप्=आदाय, इसी प्रकार विनीय, अनुभूय इत्यादि, क्योकि दा, नी तथा भू धातुएँ दीर्घस्वर मे अन्त होती है। बहुधा नकारान्त धातुओ के न् का लोप करके त्य जोडा जाता है, जैसे अवमत्य, प्रहृत्य, वितत्य, किन्तु प्रखन्य। गम्, नम्, यम्, रम् के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो-दो रूप होते हैं।

णिजन्त[3] और चुरादिगण की धातुओ की उपधा मे यदि ह्रस्व स्वर हो तो उनमे ल्यप् के पूर्व अय् जोडा जाता है, अन्यथा नही, यथा—प्रणम् (णिजन्त) +अय्+ल्यप् (य) =प्रणमय्य, किन्तु प्रचोर+य=प्रचोर्य (प्रचोरय्य नही होता)।

आप्[4] धातु के बाद जुडने पर विकल्प से अय् आदेश होता है, जैसे प्र+आप्+ल्यप्=प्रापय्य, प्राप्य।

---

१ जान्तनशा विभाषा ।३।४।३२।

२ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ।६।१।७१।

३ ल्यपि लघुपूर्वात् ।६।४।५६।

४ विभाषाप ।६।१।५७।

(ख) पूर्वकालिक[1] क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है, तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है, जैसे, अल कृत्वा—बस, मत करो, पीत्वा खलु—मत पियो, विजित्य खलु—बस, न जीतो, अवमत्यालम्—बस, अपमान न करो।

## णमुल् प्रत्यय

**१७९**—जब[2] किसी क्रिया को बार-बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है और यह शब्द दो बार[3] रक्खा जाता है, जैसे, वह बार-बार याद करके शिव को प्रणाम करता है—यहाँ याद करने की क्रिया बार-बार होती है। इसलिए सस्कृत मे कहेंगे—"स स्मार स्मार प्रणमति शिवम्", अथवा "स स्मृत्वा प्रणमति शिवम्"। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है। स्मृत्वा इसी प्रकार—

पी पी कर अर्थात् बार-बार पीकर—पाय पाय अथवा पीत्वा पीत्वा—पा
खा खाकर ,, ,, खाकर—भोज भोज ,, भुक्त्वा भुक्त्वा—भुज्
जा जाकर ,, ,, जाकर—गाम गाम ,, गत्वा गत्वा—गम्
जग जगकर ,, ,, जगकर—जागर जागर ,, जागरित्वा जागरित्वा —जागृ
पा पाकर ,, ,, पाकर—लाभ लाभ ,, लब्ध्वा लब्ध्वा—लभ्
सुन सुनकर ,, ,, सुनकर—श्राव श्राव ,, श्रुत्वा श्रुत्वा—श्रु

णमुल् का 'अम्' धातु मे जोडा जाता है। यदि धातु आकारान्त हुई तो णमुल् के अम् और इस अ के बीच 'य' आ जाता है अर्थात् अम् के स्थान मे यम् जुडता है।

---

१ अलखल्वो प्रतिषेधयो प्राच्या क्त्वा ।३।४।१८।

२ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ।३।४।२२।

३ नित्यवीप्सयो ।८।१।४।

जैसे—दा+अम्=दाय दाय, इसी प्रकार पाय पाय, स्नाय स्नाय, प्रत्यय मे ण होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है, जैसे स्मृ+अम्=स्मारम्, श्रु+अम् =श्रौ+अम्=श्रावम् इत्यादि। णमुलन्त शब्द के रूप नही चलते। यह अव्यय होता है।

[1]यदि दृश् और विद् धातुएँ ऐसे उपपदो के साथ आवें जो उनके कर्म हो तो इनके आगे णमुल् प्रत्यय जुडेगा और समस्त प्रत्ययान्त शब्द साकल्य (All) अर्थ का बोधक होगा और प्रयोग एक ही बार होगा, दो बार नही, जैसे, कन्यादर्शं वरयति—जिस-जिस कन्या को देखता है, उसी से ब्याह कर लेता है। यहाँ 'सभी कन्याओ से ब्याह कर लेता है'—यह अर्थ है।

[2]अन्यथा, एव, कथ, इत्थ शब्द कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य मे इष्ट न हो और केवल अव्ययो का अथ प्रकट करना ही अभीष्ट हो तो णमुल् का प्रयोग होता है, जैसे, अन्यथाकार ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है, यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला वह बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कार—इस तरह, कथङ्कार—किसी तरह, इत्थङ्कार—इस तरह।

[3]स्वादु के अर्थ मे कृ धातु मे णमुल् प्रत्यय लगता है, जैसे—स्वादुङ्कार भुङ्क्ते (अस्वादु कृत्वा भुङ्क्ते इत्यर्थ)। इसी प्रकार सम्पन्नङ्कार, लवणङ्कारम्। सम्पन्न और लवण शब्द स्वादु के पर्याय हैं।

[4]यावत् के साथ विन्द् और जीव् धातुओ मे भी णमुल् जुडता है, जैसे यावत्+विन्द्+णमुल्=यावद्वेदम्। स यावद्वेद भुङ्क्ते—वह जब तक पाता है, तब तक खाता जाता है। इसी प्रकार 'यावज्जीवमधीते' अर्थात् सारे जीवन भर अध्ययन करता जायगा।

[5]जब निर्मूल और समूल कष् के कर्म हो तो कष् मे णमुल् जुडता है, जैसे

---

१ कर्मणि दृशिविदो साकल्ये ।३।४।२९।

२ अन्यथैवङ्कथमित्थसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७।

३ स्यादुमि णमुल् ।३।४।२६।

४ यावति विन्दजीवो ।३।४।३०।

५ निमूलसमूलयो कष ।३।४।३४।

निमूलकाष कषति, समूलकाष कषति (निमूल समूल कषति इत्यर्थ )—समूल अर्थात् जड से गिरा देता है।

[1]जब समूल, अकृत और जीव शब्द हन्, कृ और ग्रह् धातुओं के कर्म हो ता इनके आगे णमुल् जुडता है, जैसे—समूलघात हन्ति अर्थात् जडसहित उखाड रहा है, जीवग्राह गृह्णाति अर्थात् जीवित ही (जीवन्तमेव) पकडता है, इसी प्रकार अकृतकार करोति।

[2]यदि धातु के पूर्व आने वाले उपपद तृतीया या सप्तमी विभक्ति का अर्थ प्रकट करते हो तो धातु के बाद णमुल् प्रत्यय लगता है और समस्त पद सामीप्य अर्थ को ध्वनित करता है, जैसे—केशग्राह युध्यन्ते (केशेषु गृहीत्वा इत्यर्थ ) अर्थात् (वे) केशो को पकडकर युद्ध कर रहे हैं। 'बहुत समीप से लड रहे हैं' यह ध्वनित होता हैं। इसी प्रकार, हस्तग्राह (हस्तेन गृहीत्वा) युध्यन्ते।

णमुलन्त शब्द प्राय समास के अन्त मे आने पर बार-बार के भाव का नही सूचित करता, जैसे, सा वन्दिग्राह गृहीत्वा—वह कैदी करके पकड ली गई, अर्थात् कैद कर ली गई, समूलघातमघ्नत परान्नोद्यन्ति मानिन —मानी पुरुष शत्रुओ को जड से उखाडे बिना उन्नति नही करते।

## कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

१८०—(क) [3]किसी भी धातु के अनन्तर ण्वुल् (वु+अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय उस धातु से सूचित कार्य्य के करने वाले (Agent) के अर्थ मे लगाये जाते हैं, जैसे—कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना'। 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ+ण्वुल्=कृ+अक='कारक' शब्द हुआ और कृ+तृच्=कृ+तृ=कर्तृ शब्द हुआ। कारक, कर्तृ (करने वाला), इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ, दा से दायक, दातृ, पच् से पाचक, पक्तृ, हृ से हारक, हर्तृ इत्यादि। ण्वुल् के पूर्व धातु मे वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु मे गुण भाव होता है, यह ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है।

---

१ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रह ।३।४।३६

२ समासत्तौ ।३।४।५०।

३ ण्वुल्तृचौ ।३।१।१३३।

नोट—[1]ण्वुल् प्रत्यय तुमुन् (१७७) की तरह क्रियार्थं भी प्रयोग मे आता है, जैसे, कृष्ण दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

(ख) नन्दि[2] आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि के णिजन्त रूप) धातुओ के अनन्तर ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि इस गण के मुख्य शब्द, है) के अनन्तर णिनि (इन्) तथा पच् आदि (पच , वद , चल , पत , जर मर , क्षम , सेव , व्रण , सर्प आदि इस गण के मुख्य शब्द हैं) धातुओ के अनन्तर अच् (अ) लगाकर कर्तृबोधक शब्द बनाये जाते हैं, जैसे—नन्द+ल्यु=नन्दन (नन्दयतीति नन्दन) इसी प्रकार वाशन , मदन , दूषण , साधन , वर्धन , शोभन , रोचन । गृह्णातीति ग्राही (ग्रह्+इन्=ग्राहिन्)। पच्+अच् (अ)=पच (पचतीति पच)।

(ग) जिन[3] धातुओ की उपधा मे इ, उ, ऋ, लृ मे से कोई स्वर हो, उनके अनन्तर तथा ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कृ (बिखेरना) के अनन्तर कर्तृवाचक[4] क (अ) प्रत्यय लगता है जैसे—

क्षिप्+क=क्षिप (क्षिपतीति क्षिप—फेकने वाला), इसी प्रकार लिख (लिखने वाला), बुध (समझने वाला), कृश (दुबला), ज्ञ (जानने वाला), प्रिय (प्रसन्न करने वाला), किर (बखेरने वाला)।

आकारान्त[4] धातु के (तथा ए, ऐ, ओ, औ मे अन्त होने वाली जो धातु आकारान्त हो जाती है, उसके) पूर्व यदि उपसर्ग हो, तब भी 'क' प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रजानानीति प्रज्ञ (प्रज्ञा+क), आह्वयतीति आह्व (आह्वे+क)।

(घ) यदि[5] कर्म के योग मे धातु आवे तो कर्तृवाचक अ (अण्) प्रत्यय

१ तुमुन्ण्वुलौ क्रियाया क्रियार्थायाम् ।३।२।१०।

२ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच ।३।१।१३४।

३ इगुपधज्ञाप्रीकिर क ।३।१।१३५।

४ आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६।

५ कर्मण्यण् ।३।२।१।

होता है, जैसे—कुम्भ करोतीति कुम्भकार (कुम्भ+कृ+अण्), भार हरतीति भारहार (भार+हृ+अण्)। अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है।

नोट—कर्म[1] के योग मे अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयोग मे आता है। जैसे, कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है।

परन्तु[2] यदि धातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग मे धातु के अनन्तर क (अ) प्रत्यय लगेगा, अण् नही, जैसे—गा ददातीति गोद (गो+दा+क), किन्तु गा सन्ददातीति—गोसन्दाय (गो+सम्+दा+अण्)।

इसके[3] अतिरिक्त मूलविभुज, नखमुच, काकग्रह, कुमुद, महीध्र, कुध्र, गिरिध्र आदि कुछ शब्दो के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ मे लगता है।

कर्म[4] के योग मे अर्ह् धातु के अनन्तर अच् (अ) प्रत्यय लगता है, अण् नही, जैसे—पूजामर्हतीति पूजार्ह ब्राह्मण (पूजा+अर्ह+अच्)।

(ङ)[5] चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट (अ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे कुरुषु चरतीति—कुरुचर (कुरु+चर्+ट)।

यदि[6] चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय शब्दो मे से किसी का योग हो, तब भी ट प्रत्यय लगेगा, जैसे—भिक्षा चरतीति भिक्षाचर (भिक्षा+चर्+ट) सेना चरति (प्रविशतीति) सेनाचर, आदाय (गृहीत्वा) चरति (गच्छतीति) आदायचर।

कृ[7] धातु के पूर्व यदि कम का योग हो और हेतु, आदत (ताच्छील्य) अथवा आनुलोम्य (अनुकूलता) का बोध हो, तो अण् (कर्मण्यण्) प्रत्यय न लगकर

---

१ अण् कर्मणि च।३।३।१३।

२ आतोऽनुपसर्गे क।३।२।३।

३ अप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसख्यानम्। वा०।

४ अर्हे।३।२।१२।

५ चरेष्ट।३।२।१६।

६ भिक्षासेनादायेषु च।३।२।१७।

७ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु।३।२।२०।

ट प्रत्यय लगता है, जैसे, यश करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करने वाली विद्या, यहाँ विद्या यश की हेतु है, इसलिए ट प्रत्यय हुआ, श्राद्ध करोतीति श्राद्धकर (श्राद्ध करने की आदत वाला), वचन करोतीति वचनकर (वचनानुकूल कार्य करने वाला)।

यदि[1] कृ धातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, सख्या (संख्यावाचक शब्द), जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुष्), अरुष् शब्द कर्म रूप मे आवे तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नही, जैसे, दिवाकर, विभाकर, निशाकर, बहुकर, एककर, धनुष्कर, अरुष्कर, यत्कर, तत्कर इत्यादि।

(च)[2] णिजन्त एज् धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो तो खश् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—जनम् एजयतीति जनमेजय (जन+एज्+खश्)।

[3]अरुष्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दो (यदि वे अव्यय न हो) के अनन्तर यदि खित् (जिसका ख इत् हो) प्रत्यय मे अन्त होने वाला शब्द आवे तो बीच मे एक म् आ जाता है, जैसे—जन शब्द अकारान्त है, इसके अनन्तर एजय शब्द आया जिसमे खश् प्रत्यय लगा है जो खित् है, अत बीच मे म् आवेगा—जन+म्+एजय=जनमेजय।

[4]ध्मा और धेट् के पूर्व यदि नासिका और स्तन कर्मरूप मे हो तो इनके आगे खश् प्रत्यय जुडता है, जैसे—नासिका ध्मायतीति नासिकन्धम, स्तनं धयतीति स्तनन्धय।

[5]नोट—खिदन्त शब्दो के आगे आने पर पूर्वपद का दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है और तब मुमागम होता है। इसीलिए नासिका मे 'का' का आकार अकार मे परिणत हो गया।

---

१ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु।३।२।२१।

२ एजे खश्।३।२।२८।

३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्।६।३।६७।

४ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटो।३।२।२९।

५ खित्यनव्ययस्य।६।३।६६।

[1]उत्पूर्वक रुज् और वह् धातुओं के पूर्व 'कूल' शब्द के कर्म-रूप में आने पर खश् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—कूल+उत्+रुज्+खश्=कूलमुद्रुज, इसी प्रकार कूलमुद्वह ।

[2]लिह् के पूर्व वह (स्कन्ध) और अभ्र के कर्मरूप मे आने पर खश् प्रत्यय लगता है। जैसे—वह (स्कन्ध) लेढीति वहलिहो गौ, इसी प्रकार अभ्रलिहो वायु ।

[3]तुद् के पूर्व विधु और अरुष्‌के कर्मरूप मे आने पर खश् लगता है, जैसे—विधु तुदतीति विधुन्तुद, इसी प्रकार अरुन्तुद ।

[4]दृश् के पूर्व असूय और तप् के पूर्व ललाट होने पर खश् जुड़ता है। असूर्य मे नञ् का सम्बन्ध दृश् धातु के साथ होगा, जैसे—सूर्यं न पश्यतीति असूर्यपश्या (राजदारा), इसी प्रकार ललाटन्तप सूर्य ।

(छ) [5]वद् धातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म-रूप मे आवें तो वद् धातु मे खच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—प्रिय वदतीति प्रियवद (प्रिय+म्+वद्+खच्), वशवद (वश+म+वद्+खच्)।

(ज) [6]भृ, तॄ, वृ, जि, धृ, सह्, तप्, दम् धातुओं के योग मे तथा गम् धातु के योग मे यदि कमरूप कोई शब्द आवे और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—विश्व बिभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व-+म्+भृ+खच्+टाप्)—पृथ्वी का नाम, रथ तरतीति रथन्तरम् (रथ+म्+तॄ+खच्)—साम का नाम, पतिं वरतीति पतिंवरा—कन्या का नाम, शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जय—एक हाथी का नाम, युगान्तर—पर्वत का नाम, शत्रुसह—राजा का नाम, परन्तप—राजा का नाम, अरिन्दम—राजा का नाम, सुतङ्गम ।

---

१ उदिकूले रुजिवहो ३।२।३१।

२ वहाभ्रेलिह ।३।२।३२।

३ विध्वरुषोस्तुद ।३।२।३५।

४ असूर्यललाटयोर्दृशितपो ।३।२।३६।

५ प्रियवशे वद खच् ।३।२।३८।

६ सज्ञाया भृतॄवृजिधारिसहितपिदम । ३।२।४६। गमश्च ।३।२।४७।

[1]यदि ताप् (तप् का णिजन्त रूप) के पूर्व द्विषत् और पर शब्द कम रूप मे आवें तो ताप् धातु के आगे खच् प्रत्यय जुडेगा, जैसे, द्विषन्त पर वा तापयतीति द्विषन्तप, परन्तप ।

[2]यदि व्रत का अर्थ प्रकट करना हो तो वाक् शब्द के उपपद होने पर यम् धातु के आगे खच् प्रत्यय जुडता है, जैसे, वाच यच्छतीति वाचयमी मौनव्रती इत्यर्थ । व्रत का अर्थ अभीष्ट न होने पर और निबलतादि के कारण वाक का नियन्त्रण करने पर वाच यच्छनीति 'वाग्याम'—ऐसा शब्द बनेगा ।

[3]क्षेम, प्रिय और मद्र शब्दो के उपपद होने पर धातु के आगे खच प्रत्यय जुडता है और अण् भी—क्षेमङ्कर, क्षेमकार, प्रियङ्कर, प्रियकार, मद्रङ्कर मद्रकार । क्षेम करोति क्षेमङ्कर मे 'क्षेम' 'कृ' का कर्म था । यही 'क्षेम' जब कर्म न होकर शेषत्वविवक्षा होने पर 'शेषे षष्ठी' के अनुसार षष्ठी विभक्ति मे होगा, तब अच् प्रत्यय लगकर 'क्षेमकर' शब्द बनेगा । उसका विग्रह होगा—करोतीति कर (कृ+अच्), क्षेमस्य कर इति क्षेमकर, जैसे, 'अल्पारम्भा क्षेमकरा' ।

(ञ)[4] दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य तथा समान शब्दो मे से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कञ् (अ) प्रत्यय लगता है तथा विकल्प से क्विन् भी, जैसे—तद्+दृश्+कञ्=तादृश (वैसा), इसी प्रकार त्यादृश, यादृश, एता ृश, सदृश, अन्यादृश ।

इसी अर्थ मे क्स भी लगता है । क्विन् का लोप हो जाता है, धातु मे कुछ नही जुडता, क्स का स जुडता है, जैसे—तादृश् (तद्+दृश्+क्विन्), तादृक्ष (तद्+दृश्+क्स), अन्यादृश् (अन्य+दृश्+क्विन्), अन्यादृक्ष (अन्य+ +दृश्+क्स) इत्यादि ।

---

१ द्विषत्परयोस्तापे ।३।२।३९।

२ वाचि यमो व्रते ।३।२।४०।

३ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।३।२।४४।

४ त्वदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ।३।२।६०। समानान्ययोश्चेति वाच्यम् । वा० । क्सोऽपि वाच्य । वा० ।

(ञ) [1]सद् (बैठना), सू (पैदा करना), द्विष् (वैर करना), द्रुह् (द्रोह करना), दुह् (दुहना), युज् (जोडना), विद् (जानना, होना), भिद् (भेदना, काटना), छिद् (काटना, टुकडे करना), जि (जीतना), नी (ले जाना) और राज् (शोभित होना) धातुओ के पूर्व कोई उपसर्ग रहे या न रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है। धातु के पूर्व सु, कर्म, पाप, मन्त्र तथा पुण्य शब्दो के कर्म रूप मे आने पर भी क्विप् प्रत्यय लगता है। क्विप् का कुछ भी नही रहता सब लोप हो जाता है, जैसे—

द्युसत् (स्वर्ग मे बैठने वाला=देवता), प्रसू (माता), द्विट् (शत्रु), मित्रध्रुक् (मित्र से द्रोह करने वाला), गोधुक् (गाय दुहने वाला), अश्वयुक् (घोडा जोतने वाला), वेदवित् (वेद जानने वाला), गोत्रभित् (पहाडो को तोडने वाला—इन्द्र), पक्षच्छित् (पक्ष काटने वाला)—इन्द्र, इन्द्रजित् (मेघनाद), सेनानी (सेनापति), सम्राट् (महाराज), सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्। कुछ और धातुओ के अनन्तर भी क्विप् प्रत्यय लगता है, जैसे, चि—अग्निचित्, स्तु—देवस्तुत्, कृ—टीकाकृत्, दृश्—सर्वदृश्, स्पृश्—मर्मस्पृश्, सृज्—विश्वसृज् आदि।

[2]ब्रह्म, भ्रूण तथा वृत्र शब्दो के कर्म रूप मे हन् धातु के पूर्व होने पर क्विप् प्रत्यय जुडता है,—ब्रह्म+हन्+क्विप्=ब्रह्महा, इसी प्रकार भ्रूणहा, वृत्रहा इत्यादि।

(ट) [3]जातिवाचक सज्ञा (ब्राह्मण, हस, गो आदि) को छोडकर यदि कोई और सुबन्त (सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) किसी धातु के पूर्व आवे और ताच्छील्य (आदत) का भाव सूचित करता हो तो उस धातु के अनन्तर णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है, जैसे—उष्ण भोक्तु शीलमस्य उष्णभोजी (उष्ण भुज्+णिनि)—गरम-गरम खाने की जिसकी आदत हो, इसी प्रकार शीतभोजी

---

१ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्।३।२।६१। सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञ ।३।२।८९।

२ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ।३।२।८७।

३ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।३।२।७८। साधुकारिण्युपसख्यानम्। वा०। ब्रह्मणि वद । वा०।

यदि ताच्छील्य (आदत) न सूचित करना हो तो यह प्रत्यय नही लगेगा। किन्तु कृ तथा वद् के पूर्व क्रमश साधु तथा ब्रह्मन् शब्द होने पर ताच्छील्य अर्थ के अभाव मे भी णिनि लगता है, जैसे—साधुकारी, ब्रह्मवादी।

हन्[1] धातु के पूर्व कुमार और शीर्ष उपपद होने पर णिनि प्रत्यय जुडता है, जैसे—कुमारघाती। शिरस् शब्द का 'शीर्ष' भाव हो जाता है इस प्रकार शीष-घाती शब्द बनेगा।

[2]मन् के पूर्व यदि कोई सुबन्त रहे तब भी णिनि लगेगा आदत हो या न हो —पण्डितमात्मान मन्यते इति पण्डितमानी (पण्डित+मन्+णिनि), इसी प्रकार दर्शनीयमानी।

[3]अपने आपको कुछ मानने के अर्थ मे खश् प्रत्यय भी होता है, जैसे—पण्डितम्मन्य (खिदन्त शब्द के पूर्व म् आ जाता है)।

(ठ) [4]अधिकरण पूर्व मे रहने पर जन् धातु के अनन्तर प्राय ड (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रयागे जात प्रयागज, मन्दुराया जातो मन्दुरज। जाति-वर्जित पञ्चम्यन्त उपपद होने पर भी ड लगता है, जैसे—सस्काराज्जात सस्कारज। पूर्व मे होने पर भी जन मे 'ड' लगता है, यदि बना हुआ शब्द किसी का नाम-विशेष हो तो, जैसे—प्रजा (प्रजन्+ड+टाप्)। अनुपूर्वक जन् धातु के पूर्व कर्म उपपद होने पर भी ड प्रत्यय लगता है, जैसे—पुमासमनुरुध्य जाता पुमनुजा। अन्य उपपदो के पूर्व मे होने पर भी जन् मे ड लगता है, जैसे—अज, द्विज इत्यादि।

[5]अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पन्न, उरस् और अधिकरण अर्थ मे सु तथा दु ख के बाद गम् धातु में ड प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—अन्तग,

१ कुमारशीर्षयोर्णिनि ।३।२।५१।

२ मन ।३।२।८३।

३ आत्ममाने खश्च ।३।२।८३।

४ सप्तम्या जनेर्ड । पञ्चम्याजातौ। उपसर्गे च सज्ञायाम्। अनौ कर्मणि। अन्येष्वपि दृश्यते ।३।२।९७।१०१।

५ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ड ।३।२।४८। सर्वत्रपन्नयोरुपसख्यानम् (वार्तिक)। उरसो लोपश्च । वा० । सुदुरोधिकरणे ।। (वार्तिक)

अत्यन्तग, अध्वग, दूरग, पारग, सवग, अनन्तग, सर्वत्रग, पन्नग (सर्प), उरग (सर्प), सुखेन गच्छत्यत्रेति सुग, दुःखेन गच्छत्यत्रेति दुर्ग (किला)।

**नोट**—उरस् के स् का लोप हो जाता है।

## शील-धर्म-साधुकारिता वाचक कृत

१८१—(क) [1]किसी भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन—इन तीन मे से कोई भी भाव लाने के लिये तृन् (तृ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे, कृ+तृन्=कर्तृ—कर्ता कटम्, जो चटाई बनाया करता है, अथवा जिसका धर्म चटाई बनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है—ये तीनो अर्थ इससे सूचित हो सकते हैं।

(ख) [2]अलकार, निराकृ, प्रजन्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अप्—त्रप्, वृत्, वृध्, सह्, चर्—इन धातुओ के अनन्तर इसी अर्थ मे इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय लगता है, जैसे—अलङ्करिष्णु (अलकृत करने वाला), निराकरिष्णु (अपमान करने वाला), प्रजनिष्णु (पैदा करने वाला), उत्पचिष्णु (पकाने वाला), उत्पतिष्णु (ऊपर उठाने वाला), उन्मदिष्णु (उन्मत्त होने वाला), रोचिष्णु (अच्छा लगने वाला), अपत्रपिष्णु (लज्जा करने वाला), वर्तिष्णु (विद्यमान रहने वाला), वर्धिष्णु (बढ़ने वाला), सहिष्णु (सहनशील), चरिष्णु (भ्रमणशील)।

(ग) [3]शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए निन्द्, हिंस्, क्लिश्, खाद्, विनाश, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद्, व्ये, माष्, असूय—इन धातुओ के अनन्तर वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है, जैसे—निंदक, हिंसक, क्लेशक, खादक, विनाशक, परिक्षेपक, परिरटक, परिवादक, व्यापक, भाषक, असूयक।

---

१ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४। तृन् ।३।२।१३५।

२ अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ।३।२।१३६।

३ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ।३।२।१४६।

(घ) [1]चलना, शब्द करना अर्थ वाली धातुओ के अनन्तर तथा क्रोध करना, आभूषित करना अर्थों वाली धातुओ के अनन्तर शील आदि अर्थ मे युच् (अन) प्रत्यय लगता है, जैसे—चलितु शीलमस्य स चलन (चल्+युच्), कम्पन, शब्द कर्त्तु शीलमस्य स शब्दन (खग) (पठिता विद्याम्—यहाँ सकर्मक धातु होने के कारण युच न लगकर साधारण तृन् लगा) क्रोधन, रोषण, मण्डन, भूषण —ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं।

(ङ) [2]जल्प् भिक्ष्, कुट्ट (अलग करना, काटना), लुण्ट् (लूटना), और वृ (चाहना)—इनके अनन्तर शील, धर्म और साधुकारिता का द्योतक षाकन् (आक) प्रत्यय लगता है, जैसे—जल्पाक (बहुत बोलने वाला), भिक्षाक (भिखारी), कुट्टाक (काटने वाला), लुण्टाक (लूटने वाला), वराक (बेचारा)।

(च) [3]स्पृह्, गृह्, पत्, दय्, शी धातुओ के अनन्तर तथा निद्रा, तन्द्रा श्रद्धा के अनन्तर आलुच् (आलु) जोडा जाता है—स्पृहयालु, गृहयालु, पतयालु, दयालु, निद्रालु, तन्द्रालु, श्रद्धालु।

(छ) [4]सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओ तथा आशस् और भिक्ष् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है, जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षु, आशसु, भिक्षु।

(ज) [5]भ्राज, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज, पृ, जु, ग्रावस्तु—इन धातुओ के अनन्तर तथा औरो के भी अनन्तर क्विप् प्रत्यय होता है, जैसे—विभ्राट्, भा, धू, विद्युत्, ऊर्क्, पू, जू, ग्रावस्तुत्, छित्, श्री, धी, प्रतिभू इत्यादि।

## भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८२—(क) [6]भाव का (धातु का अपना) अर्थ द्योतित करने

---

१ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ।२।३।१४८। क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ।३।२।१५१।

२ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ षाकन् ।३।२।१५५।

३ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ।३।२।१५८। शीडोवाच्य । वा० ।

४ सनाशसभिक्ष उ ।३।२।१६८।

५ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुव क्विप् ।३।२।१७७। अन्येभ्योऽपि दृश्यते ।३।२।१७८।

६ भावे ।३।३।१८।

के लिए धातु के अनन्तर घञ् (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जब कोई धात्वर्थ सिद्ध हो जाय, पूरा हो जाय, तब भा हलाता है, जैसे, पाक—पक जाना (पच्+घञ्), लाभ, काम।

'प' अकार की वृद्धि इस नियम से हुई है कि यदि[1] कोई ञित् अथवा णित् प्रत्यय लगता हो, तो धातु की उपधा के अ की वृद्धि हो जाती है। च् के स्थान मे क् इसलिए हुआ है कि [2]घित् (घ जिसका इत् हो) तथा ण्यत् प्रत्यय के पूर्व च् तथा ज् का क्रमश क् तथा ग् हो जाता है।

(ख) [3]इकारान्त धातुओ मे अच् (अ) जो जाता है, जैसे—जि+अच्=जय, नी+अच्=नय, भि+अच्=भयम्।

(ग) [4]ऋकारान्त और उकारात धातुओ मे अप् ... है, जैसे—कृ+अप्=कर—बिखेरना। गृ+अप्=गर—विष। यु+अप्=यव—जोड़ना। लू (ञ्) + अप्=लव—काटना। स्तु+अप्=स्तव—प्रशसा, स्तुति। पू (ञ्)+अप्=पव—पवित्र करना।

[5]ग्रह्, वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश, रण् मे भी अप् लगता है, जैसे—ग्रह, वर, दर, निश्चय, गम, वश, रण।

(घ) यज्, याच्, यत्, विच्छ् (चमकना), प्रच्छ्, रक्ष् मे भावार्थक नङ् (न) प्रत्यय लगता है, जैसे—यज्ञ, याच्ञा, यत्न, विश्न, प्रश्न, रक्ष्ण।

(ङ) उपसर्ग-सहित घुसज्ञक धातुओ [ (डु) दा (ञ्)—देना, दाण्—देना, दो—खडन करना, दे—प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना, धा—

---

१ अत उपधाया ।७।२।११६।

२ चजो कु घिण्यतो ।७।३।५२।

३ एरच् ।३।३।५६। भयदीनामुपसख्यानम् (वार्तिक)।

४ ऋदोरप् ।३।३।५७।

५ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ।३।३।५८। वशिरण्योरुपसख्यानम्। वा०।

६ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ।३।३।६०।

७ उपसर्गे घो कि। कर्मण्यधिकरणे च ।३।३।९२-९३।

धारण करना, धे—पीना] के अनन्तर भावार्थ कि (इ) होता है जैसे—प्रधि =प्रधा+कि (आतो लोप इटि च।६।४।६४। से आकार का लोप हुआ), अन्तर्धि, अधिकरणवाचक शब्द बनाना हो तो भी घु धातुओ मे कर्म के योग मे 'कि' प्रत्यय लगता है, जैसे—जलधि (जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति), नीरधि।

(च) [1]स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द धातुओ मे क्तिन् (ति) जोडकर बनाये जाते हैं, जैसे—कृति, धृति, मति, स्तुति, चिति।

[2]ऋकारान्त धातुओ तथा लू आदि धातुओ के अनन्तर ति जोडने पर वही विकार होता है जो निष्ठा प्रत्यय जोडने मे होता है, जैसे—कृ+ति (क्तिन्) =कीर्णिः, इसी प्रकार गीर्णि, लूनि, धूनि इत्यादि।

(छ) [3]सम्पद्, विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिषद् मे क्विप और क्तिन् दोनो भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—सम्पत्, विपत्, आपत्, प्रतिपत्, परिषत्, सम्पत्ति, विपत्ति, आपत्ति, प्रतिपत्ति, परिषत्ति।

(ज) जिन[4] धातुओ मे कोई प्रत्यय (जैसे सन्, यङ आदि) पहले से ही लगा हो, उनमे स्त्रीलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लिए 'अ' प्रत्यय जोडा जाता है, जैसे—कृ से सन् लगाकर चिकीर्ष धातु, उससे भाववाचक 'अ' प्रत्यय जोडा तो चिकीर्ष शब्द बना, फिर स्त्रीलिङ्ग का टाप् (आ) प्रत्यय लगाकर चिकीर्षा (करने की इच्छा) बना। इसी प्रकार, जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि।

यदि[5] धातु हलन्त हो किन्तु उसमे कोई गुरु अक्षर (सयुक्त व्यञ्जन अथवा दीर्घ स्वर) हो, तब भी क्तिन् न लगाकर 'अ' लगता है, जैसे—ईह् से ईहा, ऊह् से ऊहा इत्यादि।

---

१ स्त्रियां क्तिन्।३।३।९४।
२ ऋल्वादिभ्य क्तिन्निष्ठावद्वाच्य। (वा०)
३ सम्पदादिभ्य क्विप्। वा०। क्तिन्नपीष्यते। वा०।
४ अ प्रत्ययात्।३।३।१०२।
५ गुरोश्च हल।३।३।१०३।

(झ) [1]चिन्त्, पूज्, कथ, कुम्ब्, चर्च् धातुओ मे तथा उपसर्गसहित आकारान्त धातुओ मे अङ प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाते हैं, जैसे—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा, श्रद्धा, अन्तर्धा।

(ञ) [2]णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओ मे तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट्, बन्द्, विद् मे भावार्थ स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय युच् (अन) लगता है, जैसे—कारण (कृ+णिच्+युच्+टाप्), इसी प्रकार हारणा, दारणा। आस्+युच्+टाप्=आसना, श्रन्थना, घट्टना, वन्दना, वेदना।

(ट) नपुसकलिङ्ग[3] भाववाचक शब्द बनाने के लिए कृत् प्रत्यय 'क्त' (निष्ठा) अथवा ल्युट् (अन) धातुओ मे लगाया जाता है, जैसे—हसितम-हसनम्, गतम्, गमनम्, कृतम्, करणम्, हृतम्, हरणम् इत्यादि।

(ठ) पुल्लिङ्ग[4] नाम शब्द बनाने के लिए प्राय धातुओ मे 'घ' प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—आकृ+घ=आकर (खान), आखन (फावडा), आपण (बाजार), निकष (कसौटी), गोचर (चरागाह), सञ्चर (मार्ग), वह (स्कन्ध), व्रज (बाडा), व्यज (पखा), निगम (वेद) आदि।

परन्तु[5] हलन्त धातुओ मे घञ् लगता है, घ नही, जैसे—रम् से राम, इसी प्रकार अपामार्ग (एक ओषधि का नाम)।

## भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८३—(क) कठिन[6] (इसलिए दु खात्मक) और सरल (अतएव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओ के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया

---

१ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ।३।३।१०५। आतश्चोपसर्गे ।३।३।१०६।

२ ण्यासश्रन्थो युच् ।३।३।१०७। घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम्। वा०।

३ नपुसके भावे क्त । ल्युट् च ।३।३।११४।—११५।

४ पुसि सज्ञाया घ प्रायेण ।३।३।११८। गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ।३।३।११९।

५ हलश्च ।३।३।१२१।

६ ईषद्दु सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६।

जाता है। वह भाव दिखाने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दु खार्थ) धातु के पूर्व रहते हैं, जैसे, सुखेन कर्तुं योग्य , सुकर (सुकृ+खल्)— सुकर कटो भवता=चटाई आप से (आसानी से) बन सकती है, ईषत्कर कटो भवता=चटाई आप से जरा मे ही (अनायास ही) बन सकती है, दुखेन कर्तुं योग्य , दुष्कर (दुष्कृ+खल्)—दुष्कर कटो भवता=चटाई आप से मुश्किल से (दु ख से) बन सकती है।

(ख) आकारान्त[1] धातुओ के अनन्तर खल् के अर्थ मे युच् प्रत्यय होता है, खल् नही, जैसे—सुखेन पातु योग्य सुपान ईषत्पान, इसी प्रकार दुष्पान ।

इसी[2] प्रकार दु शासन, दुर्योधन, दुर्वह, सुवह, ईषद्वह इत्यादि, तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा, दुर्वहा आदि तथा नपु० दुष्कर, दुर्वह आदि रूप होते है।

नोट—खल्[3] और खलर्थ प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं, र्ता की नही, इसलिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नही।

## उणादि प्रत्यय

१८४—कृत् प्रत्ययो के दो भेदो (कृत्य और कृत्) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है, बाकी रहे उणादि। उणादि का अर्थ है—उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उण् है। ये प्रत्यय बडे टेढे हैं और बडी जोड-तोड से धातुओ मे शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं।

उणादि[4] का प्रयोग भी बहुल है—कभी किसी अर्थ मे, कभी किसी अर्थ मे। महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा सस्कृत के शेष ऐसे शब्दो की सिद्धि है जो और किसी वर्ग के प्रत्ययो से सिद्ध नही होते।

उदाहरणार्थ[5]—करोतीति 'कारु' (कृ+उण्) शिल्पी क. कश्च, वातीति 'वायु', पिबत्यनेनेति 'पायु' गुदम्, जयति रोगान् इति 'जायु' औषधम्, मिनोति

१ आतो युच् ।३।३।१२८।

२ भाषाया शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्य (वा०)

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ।३।४।७०।

४ उणादयो बहुलम् ।३।३।१।

५ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। उणादि, सूत्र १।

प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति 'मायु' पित्तम्, स्वदते रोचते इति 'स्वादु' साध्नोति परकार्यमिति 'साधु', अश्नुते इति 'आशु' शीघ्रम्।

परुषम्[1] (पॄ+उषच्), नहुष (नह्+उषच्), कलुषम् (कल्+उषच्) इत्यादि।

---

१ पॄनहिकलिभ्य उषच्।

# द्वादश सोपान

## लिङ्ग-विचार

१८५—हिन्दी मे दो लिङ्ग होते है—स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग और सारे पदार्थ वाचक शब्द चाहे चेतन हो अथवा अचेतन इन्ही दो लिङ्गो मे विभक्त होते है। जैसे—लडकी जाती है, गाडी आती है। आदमी आया, रथ चला आदि। सस्कृत मे इन दो लिङ्गो के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुसक-लिङ्ग कहते है। सारी सज्ञाएँ इन्ही तीन लिङ्गो मे विभक्त है, कोई पुल्लिङ्ग कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुसकलिङ्ग। एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुल्लिङ्ग मे है, तो कोई स्त्रीलिङ्ग मे अथवा नपुसकलिङ्ग मे, जैसे—तनु (स्त्री०), देह (पु०) और शरीरम् (नपु०) सभी शरीरवाची है। 'दारा' शब्द पुल्लिङ्ग मे होते हुए भी स्त्री का अर्थ बताता है, देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग मे होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है। इस प्रकार यह विदित है कि सस्कृत भाषा मे लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नही है। यदि सारे अचेतन-पदार्थवाचक शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते, पुरुषवाची शब्द पुल्लिङ्ग मे और स्त्रीवाची स्त्रीलिङ्ग मे तो कहा जा सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से हैं। परन्तु बात इससे उलटी है। इसी कारण स[illegible]त की सज्ञाओ का लिङ्ग जानना बडा कठिन है। इनका ज्ञान कोषो से तथा काव्यग्रन्थो के अध्ययन से होता है।

व्याकरण के कुछ मोटे-मोटे नियम हैं। उनसे भी कुछ सहायता मिल सकती है।

## पुंल्लिङ्ग शब्द

१८६—(क) भावार्थक[1] घञ्, भावार्थक अप् तथा घ्, अच्, नङ (घुसज्ञक धातुओ के उपरान्त) कि प्रत्यय—इन मे अन्त होने वाले शब्द पुल्लिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—

---

१ घञवन्त । घाजन्तश्च । भयलिङ्गभगपदानि नपुसके । नङन्त । याच्ञा स्त्रियाम् । क्यन्तो घु । इषुधि स्त्री च । लिङ्ग० ३६—४२ ।

घञन्त—पाक, त्याग ।

अबन्त—कर, गर ।

टान्त—सञ्चर, गोचर ।

अजन्त—चय, जय [ भय, लिङ्ग, भग, पद—ये शब्द नपु० लि० मे होते हैं ]

नङन्त—यज्ञ, यत्न [ याञ्चा स्त्रीलिङ्ग में ]

क्यन्त—जलधि, निधि आधि [ इषुधि स्त्रीलिङ्ग मे भी होता है ]

(ख) न्[1] तथा उ मे अन्त होने वाले शब्द प्राय पुल्लिङ्ग के होते हैं, जैसे—राजन् (राजा), तक्षन् (तक्षा), प्रभु, इक्षु । कुछ नकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुसक होते हैं। धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु—ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग मे, और श्मश्रु, जानु, वसु (धन वाची), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, मधु, सानु, तालु, दारु, कसेरु, वस्तु और मस्तु नपुसकलिङ्ग मे होते हैं ।

(ग) ऐसे[2] शब्द जिनकी उपधा मे क्, ट्, ण्, थ्, न्, प्, भ्, म्, य्, र्, ष्, स् मे से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हो तो प्राय पुल्लिङ्ग होते हैं, जैसे—स्तबक, कल्क, घट, पट, गुण, गण, पाषाण, उद्गीथ, रथ [किन्तु काष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुसक होते हैं], इन, फेन [जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन श्मशान, रत्न, निम्न तथा चिह्न नपुसक होते हैं], यूप, दीप [पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, समीप, अतरीप नपुसक मे], स्तम्भ, कुम्भ, सोम, भीम, समय, हय, [किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुसक मे], क्षुर, अकुर [द्वार आदि बहुत से शब्द नपुसकलिङ्ग होते हैं], वृष, वत्स, वक्ष, वायस, महानस ।

---

१ नान्त । लि० ४८। उकारान्त । लि० ५१।

२ कोपध ।६१। टोपध । ६४। णोपध । ६७। थोपध ।७०। नोपध ।७४। पोपध ।७७। भोपध ।८०। मोपध ।८३। योपध ।८६। रोपध ।८९। षोपध ।९३। सोपध ।९६।

(घ) देव[1], असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ, मेघ, रश्मि, दिवस—ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्राय पुल्लिङ्ग मे होते है, उदाहरणार्थ, देव—सुर, असुर—दैत्य, आत्मा—क्षेत्रज्ञ, स्वर्ग—नाक (त्रिविष्टप नपुसकलिङ्ग मे और द्यौ स्त्रीलिङ्ग मे होते है), गिरि—पर्वत, समुद्र—अब्धि, नख—कररुह, केशा—शिरोरुहा, दन्त—दशन, स्तन—कुच, भुज—दो, कण्ठ—गल, खड्ग—असि, शर,—बाण, पङ्क—कर्दम, क्रतु—अध्वर, पुरुष—नर, कपोल—गण्ड, गुल्फ—प्रपद, मेघ—नीरद (अभ्र नपुसकलिङ्ग मे), रश्मि—मयूख (दीधिति स्त्रीलिङ्ग मे), दिवस—घस्र (दिन और अहन् नपुसक मे होते हैं)।

(ङ) दार[2], अक्षत, लाज, असु शब्द पुल्लिङ्ग मे तथा सदा बहुवचन मे होते हैं—दारा, अक्षता, लाजा, असव।

## स्त्रीलिङ्ग शब्द

१८७—(क) [3]अनि, ऊ, मि, नि, क्तिन् (ति) और ई प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द प्राय स्त्रीलिङ्ग मे होते हैं। क्रम से उदाहरण—अवनि, चमू, ग्लानि, कृति और लक्ष्मी। परन्तु वह्नि, वृष्णि, अग्नि पुल्लिङ्ग मे होते हैं तथा अशनि, मरणि, अरणि, श्रोणि, योनि और ऊर्मि स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग दोनो मे होते हैं।

---

१ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्काभिधानानि ।४३। क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिनानि ।४६। रश्मिदिवसाभिधानानि ।१००।

२ दाराक्षतलाजाना बहुत्वञ्च ।१०६।

३ अन्यूत्प्रत्ययान्तो धातु। अशनिमरण्यर य पुसि च। मिन्यन्त। वह्निवृष्ण्यग्नय पुसि श्रोणियोन्यूर्मय पुसि च। क्तिन्नन्त। ईकारान्तश्च। लिङ्गानुशासनम् ४—१०

(ख) ऊङ तथा टाप्[1] प्रत्यय मे अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे—कुरू, वामोरू, विद्या, अजा, कन्या आदि।

(ग) एकाक्षर[2] ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग मे होते है, जैसे—श्री, भू आदि। एकाक्षर न होने से पुल्लिङ्ग भी हो सकते है जैसे—पृथुश्री, प्रतिभू आदि।

(घ)[3] तल् प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे पवित्रता, ता आदि।

(ङ)[4] १९ (एकोनविंशति) से लेकर ९९ (नवनवति) तक के सख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

(च)[5] भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता—इन शब्दो का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं, जैसे—पृथिवी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि।

(छ) ऋकारान्त[6] शब्दो मे केवल मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ और ननान्द ही स्त्रीलिङ्ग के होते है।

## स्त्री प्रत्यय

१८८—कुछ सज्ञाएँ ऐसी होती हैं, जिनके जोडे के शब्द होते हैं—एक पुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुल्लिङ्ग सज्ञाओ से स्त्रीलिङ्ग की जोडीदार सज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोडे जाते है, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते है, जैसे—'अज' से टाप् लगाकर 'अजा' स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना। इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते है।

---

१ ऊङाबन्तश्च। लिङ्गा० ११।
२ य्वन्तमेकाक्षरम्। लिङ्गा० १२।
३ तलन्त ॥ लि० १७।
४ विशत्यादिरानवते। लि० १३।
५ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि। लि० १८।
६ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दर। लि० २१।

## टाप्

**नोट**—टाप् प्रत्यय के ट् और प् का लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, यह आ अजादि (अजा आदि) गण मे पठित तथा ह्रस्व अकारान्त शब्द मे जोडा जाता है।

**१८६**—(क) अजा[1] आदि [ अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाका, वत्सा, मन्दा विलाता, पूर्वापिहाणा, अपरापहाणा, क्रुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, द्रष्ट्रा] शब्दो मे तथा अकारान्त शब्दो मे स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है, जैसे,—अज+आ=अजा, एडक+आ=एडका, अश्व+आ=अश्वा, बाल+आ=बाला, उष्णिह्+आ=उष्णिहा, देवविश्+आ=देवविशा। भुञ्जान+आ=भुञ्जाना, गग+आ=गगा इत्यादि।

(ख) टाप्[2] के जोडने मे अकारादि शब्द मे 'क' अन्त मे आवे और उसके पूर्व 'अ' हो तो 'अ' के स्थान मे 'इ' हो जाता है। परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व प्रत्ययो मे से कोई न लगे हो, जैसे——मूषक+टाप् (आ)=मूषिक+आ=मूषिका, कारक+टाप् (आ)=कारिक+आ=कारिका, सर्वक+टाप्=सर्विक+आ=सर्विका, मामक+टाप्=मामिक+आ=मामिका, इसी प्रकार दाक्षिणात्यिका, पाश्चात्त्यिका। यदि 'क' किसी प्रत्यय का न होगा तो नियम नही लगेगा, जैसे—शङ्क+आ=शङ्का। यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नही।

## ङीप्

१९०—(क) ऋकारान्त[3] और नकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के अनन्तर ङीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है, जैसे—कर्तृ—कर्त्री,

---

१ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप ।७।३।४४। मामकनरकयोरुपसख्यानम् । त्यक्त्यपोश्च । वा० ।

३ ऋन्नेभ्यो ङीप् ।४।१।५।

दण्डिन्—दण्डिनी, राजन्—राज्ञी, श्वन्—शुनी। किन्तु[1] जिनके अन्त मे मन् हो अथवा जिस बहुव्रीहि के अन्त मे अन् हो उनसे स्त्रीलिङ्ग मे ङीप् नही जुटता।

१६१—जिन[2] प्रातिपदिको मे उक् प्रत्याहार (इ उ ऋ लृ) का कोई वर्ण इत् हुआ हो तो उनसे ङीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाते हैं। जैसे भू-शतृ=भवत्+ङीप्=भवन्ती।

**नोट**—ङीप् की ई जुडने के पूर्व प्रातिपदिक मे नीचे लिखे अनुसार हेर-फेर कर लिया जाता है—

व्यञ्जनान्त शब्द का वह रूप लेकर जो तृतीया के एकवचन मे होता है, उसका अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ तथा स्यत् प्रत्ययों से बने हुए शब्दो मे त् के पूर्व न् जोड दिया जाता है, जैसे—(राजन् का तृ० ए० व० राज्ञा है, इसका आ गिराकर 'राज्ञ्' हुआ, इससे ई जोड कर राज्ञी बना, इसी प्रकार शुनी आदि, पचता से पचत्+ई=पचती)। स्वरान्त शब्दो का अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है (सुमङ्गल=सुमङ्गल+ई=सुमङ्गली)।

(ख) नीचे[3] लिखे शब्दो के अनन्तर ङीप् लगाया जाता है—कर मे अन्त होने वाले, जैसे, भोगकर—भोगकरी।

नद, देव, चोर, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी।

ढक्, अण्, अञ्, द्वयसच्, मात्रच, दघ्नञ्, तयप्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द, जैसे, सुपर्णी—सौपर्णेयी, इन्द्र—ऐन्द्री, उत्स—औत्सी, इसी प्रकार उरुद्वयसी, उरुदघ्नी, उरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी।

---

१ मन ।४।१।११, अतो बहुव्रीहे ।४।१।१२।

२ उगितश्च।

३ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप ।४।१।१५।

(ग) प्रथम[1] वयस् (अन्तिम अवस्था को छोडकर) का बोध कराने वाले शब्दो के अनन्तर ङीप् लगता है, जैसे, कुमार —कुमारी, इसी प्रकार किशोरी, वधूटी इत्यादि, किन्तु, वृद्धा, स्थविरा।

## ङीष्

१९२—(क) षित्[2] शब्दो (नतक, खनक, पथिक आदि) तथा गौरादि गण के शब्दो (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह्, नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्—ये इस गण के मुख्य शब्द है)के अनन्तर ङीष् (ई) जोडा जाता है, जैसे—नर्तकी, पथिकी, गौरी आदि।

(ख) पुल्लिङ्ग[3] शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिये ङीष् जोडा जाता है, किन्तु पालक शब्द मे अन्त होने वाले शब्दो के अनन्तर नही। जैसे, गोप —गोपी, शूद्र —शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका।

ई जुडने के पूर्व शब्द मे १९१ नोट मे लिखे परिवर्तन हो जाते है।

इन्द्र[4], वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य—इनके अनन्तर तथा (विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्य के अनन्तर, खराब यव के अर्थ मे यव के अनन्तर यवनो की लिपि का बोध कराने के लिए यवन के अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर ङीष् लगने के पूर्व आनुक् (आन्) जोड दिया जाता है—इद्राणी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, आचार्याणी, हिमानी, अरण्यानी, यवानी (खराब जौ), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायी।

(ग) अकारान्त[5] ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा मे, 'य्' न हो, ङीष् लगाकर स्त्रीलिङ्ग होते है, जैसे, ब्राह्मण —ब्राह्मणी, हरिणी, मृगी।

---

१ वयसि प्रथमे ।४।१।२०। वयस्यचरम इति वाच्यम्।

२ षिद्गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१।

३ पुयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८। पालकान्तान्न । वा०।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४९। हिमारण्ययोर्महत्त्वे । यवाद्दोषे । यवनाल्लिप्याम् । वा०।

५ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।४।१।६३।

(घ)[1] उकारान्त गुणवाची शब्दो के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीष् लगाते है—जैसे—मृदु से मृदु अथवा मृद्वी। किन्तु यदि उपधा म सयुक्त वर्ण हो तो ङीष् नही लगेगा, जैसे पाण्डु पु० तथा स्त्रीलिङ्ग दोनो म।

इ अथवा ई मे अन्त होने वाले गुणवाची शब्दो का पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनो मे समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, सुधी।

(ङ) [2]बहु आदि गण मे पठित (तथा अन्य आकृति गणो) से विकल्प से ङीष् लगाते हैं। जैसे बह्वी, बहु।

(च) [3]क्तिन् प्रत्यय को छोडकर सभी इकारान्त कृदन्त शब्दो के आगे स्त्रीलिङ्ग मे ङीष् प्रत्यय विकल्प से जुटता है जैसे—रात्रि, रात्री।

(छ) [4]अङ्ग वाचक शब्द जिनकी उपधा सयुक्त न हो तथा जो उपसजन रूप मे ही यदि प्रातिपदिक के अन्त मे आये तो उनसे विकल्प से ङीष् प्रत्यय जुटता है जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। किन्तु नख, मुख, शब्द यदि किसी के नाम के अन्त मे आये तब नही होते, जैसे—अशूपणखा, गोमुखा।

(ज) [5]उस उकारान्त शब्द से जिसकी उपधा मे य् न हो तथा जो मनुष्य जातिवादी हो, स्त्रीलिङ्ग मे, ऊङ (ऊ) प्रत्यय जुटता हो—जैसे कुरू। करभोरू।

## ङीन्

(क) [7]जातिवाचक शाङ्गरव आदि शब्दो से तथा अञ् प्रत्यय का अकार जिनके अन्त मे है उनसे, एव नृ और नर शब्दो से स्त्रीलिङ्ग मे ङीन् प्रत्यय जुटता है। 'नृ और नर को तो वृद्धि भी होती है। जैसे शार्ङ्गरवी, बैदी, नारी।

---

१ वोतो गुणवचनात् ।४।१।४४।

२ बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५। (आकृतिगणोऽयम्)

३ कृदिकारादक्तिन (ग०)

४ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् ।४।१।५४।

५ नखमुखात् सज्ञायाम् ।४।१।५८।

६ ऊङुत ।४।१।६६, ऊरूत्तरपदादौपम्ये ।४।१।-९।

७ शार्ङ्गरवाद्यञोङीन् ।४।१।७३, नृ ोवृद्धिश्च [illegible]गणसूत्रम्)

## नपुंसकलिङ्ग शब्द

१६३—(क)[1] भावार्थक ल्युट्, भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थ ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ, इन प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द, नपुसकलिङ्ग मे होते हैं। उदाहरणार्थ—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावार्थ मे न होगा तो नपु० नही होगा, जैसे, पचन—पकाने वाला (अर्थात् अग्नि), क्त—गतम्, गीतम्, त्व—शुक्लत्वम्, ष्यञ्—चातुर्यम्, ब्राह्मण्यम्, यत्—स्तेयम्, य—सक्यम्, ढक्—कापेयम्, यक्—आधिपत्यम्, अञ्—औष्ट्रम्, अण्—द्वैहायनम्, वुञ्—पैतापुत्रकम्, छ—अच्छावाकीयम्।

(ख) [2]अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वदा नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे—अधिस्त्रि, पाणिपादम्। एकवचनान्त द्विगु समास तो प्रायः नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्, परन्तु कुछ स्त्रीलिङ्ग मे भी होते हैं, जैसे—पञ्चवटी, पञ्चमूली।

(ग) [3]इस्, उस् मे अन्त होने वाले शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे—हवि, धनु।

(घ)—[4]मन् मे अन्त होने वाला शब्द यदि दो स्वरो वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुसक होगा, जैसे—चर्म, शर्म, वर्म, किन्तु अणिमा पुल्लिङ्ग होता है, क्योकि यह दो स्वरो वाला नही है, इसी प्रकार दामा (देने वाला) पु० होता है, क्योकि यह कर्तृवाचक है।

(ङ) अस्[5] मे अन्त होने वाले दो स्वरो वाले शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे, मन, यश, तप आदि।

---

१ भावे ल्युडन्त ११९। निष्ठा च १२०। त्वष्यञौ तद्धितौ।१२१। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्य।१२२। यद्यढग्यञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि। १२३।

२ अव्ययीभावश्च।२।४।१८। द्वन्द्वैकत्वम् १२४। द्विगु स्त्रिया च।१-३।

३ इसुसन्त।१३४।

४ मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि।१३६।

५ असन्तो द्व्यच्क।१५२।

(च) त्र[1] मे अन्त होने वाले शब्द प्राय नपुसक होते है, जैसे—छत्रम्, पत्रम् आदि, किन्तु यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं तथा भृत्र, अमित्र, वृत्र, उष्ट्र, मत्र, पुत्र, छात्र इत्यादि पुलिङ्ग के है।

(छ) जिन[2] शब्दो की उपधा मे ल हो, वे प्राय नपुसक होते है, जैसे—कुलम्, स्थलम्, कूलम्।

(ज) [3]शत से आरम्भ करके ऊपर की सख्या नपुसक होती है, केवल शत, प्रयुत तथा अयुत पुल्लिङ्ग मे भी होते है, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग मे तथा शकु पुल्लिङ्ग मे होते है। 'वा लक्षा नियुत च तत्'—अमरकोष की इस पक्ति के अनुसार लक्षम् (नपु०) भी होता है।

(झ) [4]मुख, नयन, लोह, वन, मास, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण—ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्राय नपुसक होते हैं, जैसे, मुखम्-आननम्, नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—फालम्, वनम्—गहनम्, मासम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कार्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—विलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्, धनम्—द्रविणम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्वम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—युद्धम्। परन्तु आहव और सग्राम पुल्लिङ्ग तथा 'आजि' स्त्रीलिङ्ग मे होते है।

(ञ) फलो[5] की जाति बताने वाले शब्द नपुसक होते है, जैसे—आम्रम्, आमलकम्।

---

१ त्रान्त ।१५४। यात्रामात्राभस्त्रादष्ट्रावरत्रा स्त्रियामेव ।१५५। भृत्रामित्रछात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्रा पुसि ।१५६।

२ लोपध ।१४१।

३ शतादि सख्या। शतायुतप्रयुता पुसि च। लक्षा कोटि स्त्रियाम्। शकु पुसि ।१४४—४७।

४ मुखनयनलोहवनमासरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि ।१३७। बलकुसुमशुल्वपत्तनरणाभिधानानि । १५७। आहवसग्रामौ पुसि ।१६०। आजि स्त्रियामेव ।१६०।

# त्रयोदश सोपान

## अव्यय-विचार

१९४—अव्यय[1] ऐसे शब्द को कहते हैं, जिसके रूप मे कोई विकार न उत्पन्न हो, जो सदा एक-सा रहे। जिसका खर्च न हो अर्थात् जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटे-बढे नही, वही अव्यय है।

सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

उदाहरणार्थ—उच्चै (ऊँचे), नीचै (नीच), अभित (चारो ओर), हा आदि।

अव्यय चार प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) क्रियाविशेषण (३) समुच्चयबोधक शब्द (conjunctions) तथा (४) मनोविकारसूचक शब्द (interjection)। इनके अतिरिक्त प्रकीर्ण।

## उपसर्ग

१९५—जो अव्यय धातु या धातु से बने हुए विशेषण, सज्ञा आदि शब्दो के पूर्व जोडे जाते हैं, उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु के विभिन्न अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ कृ धातु का अर्थ है 'करना', किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धातकौमुदीकार कहते हैं—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसहारविहारपरिहारवत्॥

उपसर्ग से कभी धातु का अर्थ उलटा हो जाता है, कभी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है, कभी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक मे दिया है—

---

१ स्वरादिनिपातमव्ययम्।१।१।३७।

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते ।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा ।।

उदाहरणार्थ, 'जय' का अर्थ है 'जीत', किन्तु 'पराजय', का अर्थ हुआ 'हार'—उससे बिल्कुल उल्टा, 'भू' का अर्थ है 'होना, किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना', 'प्रभू' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् होना', 'कृष्' का अर्थ है 'खीचना', किन्तु 'प्रकृष्' का 'खूब जोर से खीचना' इत्यादि ।

नीचे[1] उपसर्ग उन मुख्य अर्थों सहित, जो बहुधा उसके साथ चलते हैं, दिए जाते हैं—

अति—इसका अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लघन होता है, जैसे अतिक्रम—सीमा का उल्लघन, अतिनिद्रा—अधिक नीद ।

अधि—ऊपर, जैसे अधिकार—ऊपरी काम, जिसमे दूसरे वश मे हो ।

अनु—पीछे, साथ, जैसे अनुगमनम्—पीछे चलना ।

अप—दूर, जैसे अपहार—दूर ले जाना, अपकार—बुरा करना ।

अपि—निकट, जैसे अपिधानम्—ढक्कन (अपि का विकल्प से अ लुप्त हो जाता है—अपिधानम्, पिधानम्) ।

अभि—ओर, जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना ।

अव—दूर, नीचे, जैसे अवतार—नीचे आना, अवमान—नीचा मानना ।

आ—तक, कम, जैसे आच्छद्—चारो ओर तक ढकना, आकम्प—कुछ काँपना ।

उद्—ऊपर, जैसे उद्गम्—ऊपर जाना (निकलना), उत्पत्—ऊपर गिरना (उडना) ।

उप—निकट, जैसे उपासना—निकट बैठना (प्रार्थना) ।

दुर्—बुरा, जैसे दुराचार—खराब काम ।

दुस्—कठिन, जैसे दुष्कर—करने मे कठिन, दु सह—सहने मे कठिन ।

---

१ प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप एते प्रादय ।

नि—नीचे आदि, जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह।
निर्—बाहर, जैसे निर्गम—बाहर निकलना, निर्दोष—दोष से बाहर।
निस्—विना, बाहर, जैसे नि सार—सार-रहित, नि शङ्क—शङ्का-रहित।
परा—पीछे, उल्टा, जैसे पराजय—हार, पराभव—हार, परागत—
चला गया।

परि—चारो ओर, जैसे परिखा—चारो ओर की खाई।
प्र—अधिक, जैसे प्रणाम—अधिक झुकना।
प्रति—ओर, उल्टा, जैसे प्रतिकार—बदला, प्रतिगम—किसी की ओर
जाना।

वि—बिना, अलग, जैसे विचल—दूर चला हुआ, वियोग—विरह।
सम्—अच्छी तरह, जैसे सस्कार—अच्छी तरह किया हुआ।

इनमे से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अन्य शब्दो के पूर्व जुडे मिलते है और भिन्न-भिन्न अर्थों मे। ऊपर के अर्थ केवल निर्देशमात्र हैं।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी है, जो धातु आदि के पूर्व लगते हैं। इनका नाम 'गति' है। मुख्य-मुख्य 'गति' शब्द ये है—

असत्—जैसे असत्कार।
सत्—जैसे सत्कार, सद्गति।
नम (कृ के पूर्व) नमस्कार।
साक्षात्— " साक्षात्कार।
अन्त—अन्तर्हित (छिपा हुआ)।
अस्तम्—(गत्यर्थक धातुओ के पूर्व)—अस्तङ्गत, अस्तमीत आदि।
आवि—(कृ, अस्, भू के पूर्व) आविष्कार, आविर्भूत।
प्रादु—(" " ") प्रादुष्कार, प्रादुर्भूत।
तिर—(भू और धा के पूर्व) तिरोभूत, तिरोहित।
पुर—(कृ, भू, गम् के पूर्व) पुरस्कार, पुरोगत, पुरोभव।
स्वी—(कृ के पूर्व) स्वीकार, स्वीकृत आदि।

न[1] (नञ्) प्राय सादृश्य (जैसे अब्राह्मण—ब्राह्मण नही, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जैसे अज्ञानम्—ज्ञानस्य अभाव ), अन्य प्रकार (जैसे अयम् अपट—यह कपडे से भिन्न है), अल्पता (जैसे अनुदरा कन्या—कम पेट वाली), बुराई (जैसे अकार्य—बुरा काम) अथवा विरोध (जैसे अनीति—नीतिविरोध) का बोध उपसर्ग-रूप मे लग कर कराता है।

कुछ अव्यय शब्द के अंत मे भी लगते है, जैसे किम् के उपरान्त 'चित्' अथवा 'चन' अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है।

## १६६—क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्व आदि अव्ययो मे गिनाए हुए शब्द है, जैसे—पृथक्, विना, वृथा आदि, कुछ सर्वनामो से बनते है, जैसे—इदानीम, यथा तथा आदि, कुछ संख्यावाची शब्दो से बनते है, जैसे—एकधा, द्विधा, द्वि, त्रि आदि, और कुछ सज्ञाओ मे तद्धित प्रत्यय लगाकर, जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि। इसके अतिरिक्त सज्ञाओ को द्वितीया के एकवचन मे बहुधा क्रियाविशेषण-स्वरूप प्रयोग मे लाते हैं, जैसे सत्यम्, सुखम् आदि।

(२) नीचे अकारादि क्रम से मुख्य-मुख्य प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं—

अकस्मात्—इकबारगी
अग्रत—आगे
अग्रे—पहले
अचिरम्— } शीघ्र
अचिरात्— } शीघ्र
अचिरेण— } शीघ्र
अजस्रम्—निरन्तर
अन्तर्—अन्दर
अत—इसलिए
अपरम्—और
अपरेद्यु—दूसरे दिन
अधुना—अब
अनिशम्—निरन्तर
अन्तरेण—बारे मे, बिना
अन्तरा—बिना, बीच मे
अन्तरे—बीच मे
अन्यच्च—और

---

[1] तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्व तदल्पता।
अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्था षट् प्रकीर्तिता ॥

अतीव—बहुत
अत्र—यहाँ
अथ—तब, फिर
अथकिम्—हाँ, तो क्या
अद्य—आज
अध —<br>अधस्तात्— } नीचे
असम्प्रति—<br>असाम्प्रतम् } अनुचित
आरात्—दूर, समीप
इत —यहाँ से
इतस्तत —इधर-उधर
इति—इस प्रकार
इत्थम्—इस प्रकार
इदानीम्—इस समय
इह—यहाँ
ईषत्—कुछ, थोडा
उच्चै —ऊँचे
उभयत —दोनो ओर
ऋतम्—सच
ऋते—बिना
एकत्र—एक जगह
एकदा—एक बार
एकधा—एक प्रकार
एकपदे—एक साथ
एतर्हि—अब
एव—ही
एवम्—इस तरह
कच्चित्—<br>कच्चन— } क्यो

अन्यत्र—दूसरी जगह
अन्यथा—दूसरी तरह
अभित —चारो ओर, पास
अभीक्ष्णम्—निरन्तर
अर्वाक्—पहले
अलम्—बस, पर्याप्त
असकृत्—कई बार
कदाचित्—कभी, शायद
कदापि—कभी
कदापि न—कभी नही
किञ्च—और
किन्तु—लेकिन
किम्—क्या, क्यो
किमुत—और कितना
किंवा—या
किल—सचमुच
कुत —कहाँ से
कुत्र—कहाँ
कुत्रचित्—कही
कृतम्—बस, हो गया
केवलम्—सिर्फ
क्व—कहाँ
क्वचित्—कही
खलु—निश्चय करके
चिरम्—देर तक
जातु—कभी भी
झटिति—जल्दी
तत्—इसलिए
तत —फिर
तत्र—वहाँ

कथम्—कैसे
कथञ्चन— } किसी प्रकार
कथञ्चित्— }
कदा—कब
तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)
तस्मात्—इसलिए
तर्हि—तब, तो
तावत्—तब-तक
तिर — } —तिर्छे
तिर्यक्— }
तूष्णीम्—चुपचाप
दिवा—दिन मे
दिष्टया—सौभाग्य से
दूरम्—दूर
दोषा—रात को
द्राक्—शीघ्र,फौरन
ध्रुवम्—निश्चय ही
नक्तम्—रात को
न—नही
न वरम्—परन्तु
नाना—हर तरह से
नाम—नाम वाला, नामक
निकषा—निकट
नीचै —नीचे
नूनम्—निश्चित
नो—नही
परम्—फिर, परन्तु
परश्व —परसो
परित —चारो ओर
परेद्यु —दूसरे दिन (कल)

तथा—उस तरह
तदा—तब
तदानीम्—तब
पर्याप्तम्—काफी
पश्चात्—पीछे
पुन —फिर
पुरत , पुर — } आगे
पुरस्तात्— }
पुरा—पहले
पूर्वेद्यु —पहले दिन (कल)
पृथक्—अलग-अलग
प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत
प्रतिदिनम्—हर रोज
प्रत्युत—उलटे
प्रसह्य—जबर्दस्ती
प्राक्—पहले
प्रात —सवेरे
प्राय —अक्सर
प्रेत्य—मरकर, दूसरी दुनिया मे
बलात्—जबर्दस्ती
बहि.—बाहर
बहुधा—बहुत प्रकार से
भूय —फिर-फिर, अधिक
भृशम्—बार-बार, अधिकाधिक
मनाक्—थोडा
मिथ —परस्पर
मिथ्या—झूठ
मुधा—बेकार
मुहु —बार-बार
मृषा—झूठ, बेकार

पर्याप्तम्—काफी
यत —क्योकि
यत्र—जहाँ
यथा—जैसे
यथा तथा—जैसे-तैसे
यथा यथा—जैसे-जैसे
यदा—जब
यावत्—जब तक
युगपत्—साथ, इकबारगी
विना—बिना
वृथा—बेकार
वै—निश्चय
शनै —धीरे-धीरे
श्व —कल (आने वाला दिन)
शश्वत्—सदा
सर्वथा—सब प्रकार से
सर्वदा—सब दिन
सह—साथ
सहसा—इकबारगी
सहितम्—साथ
सकृत्—एक बार
सततम् —बराबर, सब दिन
सदा—हमेशा
सद्य —तुरन्त
यत्—जो, क्योकि
सदा—सब दिन
सपदि—तुरन्त, शीघ्र
समन्तात्—चारो ओर
समम्—बराबर-बराबर
समया—निकट
समीपे, समीपम्—निकट
समीचीनम्—ठीक
सम्प्रति—इस समय, अभी
सम्मुखम्—सामने, मुँह दर मुँह
सम्यक्—भली प्रकार
सर्वत —चारो ओर
सर्वत्र—सब कही
साक्षात्—आँखो के सामने
सार्धम्—साथ
साकम्—साथ
साम्प्रतम्—अब, उचित
सायम्—शाम को
सुष्ठु—अच्छी तरह
स्वस्ति—आशीर्वाद
स्वयम्—अपने आप
हि—इसलिए
ह्य —कल (पूर्वदिन)

## १९७—समुच्चयबोधक शब्द

च—'और' शब्द का अर्थ सस्कृत मे बहुधा 'च' शब्द से बतलाया जाता है, किन्तु जहाँ 'और' हिन्दी मे जोड़े हुए शब्दो के बीच मे आता है, जैसे—राम और

गोविन्द, वहाँ संस्कृत मे 'च' शब्द के उपरान्त आता है, अथवा अलग-अलग दोनो के उपरान्त, जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च। 'च' को बहुधा अन्य समुच्चय-बोधक शब्दो के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च।

अथ, अथो, अथ च—वाक्य के आदि मे आते हैं और बहुधा 'तब' का अर्थ बताते हैं। इसके पूर्व कुछ वाक्य आ चुके हुए होते हैं, अथवा प्रकरण मे कुछ बीत चुका है।

तु—तो, यह वाक्य के आदि मे नही आता, जैसे, स तु गत—वह तो गया आदि।

किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन।

वा—या के अर्थ से च की तरह इसका भी प्रयोग प्रत्येक शब्द के उपरान्त अथवा दोनो के उपरान्त होता है, जैसे, रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा—राम या गोविन्द।

अथवा—इसका भी प्रयोग व की तरह उसी अर्थ मे होता है।

चेत्, यदि—यदि, अगर। चेत् का प्रयोग वाक्य के आरम्भ मे नही होता।

नोचेत्—नही तो,

यदि-र्तांह—यदि, तो

तत्—इसलिए।

हि—क्योकि

यावत्-तावत्—जब तक-तब तक।

यदातदा—जब-तब।

इति—वाक्य के अन्त मे समाप्तिसूचक, जैसे—अहम् गच्छामि इति सोऽवदत्। इससे हिन्दी [illegible] 'कि' का बोध होता है। 'कि' का बोध यत् से भी होता है किन्तु यह वाक्य के [illegible] आता है, जैसे—सोऽवदत् यदह गच्छामि।

## १९८—मनोविकारसूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नही रहता। मुख्य-मुख्य दिए जाते हैं।

हन्त—हर्षसूचक, खेदसूचक।

आ, हुम्, हम्—क्रोधसूचक।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक।

बत—दयासूचक, खेदसूचक।

किम्, धिक्—धिक्कार-सूचक।

अङ्ग, अयि, अये, भो—आदरसहित बुलाने के काम मे आते हैं। अरे, रे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने मे।

अहो, ही—विस्मयसूचक।

## १६६—प्रकीर्ण अव्यय

ऊपर कह आए हैं कि जो विभक्ति, लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप-परिवर्तन को प्राप्त न हो, वही अव्यय है। इस गणना के अनुसार कई तद्धित-प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासान्त शब्द अव्यय होते हैं।

तद्धितो[1] मे—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल्-प्रत्ययान्त, दा-प्रत्ययान्त, दानीम्-प्रत्ययान्त, अधुना, र्काहि, र्याह, सद्य से लेकर उत्तरेद्यु तक (५ । ३ । २२), थाल्-प्रत्ययान्त, दिक् कालवाचक, पुर, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धा-प्रत्ययान्त (एकधा आदि), शस्-प्रत्ययान्त (बहुश, अल्पश आदि), च्वि-प्रत्ययान्त (भस्मीभूय, शुक्लीभूय आदि) साति-प्रत्ययान्त (अग्निसात्, ब्रह्मसात् आदि), कृत्वसुच्-प्रत्ययान्त (पचकृत्व, सप्तकृत्व) तथा इसके अर्थ मे आने वाले सुच् प्रत्ययान्त (द्वि, त्रि)।

कृदन्तो[2] मे—म् मे अन्त होने वाले जैसे—णमुल्-प्रत्ययान्त (स्मार स्मारम् आदि), तुमुन्-प्रत्ययान्त (गन्तुम्) तथा ए, ऐ, ओ, औ मे अन्त होने वाले, जैसे—गन्तुम्, जीव से (तुमर्थ प्रत्यय अ से लगा कर), पिबध्यै (तुमर्थ शध्यै प्रत्यय), तथा[3] क्त्वा (और क्त्वार्थल्यप्), तोसुन् और कसुन् प्रत्ययो मे अत होने वाले शब्द, जैसे—कृत्वा, उदेतो, विसृप।

अव्ययीभाव[4] समास—अधिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णु इत्यादि।

---

१ तद्धितश्चासर्वविभक्ति ।१।१।३८।

२ कृन्मेजन्त १।१।३९।

३ क्त्वातोसुन्कसुन ।१।१।४०।

४ अव्ययीभावश्च ।१।१।४१।

# १—परिशेष

## छन्द

सस्कृत काव्य गद्य और पद्य मे होता है। गद्य मे पदो का विभाग पादो मे नही होता।

प्रत्येक पद्य मे चार "पाद" होते हैं। पादो की व्यवस्था या तो अक्षरो (Syllable) से या मात्राओ (Syllabic instants) से होती है।

(क) 'अक्षर' शब्द के उस भाग को कहते हैं, जो एक ही बार के प्रयत्न मे स्वच्छन्दता-पूर्वक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते हैं, उन्हे मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है, जैसे—प्र, अप्, अञ्ज् आदि। यदि उसके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो, तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा, जैसे—अपाद शब्द मे अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते हैं, जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने मे लगता है। इसलिए ह्रस्व स्वर एक मात्रा वाला है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने मे ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमे दो मात्राएँ होती हैं।

## अक्षर दो प्रकार के होते है

(१) लघु, (२) गुरु। "लघु" अक्षर उसे कहते हैं, जिसमे स्वर ह्रस्व हो, "गुरु" अक्षर उसे कहते हैं, जिसमे स्वर दीर्घ हो।

## ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ और लृ ह्रस्व स्वर है।

## दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ और औ दीर्घ स्वर होते है।

[1]जब किसी ह्रस्व स्वर के उपरान्त अनुस्वार या विसर्ग या सयुक्ताक्षर आवे तो उस ह्रस्व को छन्द-शास्त्र मे गुरु मानते हैं, जैसे—"गन्ध" मे "ग" गुरु है क्योकि "ग" के उपरान्त सयुक्ताक्षर "न्ध" आ जाता है, इसी प्रकार "सशय" मे "स" गुरु है, क्योकि "स" अनुस्वार-सहित है, "राम" मे "म" गुरु है, क्योकि "म" विसर्ग-सहित है।

यदि किसी पद्य मे पाद के अन्त वाले अक्षर को गुरु होना चाहिये, लेकिन वह लघु है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं।

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षण भर रुक जाते हैं, वहाँ पद्य की 'यति' होती है। ये यतियाँ व्यवस्थित हैं। जहाँ यति होती हो वहाँ उचित यही है कि शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नही।

## छन्द दो प्रकार का होता है—(१) वृत्त और (२) जाति वृत्त

जिस पद्य की रचना अक्षरो के हिसाब से होती है, उसे वृत्त कहते हैं। सुविधा के लिए तीन-तीन अक्षरो के समूह को गण कहते हैं, जैसे—

'कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त" इस पद मे (१) "कश्चित्का", (२) "न्ताविर", (३) "हगुरु", (४) 'णास्वाधि", (५) "कांरात्प्र", ये पाँच गण हैं। यहाँ पर (१) मे "क" एक अक्षर है, "श्च" दूसरा अक्षर है, "त्का" तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षर का एक गण (कश्चित्का) हुआ। इसी प्रकार (२ मे) "न्ता" एक अक्षर है, "वि" दूसरा अक्षर है, "र" तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ।

**गण आठ होते हैं—**

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) भगण | (२) जगण | (३) सगण | (४) यगण |
| (५) रगण | (६) तगण | (७) मगण | (८) नगण |

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघव यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम्॥

---

१ सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णं सयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

(१) भगण उसे कहते है, जिसमे पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हो।

(२) जगण मे मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते है।

(३) सगण मे तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष पहला और दूसरा लघु होते हैं।

(४) यगण मे केवल पहला अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(५) रगण मे दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(६) तगण मे केवल तीसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(७) मगण मे तीनो अक्षर गुरु होते हैं।

(८) नगण मे तीनो अक्षर लघु होते है।

लघु का चिह्न ।

गुरु का चिह्न ऽ

आठो गण चिह्नो द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं—

| | |
|---|---|
| (१) भगण | ऽ । । |
| (२) जगण | । ऽ । |
| (३) सगण | । । ऽ |
| (४) यगण | । ऽ ऽ |
| (५) रगण | ऽ । ऽ |
| (६) तगण | ऽ ऽ । |
| (७) मगण | ऽ ऽ ऽ |
| (८) नगण | । । । |

## (२) जाति (अथवा मात्रिक)

जिस छन्द की व्यवस्था मात्राओ के हिसाब से की जाती है, उसे जाति कहते हैं। सुविधा के लिए कभी-कभी मात्राओ का भी गणो मे विभाग करते है। किन्तु मात्रिक छन्द का प्रत्येक गण चार मात्राओ का होता है तीन वर्णों का नही। जैसे—

"येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत"—इस पद्य में "येना", "मन्दम्", "रन्दे" गण हैं, क्योकि "ये" मे दो मात्राएँ हैं और "ना" मे दो मात्राएँ हैं, इस प्रकार चार मात्राऐं हुई, इसलिए इन चार मात्राम्रो का एक गण (येना) हो गया। यहाँ पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो "येना" एक गण न माना जाता, प्रत्युत वह "येनाम" एक गण होता।

## मात्रागण सब मिल कर पाँच होते है—

| | |
|---|---|
| (१) मगण | ऽ ऽ |
| (२) सगण | । । ऽ |
| (३) जगण | । ऽ । |
| (४) भगण | ऽ । । |
| (५) नमण | । । । । |

## वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—

(१) समवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के चारो चरण (अथवा पाद) एक से होते हैं।

(२) अर्धसमवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के प्रथम तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के होते हैं।

(३) विषम—वह होता है, जिस पद्य के चारो चरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

सस्कृत काव्य मे बहुधा समवृत्त छन्दो का अधिक प्रयोग मिलता है।

## समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते हैं। किसी के प्रत्येक चरण मे १ अक्षर (Syllable) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोडे से ऐसे समवृत्त दिखाए जायेंगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग मे आते हैं।

## ८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तो मे से एक समवृत्त "अनुष्टुप्" है, इसे "श्लोक" भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—

श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ।।

अर्थात् "श्लोक" के सभी चरणो मे छठवाँ अक्षर (Syllable) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण मे ह्रस्व होता है और पहले और तीसरे मे दीर्घ होता है। लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण भी हैं।

## ११ अक्षर वाले समवृत्त

### (१) इन्द्रवज्रा

**स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः**

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद मे दो तगण, एक जगण, फिर दो गुरु अक्षर होते है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

| तगण | तगण | जगण | ग ग |
|---|---|---|---|
| ऽ ऽ । | ऽ ऽ । | । ऽ । | ऽ ऽ |
| स्या दि न्द्र | व ज्रा य | दि तौ ज | गौ ग |

### (२) उपेन्द्रवज्रा

**उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ**

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद मे जगण, तगण, जगण, तथा दो गुरु होते हैं।

| जगण | तगण | जगण | ग ग |
|---|---|---|---|
| । ऽ । | ऽ ऽ । | । ऽ । | ऽ ऽ |
| उ पे न्द्र | व ज्रा ज | त जा स्त | तो गौ |

### (३) उपजाति

**अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ**
**पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।**

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

| जगण | तगण | जगण | ग ग |
|---|---|---|---|
| । ऽ । | ऽ ऽ । | । ऽ । | ऽ ऽ |
| अनन्त | रा दी रि | त लक्ष्म | भा जौ |
| तगण | तगण | जगण | ग ग |
| ऽ ऽ । | ऽ ऽ । | । ऽ । | ऽ ऽ |
| पा दौ य | दी या वु | प जा त | य स्ता |

इसमे प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का। कभी-कभी प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा के।

## १२ अक्षर वाले समवृत्त

### (१) द्रुतविलम्बित

**द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ**

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद मे नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं, जैसे—

| नगण | भगण | भगण | रगण |
|---|---|---|---|
| । । । | ऽ । । | ऽ । । | ऽ । ऽ |
| द्रु त वि | लम्बित | मा ह न | भौ भ रौ |

### (२) भुजङ्गप्रयात

**भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः**

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद मे चार यगण होते हैं, जैसे—

| यगण | यगण | यगण | यगण |
|---|---|---|---|
| । ऽ ऽ | । ऽ ऽ | । ऽ ऽ | । ऽ ऽ |
| भु ज ङ्ग | प्र या त | च तु र्भि | र्य का रैः |

## १४ अक्षर वाले समवृत्त

### वसन्ततिलका

**उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः**

वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद मे तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं, जैसे—

| तगण | भगण | जगण | जगण | ग ग |
|---|---|---|---|---|
| ऽ ऽ । | ऽ । । | । ऽ । | । ऽ । | ऽ ऽ |
| उ क्ता व | स न्त ति | ल का त | भ जा ज | गौ ग |

## १५ अक्षर वाले समवृत्त

### मालिनी

**ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः**

मालिनी के प्रत्यक पाद मे नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण होते हैं और आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है, जैसे—

| नगण | नगण | मगण | यगण | यगण |
|---|---|---|---|---|
| । । । | । । । | ऽ ऽ ऽ | । ऽ ऽ | । ऽ ऽ |
| न न म | य य यु | ते य, मा | लि नी भो | गि लो कै |

## १७ अक्षर वाले समवृत्त

### (१) मन्दाक्रान्ता

**मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्**

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद मे मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छः अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

| मगण | भगण | नगण | तगण | तगण | ग ग |
|---|---|---|---|---|---|
| ऽ ऽ ऽ | ऽ । । | । । । | ऽ ऽ । | ऽ ऽ । | ऽ ऽ |
| क श्चि त्का॰ | न्ता, वि र | ह गु रु | णा, स्वा धि | का रा त्प्र | म त्त |

यहाँ पर पहिली यति "न्ता" के उपरान्त दूसरी "णा" के उपरान्त, तीसरी अन्त मे 'त्त" के उपरान्त है। इसी प्रकार चारो चरणो मे यति होगी।

### (२) शिखरिणी

## रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद मे यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है। छ अक्षर के उपरान्त तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

| यगण | मगण | नगण |
|---|---|---|
| । ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ | । । । |
| स मृ द्ध | सौ भा ग्य, | स क ल |
| **सगण** | **भगण** | **ल ग** |
| । । ऽ | ऽ । । | । ऽ |
| व सु धा | या कि म | पि तन्, |

यहाँ पर पहिली यति छठे अक्षर "ग्य" के उपरान्त और दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर "तन्" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया किमपि तन्
महैश्वर्यं लीलाजनितजगत खण्डपरशो ।
श्रुतीना सर्वस्व सुकृतमथ मूर्तं सुमनसा,
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिव न शमयतु ॥

### १९ अक्षर वाले समवृत्त

#### शार्दूलविक्रीडितम्

## सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद मे मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारहवें अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर सातवे अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है, जैसे—

| मगण | सगण | जगण | सगण |
| --- | --- | --- | --- |
| ऽ ऽ ऽ | । । ऽ | । ऽ । | । । ऽ |
| पा तु न | प्र थ म | व्य व स्य | ति ज ल |
| तगण | तगण | ग | |
| ऽ ऽ । | ऽ ऽ । | ऽ | |
| यु ष्मा स्व | पी ते षु | या, | |

यहाँ पर पहिली यति बारहवे अक्षर "ल" के उपरान्त तथा दूसरी यति फिर सातवें अक्षर "या" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युस्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये व कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव,
सेय याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

## २१ अक्षर वाले समवृत्त

### स्रग्धरा

### स्रम्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्

स्रग्धरा के प्रत्येक पाद मे मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण होते हैं। इसमे सात-सात अक्षरो पर यति होती है, जैसे—

| मगण | रगण | भगण | नगण |
| --- | --- | --- | --- |
| ऽ ऽ ऽ | ऽ । ऽ | ऽ । । | । । । |
| व्या को षे | न्दी व रा | भा, क न | क क ष |
| | यगण | यगण | यगण |
| | । ऽ ऽ | । ऽ ऽ | । ऽ ऽ |
| | ल स, त्पी | त धा सा | सु हा सा, |

यहाँ पर पहिली यति सातवें अक्षर "भा" के उपरान्त तदनन्तर दूसरी यति फिर सातवे अक्षर "स" के उपरान्त, तीसरी यति फिर सातवें अक्षर "सा" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

व्याकोषेन्दीवराभा कनककषलसत्पीतवासा सुहासा,
वर्हैरुच्चन्द्रकान्तैर्वलयितचिकुरा चारुकर्णावतसा।
असव्यासक्तवशीध्वनिसुखितजगद्वल्लवीभिर्लसन्ती-
मूर्तिर्गोपस्य विष्णोरवतु जगति न स्रग्धरा हारिहारा ॥

## अर्धसमवृत्त

### पुष्पिताग्रा

**अयुजि नयुगरेफतो यकारो**
**युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा**

पुष्पिताग्रा के प्रथम तथा तृतीय चरण मे नगण, नगण, रगण, यगण (इस प्रकार १२ अक्षर) और द्वितीय तथा चतुर्थ मे नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु (इस प्रकार १३ अक्षर) होते हैं।

| नगण | नगण | रगण | यगण |
|---|---|---|---|
| । । । | । । । | ऽ । ऽ | । ऽ ऽ |

प्रथम तथा
तृतीय चरण

| नगण | जगण | जगण | रगण | ग |
|---|---|---|---|---|
| । । । | । ऽ । | । ऽ । | ऽ । ऽ | ऽ |

द्वितीय तथा
चतुर्थ चरण

जैसे—

| । । । | । । । | ऽ । ऽ | । ऽ ऽ |
|---|---|---|---|
| अ थ म | द न व | धू रु प | प्ल वा न्त |
| । । । | । ऽ । | । ऽ । | ऽ । ऽ ऽ |
| व्य स न | कृ शा प | रि पा ल | या म्ब भू व |

पूरा श्लोक यो है—

अथ मदनवधूरुपप्लवान्त
व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव ।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा
किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥

## विषमवृत्त

विषमवृत्त साधारणत साहित्य मे बहुत कम आते हैं। उदाहरणार्थ केवल उद्गता का लक्षण देते है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| । । S | । S । | । । S | । |
| प्रथमे, | सजौय | दिसलौ | च |
| । । । | । । S | । S । | S |
| नसज, | गुरुका | ण्यनन्त | रम् |
| S । । | । । । | । S । | । S |
| यद्यथ, | भनज, | लगास्यु, | रथो |
| । । S | । S । | । S S | । S । S |
| सजसा, | जगौच, | भवती, | यमुद्ग, ता |

## जाति

जैसा कि पहले कह आये हैं, "जाति" छन्द उसे कहते हैं, जिसमें के गण मात्रा (Syllabic instants) के हिसाब से व्यवस्थित किए जाते हैं। "जाति" का सबसे साधारण भेद "आर्या" है, जो नव प्रकार की होती है—

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचला च ।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

## आर्या

यस्या पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण मे १२ मात्रायें होती हैं, द्वितीय मे १८ और चतुर्थ मे १५ मात्रायें होती है। उदाहरणार्थ लक्षण का ही पद्य द्रष्टव्य है। आर्या भी विषम वृत्तो मे ही गिना जायगा।

**नोट**—छन्दो के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर अथवा पिङ्गल-मुनि-रचित छन्द-सूत्र शास्त्र पढना चाहिए।

# २—परिशेष

## रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि

संस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बडे चाव से पढ़ते हैं। केवल मनोरंजन के लिये ही नहीं, बहुत सी बातो मे उन्होने संस्कृत ग्रन्थो से हम भारतीयो की अपेक्षा अधिक लाभ उठाया है। इनके आधार पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिनसे हम लोगो का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा संस्कृत शब्दो को वे रोमन अक्षरो मे लिखते हैं। हम लोगो को भी उस विधि को जान रखना आवश्यक है। पुरातत्त्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग-पग पर काम पडता है।

| a | á | i | í | u | ú | r | ŕ | ĺ | e | o | ai | au |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अ | आ | इ | ई | उ | ऊ | ऋ | ॠ | ऌ | ए | ओ | ऐ | औ |

अनुनासिक (स्वर के ऊपर) अथवा अनुस्वार— ṁ अथवा ṃ

विसर्ग—h

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| क् | ख् | ग् | घ् | ङ |
| k | kh | g | gh | ñ |
| च् | छ् | ज् | झ् | ञ् |
| c | ch | j | jh | ñ |
| ट् | ठ् | ड् | ढ् | ण् |
| t | th | d | dh | n |
| त् | थ् | द् | ध् | न् |
| t | th | d | dh | n |

| प् | फ् | ब् | भ् | म् |
|---|---|---|---|---|
| p | ph | b | bh | m |
| य् | र् | ल् | व् | |
| y | r | l | v | |
| श् | ष् | स् | ह् | |
| ś | ṣ | s | h | |

कभी-कभी ऋ, ॠ, ॡ को क्रम से ri rī lri, च्, छ् को ch, chh श्, को c, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरो को जोड कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ—

| | |
|---|---|
| रश्मि | raśmi |
| प्रद्योत | pradyota |
| क्षत्रिय | kṣatriya |
| उदीर्णधन्वा | udīrṇadhanvā |
| क्लृप्त | k ḷ p t a |
| सस्कृति | saṃskṛtiḥ |

## ३—परिशिष्ट

### अकारादि क्रम धातुओं की सूची (कर्तृवाच्य)